



# प्रज्ञास्ति-संग्रह



संपादक :

पं० के० भुजवली शास्त्री, विद्याभूषण



प्रकाशक :

निर्मलकुमार जैन, मंत्री  
जैन-सिद्धान्त-भवन  
आरा

मुद्रक

श्री सरस्वती प्रिण्टिंग-वर्क्स लि०, आरा

# Introductory note on Prasastisangraha

The work entitled "Prasastisangraha" is a good Descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts bearing Nos. from 196 to 263 and 54 to 78—about 54 mss. in all—in the Jaina Siddhāntabhavana, Arrah. I have no information as to the total number of manuscripts in the Library, the number that have already been catalogued and that remain yet to be examined. From the Prasastisangraha in hand, however, I find that the method of cataloguing follows the plan usually adopted in such works and furnishes information on the name of the works and the authors, the subject matter, the bulk, kind, and condition of the manuscripts, the language and the scripts and the chronology of the authors, besides giving quotations from the beginning, the middle and end of the works.

The Prasastis found in almost all the works noticed in this Catalogue are fully taken advantage of in determining the dates of the authors. The dates range from Simhasuri's Lokatatvavibhāga A. D. 458 to works composed in the 18th century A. D. The following are some of the important works deserving study : —

Nidānamuktavali Serial No. 5, Kalyānakāraka of Ugrādityāchārya Ser. No. 17 and Sārasangraha Ser. No. 39. all medical works.

Reference to Kākatiya Pratāparudra in Vidyānuvādāṅga No. 204, to Manvagandagopāla a feudatory of the Kākatiyas in 1299 A. D., to Virapāndya (A. D. 1457) in Bhavyānanda, No. 216, attributed the Pandya king himself, and to the Ganga-king Devarāja in Gitavitarāga No. 227, a lyrical poetical work of the type of the well known Gitagovinda of Jayadeva A. D. 1180, are of great importance to Indian historians.

The work is well done and the authors deserve credit for it. It is hoped that Pandit K. Bhujabali Shāstri to whom the credit of bringing out the above work is mainly due will continue the work and complete the work of cataloguing all the manuscripts contained in the Library of the Digambara Jains in Arrah.



## संपादक की ओर से

भूतकाल से वर्तमानकाल का घनिष्ठ संबंध है। अतएव भूतकाल का यथोचित ज्ञान हुए बिना वर्तमान अवस्था का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। खासकर वर्तमान रीति-रिवाज, रहन-सहन, धर्म-कर्म, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान आदि प्रतिदिन के कार्यों पर प्राचीनता की ऐसी व्याप लगी हुई है कि भूतकाल से पृथक् वर्तमान का कोई मतलब ही नहीं होता। वर्तमान समय में भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास क्रमवद्ध उपलब्ध नहीं होता। प्रो० मैक्समूलर,<sup>१</sup> डॉ० क्लॉट<sup>२</sup> आदि इतिहास-विशारदों का मत है कि प्राचीन भारतीय सदा पारलौकिक विषयों के ही चिन्तन में लगे रहते थे; उनका ऐहिक सुख तथा उससे संबंध रखनेवाली विद्याओं के साथ कोई संबंध नहीं था; इसीलिये उन्होंने इतिहास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उपर्युक्त विद्वानों का यह कथन सर्वथा निर्मूल नहीं है। फिर भी प्राचीन साहित्य के अनुशीलन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतवासी इतिहास-विज्ञान से भले प्रकार परिचित थे। वे अपनी घटनाओं को उल्लिखित एवं क्रमवद्ध करते थे। इतिहास को वे इतना महत्त्व देते थे कि उसे पाँचवाँ वेद समझते थे।<sup>३</sup> राजा लोग अपनी दैनिक दिनचर्या में इतिहास-श्रवण को भी महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे।<sup>४</sup> प्राचीन विद्याओं में इतिहास की भी गिनती थी।<sup>५</sup> इन सब प्रमाणों का अवलोकन कर ही प्रो० विल्सन,<sup>६</sup> कर्नेल टॉड<sup>७</sup> और श्रीयुत स्टाइन<sup>८</sup> आदि अनेक यूरोपीय ऐतिहासिक विद्वानों ने प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक विवेचना एवं प्राचीन साहित्य में इतिहास की सत्ता को स्वीकार किया है।

अस्तु; प्राचीन साहित्य, विदेशियों के यात्रा-विवरण, शिलालेख और ताम्रपत्र, सिक्के, मूर्ति और मंदिर आदि सामग्रियों के समान प्रतिमालेख एवं ग्रन्थप्रशस्तियाँ भी इतिहास-निर्माण के बहुमूल्य साधन हैं। खासकर जैन ग्रन्थों के मंगलाचरण और प्रशस्तियों से इतिहास का कितना घनिष्ठ संबंध है, इस बात को एक जैनेतर विद्वान् के मुख से ही सुन लेना अधिक अच्छा होगा।

१—The History of Ancient Sanskrit Literature, P. 9.

२—Imperial Gazeteer of India, vol. II, P. 3.

३—कौटिलीय-अर्थशास्त्र १।३, छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

४—कौटिलीय-अर्थशास्त्र, १।५।

५—छन्दोग्योपनिषद्, सप्तम प्रपाठक।

६—Vishnu Purana. Introduction. ७—Annual of Rajasthan, Introduction.

८—Rajatarangini, Introduction.

“जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियाँ ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े काम की चीजें हैं। कुछ ही ग्रन्थ ऐसे होंगे, जिनके मगलाचरण में अपने पूर्व कवियों के नाम अथवा कृतियों का उल्लेख नहीं किया गया हो तथा प्रशस्तियों में अपनी गुरुपरपरा और तत्कालीन राजवश का परिचय नहीं दिये गये हों। यही तक नहीं, बल्कि प्रशस्तियों के नीचे जो धर्मप्राण जैनी स्त्री-पुरुष उस ग्रन्थ की प्रतिलिपि करवाकर किसी मंदिर में प्रदान किये रहते हैं, उनकी वश-परपरा का भी उल्लेख बहुत मिलना है। ऐसी दशा में इतिहास प्रणेतृ अन्वेषकों के लिए जैन ग्रन्थों के मगलाचरण और प्रशस्तियाँ कितने काम की चीजें हैं, इस बात का पता महज ही में लग सकता है। बड़े दुःख की बात है कि भारत के इतिहास-लेखकों ने पारसी, अरबी आदि अन्यान्य सभ्यताओं के साहित्य एवं इतिहास का अनुशीलन करने व कष्ट तो उठाया, किन्तु भारतीय साहित्य तथा इतिहास के सर्वश्रेष्ठ साधन जो जैन ग्रन्थ हैं उनकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि जैन ग्रन्थों के प्रकार में नर्त्तन आने एवं जैन शास्त्र भाण्डाराधिपतियों की लापरवाही के कारण अन्यान्य ऐतिहासिक विद्वान् जैन ग्रन्थों में भरे पड़े ऐतिहासिक साधनों से लाभ नहीं उठा सके।”

‘जैन सिद्धान्त भवन’ में सगृहीत अप्रकाशित जैन संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों में उपलब्ध मगलाचरण एवं प्रशस्तियों के प्रकाशन-द्वारा यादव्यक्त्य ऐतिहासिक साधन संचित कर देना ही इस ‘प्रशस्ति-संग्रह’ के प्रकाशन का एकमात्र उद्देश्य है। क्योंकि एकाएक सभी जैन ग्रन्थों को प्रकाशित कर देना शक्य नहीं है। हाँ, एक बात है कि ‘प्रशस्ति-संग्रह’-गत प्रशस्तियों में दिगम्बर-शास्त्रियों की प्रशस्तियाँ ही सम्मिलित हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि ‘जैन सिद्धान्त भवन’ एक दिगम्बरीय संस्था है और यहाँ के सगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों में दिगम्बर-शास्त्रियों के ग्रन्थ ही अत्यधिक मात्रा में हैं।

प्रस्तुत ‘प्रशस्ति-संग्रह’ सर्वप्रथम यहाँ से प्रकाशित होनेवाले ‘जैन-सिद्धान्त-भास्कर’ नामक अनुमोधान-संबन्धी त्रैमासिक पत्र में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशित होते ही स्वर्गीय महामहोपाध्याय, रायबहादुर, प्रोफेसर विमर्श-विचित्रण श्रीमान् आर० नरसिंहाचार्य, एम ए भूतपूर्व डाइरेक्टर ऑफ आर्किआलॉजी, मैसूर, श्रीमान् प्रो० वी० शेण गिरिराव, एम.ए., पी.एच.डी., महाराज कॉलेज, विजयनगर, सरस्वती, विद्याभूषण, काव्यतीर्थ श्रीमान्

१—‘जैन सिद्धान्त-भास्कर’ भाग २ पृष्ठ १०२।

२—“‘प्रशस्ति-संग्रह’ अत्यन्त उपयोगी है। इन संग्रह में अप्रकाशित ग्रन्थों का बहुत कुछ हो जाता है। पाठक इसके जिये चापके उपरत हैं।”

३—‘जैन अप्रकाशित ग्रन्थों का पूरा परिचय दे एवं उनपर विस्तृत टिप्पणी प्रकाशित आप जैन-संस्कृति की सच्ची सेवा कर रहे हैं।’

शरच्चन्द्र घोपाल, एम.ए., बी.एल., कृचविहार' एवं काव्यतीर्थ श्रीमान् चिन्ताहरण चक्रवर्ती, एम.ए., कलकत्ता' आदि सुविख्यात जैनेतर विद्वानों ने इस कार्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर मेरे उत्साह को बढ़ाया। फलस्वरूप 'प्रशस्ति-संग्रह' का यह प्रथम भाग पुस्तकाकार में आप पाठकों के समक्ष उपस्थित है। मैं मानता हूँ कि इसमें एक-दो त्रुटियाँ रह गयी हैं। एक तो अल्पज्ञों से त्रुटियों का होना सर्वथा स्वाभाविक है, दूसरा यह प्रथम प्रयास है। इसके द्वितीय भाग को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने के संबंध में मैं अभी से चिन्तित हूँ।

अस्तु, श्वेताम्बर-समाज में प्रशस्तियों का एक संग्रह अहमदावाद से पहले ही प्रकाशित हो चुका है। सुना है कि दूसरा संग्रह श्रीजिनविजयजी-द्वारा सम्पादित होकर 'सिंधी ग्रन्थमाला' की श्रौर से दो भागों में शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। दिगम्बर-समाज में तो यही एक संग्रह पहले-पहल प्रकाश में आ रहा है। जिस प्रकार 'जैन-सिद्धान्त-भवन' दिगम्बर-समाज में एक उच्चकोटि की आदर्श संस्था है, उसी प्रकार उसका यह पुनीत कार्य भी श्रौरों के लिए मार्गदर्शक बना रहेगा। अब विज्ञ पाठकों का ध्यान मैं 'प्रशस्ति-संग्रह' की एक-दो आवश्यक बातों की श्रौर आकर्षित करता हूँ।

इसमें शुरु से कुछ दूर तक (पृष्ठ १ से २४ तक) 'प्रारम्भिक भाग' के स्थान पर 'मंगलाचरण' ही लिखा जाता रहा; परन्तु जब आगे चलकर कुछ रचनाओं में 'मंगलाचरण' का सर्वथा अभाव पाया गया, तब इस 'मंगलाचरण' के स्थान पर 'प्रारम्भिक भाग' ही लिखना उचित समझा गया, जो कि अन्त तक जारी रहा। इसी प्रकार आगे चलकर (पृष्ठ १ से २४ तक) विवश हो 'प्रशस्ति' के स्थान पर 'अन्तिम भाग' लिखना पड़ा, क्योंकि सब प्रतियों में प्रशस्तियाँ उपलब्ध नहीं हुईं। दूसरी बात है कि जहाँ जैसा उचित समझा गया है—कहीं-कहीं ग्रंथ का परिचय और कहीं-कहीं ग्रन्थकर्त्ता का परिचय विस्तृत कर दिया गया है; क्योंकि जहाँ ग्रन्थ का विषय अधिक गम्भीर था, वहाँ उसे स्पष्ट कर देना आवश्यक समझा गया।

श्रुतकीर्त्ति-रचित 'हरिवंशपुराण' की प्रशस्तियों में उसका रचना-स्थान जेरहट कहा गया है। उस जेरहट को मैंने मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ़ अनुमान किया था। परन्तु श्रीयुत दशरथ शर्मा, एम.ए., बीकानेर की राय से वह जेरहट उक्त मेवाड़ प्रान्तान्तर्गत माण्डलगढ़ न होकर मालवे की पुरानी राजधानी मांडू है, जो किसी समय धारा नगरी से कुछ दूरी पर स्थित था और इस समय प्रायः निर्जन पड़ा हुआ है।' इसी प्रकार

१—“विशेषतः मुझे आपका 'प्रशस्ति-संग्रह' बहुत पसन्द आया। वह अबतक के अज्ञात हस्तलिखित ग्रन्थों का विशद परिचय दे रहा है।”

२—“प्राचीन ग्रन्थों की सविस्तर सूची पूरी संपादित हो जाने पर बहुत काम की चीज होगी।”

३—देखें 'जैन-सिद्धान्त-भास्कर' भाग ७, किरण १।



पहले मैंने समझ था कि 'श्रीपुराण' भट्टारक सकलकीर्तिजी की रचना है। इस समझ के दो कारण थे—पहला जनश्रुति, दूसरा सकलकीर्ति की कृतियों में भी 'आदिपुराण' नामक ग्रंथ का पाया जाना। फिर भी 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण आदि को देखकर मुझे अवश्य सदेह हुआ था। इसीलिये 'प्रशस्ति-संग्रह' के अन्तर्गत उक्त ग्रंथ के परिचय में मैंने स्पष्ट लिख दिया था कि इस ग्रंथ के रचयिता का प्रकृत पता लगाने के लिये भगवन् जिनमेन एव सकलकीर्ति के आदिपुगणों को तुलनात्मक दृष्टि से अवश्य देखना चाहिये। सकलकीर्ति का 'आदिपुराण' मेरे सामने नहीं था, इसलिये उस समय मैं उसमें इस 'श्रीपुराण' का मिलान करने में असमर्थ रहा। साथ ही साथ प्रशस्ति-संग्रहान्तर्गत सभी ग्रंथों को आमूलाग्र देखने का अवकाश मिलता भी नहीं था। खैर, पीछे प० नेमिराजजी शास्त्री, मैसूर के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'श्रीपुराण' में जिनसेन-कृत 'आदिपुराण' के श्लोक हा सगृहीत हैं, चिनके द्वारा श्रीऋषभदेव की सत्सिद्ध जावनीमात्र सकलित हैं। फिर भी पता नहीं लगा कि इसके सम्प्रकर्ता कौन हैं।

अतः मैंने अर्थशास्त्रविशारद, विद्यालकार, मद्रासहोपाध्याय डॉ० आर० रामशास्त्रीजी, बा० ए०, पी०एच०डी०, विश्रान्त मैसूर प्राच्यकोषागाराध्यक्ष एव शासनविमर्शशास्त्राध्यक्ष को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर शीघ्र ही इसके लिये एक पाणिट्यपूर्ण प्रस्तावना लिख भेजने की कृपा की।

बहुभाग प्रशस्तिशा के समझ एव मशोधन में मेरे भूतपूर्व सङ्कागी कान्यपुराणतीर्थ धामान् प० हरनाथजी द्विवेदी एव अनुक्रमणिका तैयार करने में न्याय ज्योतिषतीर्थ श्रीयुत प० नेमिचन्द्रजी से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। अतः उन्हें भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

इस 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित ग्रन्थों की वर्णानुक्रम सूची

नाम	पृष्ठ सं०	नाम	पृष्ठ सं०
१ अर्थप्रकाशिका	... ६६	२८ प्रमेयकगिठिका	... ७२
२ अलंकारसंग्रह	... २२	२९ प्रमेयग्लमालालंकार	... ६८
३ कलिकुण्डाराधनाविधान	... ६५	३० प्रवचनपरीक्षा	... ६८
४ कल्याणकारक	... ५०	३१ प्राकृतव्याकरण	... १७३
५ कल्याणमन्दिर	... १०८	३२ बीजकोश	... ३६
६ कपायजयभवनः या कपायजय- चत्वारिंशत्	... १७१	३३ भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका	... ३०
७ कातंत्रविस्तर	... १६८	३४ भव्यानन्दशाल	... ३४
८ केवलज्ञानहोग	... २५	३५ मदनकामरत्न	... १४
९ गणधरवल्लयकल्प	... ६६	३६ मृत्युंजयागधनाविधान	... ६०
१० गीतवीतराग	... ६१	३७ रत्नत्रयोद्यापनपूजा	... १५६
११ चन्द्रप्रभचरितव्याख्यान	... ३	३८ रत्नमञ्जूषा	... ८२
१२ जिनयज्ञफलोदय	... १६	३९ रामपुराण	... १५५
१३ जिनसहस्रनामटीका	... १८८	४० लोकतत्त्वविभाग	... ११२
१४ जिनसंहिता	... ५८	४१ वज्रपंजराधनाविधान	... ८८
१५ तत्त्वार्थवृत्ति	... १७६	४२ वर्द्धमानकाव्य	... ८६
१६ दशभक्त्यादिमहाशास्त्र	... १२०	४३ विद्यानुवादांग	... ८
१७ दानशासन	... २८	४४ श्रीपुराण	... ११७
१८ निदानमुक्तावली	... १३	४५ शृङ्गागर्णवचन्द्रिका	... ७३
१९ नेमिपुराण	... १८२	४६ पद्मदर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश	... २०
२० न्यायमणिदीपिका	... १	४७ मरस्वतीकल्प	... ८५
२१ पञ्चनमस्कारचक्र	... ४८	४८ सहस्रनामाराधना	... ६२
२२ परसमयग्रन्थ	... १६८	४९ सारसंग्रह	... १४६
२३ पार्श्वपुराण	... १६४	५० सिद्धचक्र	... १०६
२४ प्रतिष्ठाकल्प	... १६५	५१ हनुमच्चरित्र	... ५
२५ प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण	... ४३	५२ हरिवंशपुराण	... १५१
२६ प्रतिष्ठालिलक	... १६१	५३ हरिवंशपुराण	... १७६
२७ प्रतिष्ठाविधान	... १०३	५४ त्रैवर्णिकाचार	... ७८

पहले मैंने समझा था कि 'श्रीपुराण' भट्टारक सकलकीर्तिजी की रचना है। इस समझ के दो कारण थे—पहला जनश्रुति, दूसरा सकलकीर्ति की कृतियों में भी 'आदिपुराण' नामक ग्रंथ का पाया जाना। फिर भी 'श्रीपुराण' के भगलाचरण आदि को देखकर मुझे अवरय संदेह हुआ था। इसीलिये 'प्रशस्ति-संग्रह' के अन्तर्गत उक्त ग्रंथ के परिचय में मैंने स्पष्ट लिख दिया था कि इस ग्रंथ के रचयिता का प्रकृत पता लगाने के लिये भगव जिनमेन एव सकलकीर्ति के आदिपुराणों को तुलनात्मक दृष्टि से अवरय देखना चाहिये। सकलकीर्ति का 'आदिपुराण' मेरे सामने नहीं था, इसलिये उस समय मैं उसमें इस 'श्रीपुराण' का मिलान करने में असमर्थ रहा। साथ ही साथ प्रशस्ति-संग्रहान्तर्गत सभी ग्रंथों को आमूलाग्र देखने का अवकाश मिलना भी नहीं था। खैर, पीछे प० नेमिराजजी शास्त्री, मैसूर के एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 'श्रीपुराण' में जिनमेन-कृत 'आदिपुराण' के श्लोक ही संगृहीत हैं, जिनके द्वारा श्रीऋषभदेव की सत्सि जावनीमात्र सकलित है। फिर भी पता नहीं लगा कि इसके संग्रहकर्ता कौन हैं।

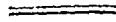
अतः मैं अर्थशास्त्रविशारद, विद्यालकार, महामहोपाध्याय डॉ० आर० रामशास्त्रीजी, बी. ए., पी. एच. डी., विश्रांत मैसूर प्राच्यकोषागार-यज्ञ एव शासनविमर्शशास्त्राध्यक्ष को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर शीघ्र ही इसके लिये एक पाण्डित्यपूर्ण प्रस्तावना लिख भेजने की कृपा की।

बहुभाग प्रशस्तियों के संग्रह एव मशोधन में मेरे भूतपूर्व सहायका काव्यपुराणतीर्थ धामान् प० हरनाथजी द्विवेदी एव अनुक्रमणिका तैयार करने में न्याय ज्योतिषनीर्थ श्रीयुत प० नेमिचन्द्रजी से मुझे पर्याप्त सहायता मिली है। अतः उन्हें भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

आपाठ शु० १५ वीर स० २४६८

—के० भुजवली शास्त्री

# प्रशस्ति-संग्रह



(१) ग्रन्थ नं० १९६  
ख

## न्याय-मणिदीपिका

कर्ता—

विषय— न्याय

भाषा— संस्कृत

लम्बाई ३ इंच

चौड़ाई ७ इंच

पृष्ठसंख्या ११६

### मंगलाचरण

श्रीवद्धमानमकलङ्कमनन्तवीर्यमाणिक्यनन्दियतिभाषितशास्त्रवृत्तिम् ।

भक्त्या प्रमेन्दुरचितालघुवृत्तिद्वष्ट्या नत्वा यथाविधि वृणोमि लघुप्रपञ्चम् ॥

मदज्ञानमरुन्नीतं मलमत्र यदि स्थितम् ।

तस्मिन्काशयोर्मिवत्सन्तः प्रवर्त्तन्तामिहाग्निवत् ॥२॥

इह हि खलु सकलकलङ्कविकलकेवलावलोकनविमललोचनावलोकितलोकालोकपरम-  
गुरुवीरजिनेश्वररुचिरमुखसरसीरुहसमुत्पन्नसरस्यतीसरसानवरतस्मरणावलोकनसद्भाषवृत्त-  
चित्तवृत्तिः सकलराजाधिराजपरमेश्वरस्य हिमशीतलस्य महाराजस्य महास्थानमध्ये  
निष्ठुरकप्रवादसौष्टवदुष्टसौगतान् चतुलघटयादादिपटिष्ठतया तारादेयताधिष्ठितदुर्धटघट-  
वाद्भिन्नयेन राक्षा सभ्यैः सभासद्भिश्च परिप्राप्तजयप्रशस्तिः सकलतार्किकचूडामणिमरीचिमे-  
चकितरुचिररुचिकचक्रायमानचरणनखरो भगवान् भद्राकलंकदेवो विश्वविद्वन्मण्डलहृदया-  
ह्लादियुक्तिशास्त्रेण जगत्सद्धर्मप्रभावमवबुधत्तमाम् । तदनु बालाननुजिघृक्षुरक्षयगुणोऽनुगण-  
मोक्षलक्ष्मीकटाक्षचित्तेपनिदानपरोक्षादत्तो गुणमणिवृन्देन भव्यवृन्दमानन्दयन्मणिक्यनन्दि-  
मुनिवृन्दारकस्तत्रकाशितशास्त्रमहोदधेरुद्वृष्ट्य तदवगाहनाय पोत्रोपमं परीक्षामुखनामधेय-  
मन्वर्यमुद्वहत्प्रकरणमारचयन्नुदा तदनु तत्रकरणस्य विशिष्टतमोऽतिस्पष्टं मृष्टेष्टाः  
प्रभाचन्द्रमद्वारकः प्रमेयकमलमार्त्तगडनामघृहद्वृत्तिं चरीकरोतिस्म । तद्वृत्तिग्रन्थस्य ।

मार्त्तण्डमण्डलादितत्वेन सकलविद्ययित्तप्रकाशकत्वेऽपि बालान्तकरणगुहाभ्यन्तरप्रकाशन  
 सामर्थ्याभावमाकलय्य तत्प्रकाशनाय द्वापिकायितां सकललोकालद्वारपोष्यत्वतो  
 रक्षायितप्रमेयैरचितन्वन प्रमेयरत्नमालेन्यन्यर्थनामोद्धर्त्तां स्थालोक्तप्रवृत्तिमतां पुसां  
 प्रोहे हतघटपदादियस्तुप्रतिगिम्बितरत्नकण्ठिकायितन्वेन धा म्याभिधेयानि प्रमेयाणि  
 प्रकाशयन्तीं लक्ष्मीं धृतिं लप्यन्तवायाचाययया मयानुग्रहकार्यमौकर्यभूक्तिसांहुमार्यो गुण-  
 गाम्भोर्यशाला वैजयप्रियमूनुना हारपाख्यवैश्यात्तमेन श्वरीपालशशपुमणिना शान्तिपेश  
 ध्यापनामिलायिणा प्रेरित मद्र प्रारिषु तदादीं विकारितवृत्तेरभिमत परिसमात्तर्ष  
 शिष्यचारपरिपालनार्थं पुगयावाप्यर्थं विजिण्येष्टेयनामभिष्ठीति ।

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ६४, पंक्ति १ —

इत्यभिधानादिति प्रकाश्य प्रकारान्तर्गत तदुतानायाग वर्णयित्वा तादृग्भावप्रमाय  
 प्रतिपादककारिकासाह 'शुद्धीत्वति' धस्तुमद्वाय गृहात्वत्यादिसामप्रथो सर्वज्ञाभावप्राहक-  
 मभ्रयप्रमाणमसर्वस्य नोदेति इत्याह । तपाचेत्यपरथा प्रतिनियतकालप्रतिनियतज्ञे  
 रक्षणयस्तुसङ्घयग्रहणोऽन्यत्रान्यथा गृह तस्यैवस्मृतिर्धेति रीत्यसर्वभनास्तिताज्ञानमभाव  
 प्रमाण न युक्तमन्यत्रान्यथा गृहातस्यैवस्मृत्प्रसङ्गान् ।

अन्तिम भाग—

अकल करजनन्दिप्रभेन्दुमदनन्तगुणिभक्त्या ।  
 एतद्दुद्धिकां शालो निरुद्धगारि ने (१) प किल मुक्तभक्त्या ॥  
 स्याद्वादनीतिकान्तामुखलोकनमुख्यसौरुपमिच्छन्त ।  
 न्यायमणिनापिका हृष्टासागार प्रवर्त्तयन्तु बुधा ॥

इति परात्तामुखलधुवृत्ते प्रमेयरत्नमालानामधयप्रसिद्धाया न्यायमणिदीपिकासहाया  
 टाकायो षष्ठ परिच्छेद ।

शास्त्र के प्रतिलिपि कर्ता के नामादि—

श्रीमत्स्वर्गाधिनायूदेवकुमारस्यात्मजदानवीरवानुनिर्मलकुमारस्यादेशमादाय आगरा-  
 प्रान्तगतमकरीलीनिधामिन रेवतीलालस्यात्मजराजकुमाराविद्याविना लिखितमिदं शास्त्रम् ।

इदं लक्ष्मणभट्टेन विलिखितं प्रथमं शास्त्रं लक्ष्मीकृत्य लिखितम् । तसोघयितव्या  
 विद्वज्जने । प्रतिलिपिकाल—स० १९८० भाषण-गुरु-त्रयोदशी ।

इसमें तो ग्रन्थकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है । किन्तु मित्रवर प० सुपरप्य जी शास्त्री  
 का कथन है कि ताडपत्र की किसी प्रति में इस न्यायमणिदीपिका के रचयिता अज्ञितमेना



चार्य स्पष्ट लिखा हुआ है। चल्कि पं० सुब्रह्मय जी का यह कथन—'Catalogue of Sanskrit and Prakrita Manuscripts in the Central Provinces and Berar by R. B. Hira Lal B. A. (Appendix B)' से भी प्रमाणित हो जाता है। फिर भी जैनइतिहासान्वेषी इस थोर अवश्य ध्यान देंगे। जैन-सिद्धान्त-भवन की इस प्रति के अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण इसके साहित्यिक विवेचन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इसकी संस्कृत सरल एवं प्रशस्त है।

नं० ६० को एक दूसरी प्रति भी 'भवन' में है जिसकी वर्तमान ग्रन्थ प्रतिलिपिमात्र है। वस्तुतः दोनों प्रतियाँ अशुद्ध हैं। पहली प्रति की नकल कन्नडप्रति में उल्लिखित मूडविट्टि-निवासी वामन भट्ट के पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने की है।

(२) ग्रन्थ नं० १९५-  
ख

चन्द्रप्रभचरित-व्याख्यान अग्र नाम—विद्वन्मनोवल्लभ

कर्ता—

विषय—काव्य

भाषा—संस्कृत

नम्बार्ड १३॥ इञ्च

चौड़ाई ८॥ इञ्च

पत्रसंख्या ३०६

मङ्गलाचरण

वन्देऽहं सहजानन्दकन्दलीकन्दवन्धुरम् ।

चन्द्राङ्कं चन्द्रसंकाशं चन्द्रनाथं स्मराम्यहम् ॥१॥

चन्द्रप्रभार्हधोरस्य काव्यं व्याख्यायते मया ।

विश्वमन्वयरूपेण स्पष्टसंस्कृतभाषया ॥२॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६६, श्लोकटीका १२)—

गुरुवंशमिति। अथ प्रस्थानानन्तरे। गजेन्द्रगामी गजेन्द्र इव गच्छतीत्येवं शीलः मन्-  
गामीत्यर्थः। सः कुमारः। गुरुवंशम् गुरवः महन्तः वंशाः वेणवः यस्मिन् तं पक्षे गुरुर्महान्

प्रार्थनार्थमण्डलायितत्वेन सकलविद्विधित्प्रकाशकत्वेऽपि बालान्तकरणगुहाभ्यन्तरप्रकाशन  
सामर्थ्याभावमाकलय्य तत्प्रकाशनाय द्वापिकायितां सकललोकालद्वारयोग्यत्वतो  
रक्षायितप्रमेयैरारचितत्वेन प्रमेयरत्नमालेत्यन्वयनामोद्धर्तुं स्थालोक्तप्रवृत्तिमतां पुसां  
क्रोडे वृत्तघटपनादिवस्तुप्रतिबिम्बितरत्नकण्ठिकायितत्वेन वा स्वाभिधेयानि प्रमेयाणि  
प्रकाशयन्तीं तर्षीं वृत्तिं तद्व्यनन्तशेषाचायुष्या भव्यानुग्रहकार्यसौकर्यसुक्तिसौकुमार्यो गुण  
गाम्भीर्यशालो वैजयप्रियमृनुना हीरपाख्यैश्यात्तमेन बद्धरापालवज्रयुग्मणिना शान्तिपेशा  
ध्यापनामिलापिणा प्रेरित मन् प्रारिप्सु तदादां चिकपितवृत्तेरविप्रत परिसमामर्थ  
शिष्टाचारपरिपालनार्थं पुगयावाप्त्यर्थञ्च रिजिष्ट्रेष्टदेवतामभिष्टीति ।

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६४, पक्ष १) —

इत्यभिधावदिति प्रकाश्य प्रकृष्टान्तरण्य तदुत्तानायोम दर्शयितु तावद्भावप्रमाण  
प्रतिपादककारिकायाह 'गृहीत्विति' वस्तुसद्भावे गुहात्यत्यादिसामप्रया सर्वशाभायप्रारु  
मन्भवप्रमाणमसर्वज्ञस्य नोदेति इत्याह । तथाचेत्यपरया प्रतिनिपतकालप्रतिनियतक्षेत्र  
लक्षणरस्तुमङ्गाग्रहणेऽन्यत्रान्यदा गृहृतसर्वज्ञस्मृतिश्चेति वीत्यसर्वज्ञनास्तिताज्ञानमभाय  
प्रमाण न युक्तमन्यत्रान्यदा गृहीतसर्वज्ञस्त्वप्रसङ्गात् ।

अन्तिम भाग —

अक्र० करजनन्दिप्रभन्दुसदनन्तगुणिभक्त्या ।

पतद्विक्तां बालो निरुद्धारि न (१) प किल गुहभक्त्या ॥

स्याद्वाद्नीतिकान्तामुख गौडनमुत्पत्सौठयमिच्छन्त ।

न्यायमणिदण्डिकां दृढामागारे प्रदर्शयन्तु बुधा ॥

इति पराज्ञामुखलुपुवृत्ते प्रमेयरत्नमालनामधेयप्रसिद्धाया न्यायमणिदीपिकासहाय्या  
गकार्या षष्ठ परिच्छेद ।

शास्त्र के प्रतिष्ठापि कर्ता के नामादि—

श्रीमत्स्वर्गायत्राबुद्धेकुमारभ्यात्मजदानवीरवाभूमिभक्तकुमारस्यादेशमादाय आगता-  
धान्यगतगर्शोलीविद्यामेन रैगनीलालम्यात्मजगङ्गुमारविद्यायिता स्थितमिदं शास्त्रम् ।

इदं लक्षणमष्टेन विष्णिमिन् प्रथमं शास्त्रं लक्ष्यं स्थितम् । तशोपयितव्या  
विद्वज्जने । प्रतिष्ठितिकाल—म० १६८० भाग्य-रुद्र-प्रयादसी ।

इसमें तो ग्रन्थकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है । किन्तु मित्रवर प० सुप्रसन्न जी शारदा  
का कथन है कि तादृश की किता प्रति म इम न्यायमणिदण्डिका के रचयिता अज्ञितमेना

चार्य स्पष्ट लिखा हुआ है। वल्लि पं० सुब्रह्मय्य जी का यह कथन—'Catalogue of Sanskrit and Prakrita Manuscripts in the Central Provinces and Berar by R. B. Hira Lal B. A. (Appendix B)' से भी प्रमाणित हो जाता है। फिर भी जैनइतिहासान्वेषी इस ओर अवश्य ध्यान देंगे। जैन-सिद्धान्त-भवन की इस प्रति के अत्यन्त अशुद्ध होने के कारण इसके साहित्यिक विवेचन पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सकता। तो भी यह कहना ही पड़ेगा कि इसकी संस्कृत सरल पद्य प्रशस्त है।

नं० ६० की एक दूसरी प्रति भी 'भवन' में है जिसका वर्तमान ग्रन्थ प्रतिलिपिमात्र है। वस्तुतः दोनों प्रतियाँ अशुद्ध हैं। पहली प्रति का नकल कन्नडप्रति में उल्लिखित मूडविद्रि-निवासी वामन भट्ट के पुत्र लक्ष्मण भट्ट ने की है।

(२) ग्रन्थ नं० १९५-  
ख

चन्द्रप्रभचरित-व्याख्यान अपर नाम—विद्वन्मनोवल्लभ

कर्ता—

विषय—काव्य

भाषा—संस्कृत

जन्माई १३॥ इ०

चौड़ाई ८॥ इ०

पत्रसंख्या ३०६

मङ्गलाचरण

घन्देऽहं सहजातन्दकन्दलीकन्दवन्धुरम् ।

चन्द्राङ्कं चन्द्रसंकाशं चन्द्रनार्थं स्मराम्यहम् ॥१॥

चन्द्रप्रभार्हधीरस्य काव्यं व्याख्यायते मया ।

विश्वमन्वयरूपेण स्पष्टसंस्कृतभाषया ॥२॥

x

x

x

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ६६, श्लोकटीका १२)—

गुरुवंशमिति । अथ प्रस्थानानन्तरं । गजेन्द्रगामी गजेन्द्र इव गच्छतीत्येवं शीलः मन्-  
गामीत्यर्थः । सः कुमारः । गुरुवंशम् । वंशाः वेणवः यस्मिन् तं पत्ने गुरुवंशान्



यश कुल यस्य तम् । अग्रभागसत्वम् अग्रमाणा प्रमाणाहिता मत्वा प्राणिन यस्मिन् तं पक्षे बहुलसामर्थ्यम् । अत्युन्नतशास्त्रिणीम् अत्युन्नत्या शालिनीम् । सम्पूर्णास्थिति द्यथास्थिति पक्षे मर्यादा । अधान धरन्त । क्विरावृति क्विरा आवृतिर्यस्य त । एक । स्वसमान स्वस्य समान । नग पर्वत । आगुलोके वर्गा आवृम् क्व ने लि । "लेपोपमा ।

\*

\*

\*

\*

\*

अन्तिम भाग—

इति धीरनन्दिवृतायुव्याङ्गे चन्द्रप्रभवचित महाकाव्ये तद्व्याख्याने च विद्वन्मनोवल्हभाख्ये अष्टादश सर्ग समाप्त ।

चन्द्रप्रभवचित को दो गीकार्ये उपलब्ध हैं । एक चाणक्यवृत्त द्वारा दूसरा भट्टारक प्रभाचन्द्रवृत्त । भट्टारक प्रभाचन्द्र का समय वि० म० १३१६ और चाणकीयवृत्त का समय शकाब्द १३२१ के बाद का अनुमित होता है । चाणकीयवृत्त का यह समय तभी सम्भवपरक कहा जा सकता है जब कि यही पार्श्वाम्युव्य के भी गीकार्य हैं । चाणकीयवृत्त चन्द्रप्रभवकाव्य की टीका को श्लोकसख्या छ हजार मानी गयी है । 'भवन की इस प्रति में भी लगभग छ हजार श्लोकसख्या अनुमित होती है । अत यह कहा जा सकता है कि चाणकीयवृत्त जी की ही यह टीका है ।

ज्ञात जाता है कि टीकाकार ने इस टीका में व्याकरण, भलेकार एवं कोपादि की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है ।

पार्श्वाम्युव्य के गीकार्य चाणकीयवृत्त जी की निम्नलिखित कृतियों का पता लगता है —

- (१) चन्द्रप्रभवकाव्य की टीका श्लोक-सख्या—६०००
- (२) आदिपुराण ३०००
- (३) यशोधरचरित
- (४) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका
- (५) पार्श्वाम्युव्यकाव्य की टीका
- (६) गीतवीतराग

(३) ग्रन्थ नं० १९८  
ल

## हनुमच्चरित्र

कथा—भक्ति प्रसंगी

विषय—चरित्र

भाषा—संस्कृत

संख्या ११ ३२५

शीर्षक ७ ३२५

पत्रसंख्या ६७

### मंगलान्तरण

सद्बोधसिन्धुचन्द्राय सुप्रताय जिनेशने ।  
सुप्रताय नमो नित्यं धर्मशस्त्रार्थसिद्धये ॥१॥  
वृषभाय जिनेन्द्राय वृषाय परमेष्ठिने ।  
नित्यं स्वान्यप्रकाशाय नमो नामिसुताय ते ॥२॥  
नमः श्रोत्रेन्द्रनाथाय सर्वज्ञाय शिवात्मये ।  
अमन्दशर्मकन्दाय कन्दाय परमात्मने ॥३॥  
शान्तिं कुर्यादनेकान्तबुद्धिं मिद्वच्यर्थवायिनीम् ।  
अमातसोरजलधिमन्थने मन्दराचलः ॥४॥  
श्रीमते घर्द्धमानाय नमः श्रेयोविधायिने ।  
अघ्रात्यरातिघ्राताय मुक्तिमार्गप्रदायिने ॥५॥  
दुर्घारापारसंसारपारावारैकतारफान् ।  
प्रणोमि परितो नित्यमपरान् जिननाथकान् ॥६॥  
सार्द्धद्वयमिते ह्येषे सर्वान्तर्कविघर्जिते ।  
सीमन्धरादिदेवानां पादपद्मान् प्रणोम्यहम् ॥७॥  
वसन्ते भाषिनोऽतीता विबुधालिप्रपूजिताः ।  
नोमि सर्वान् जिनान् जैनमतसिन्धुविधून् सदा ॥८॥  
आचाराद्गादिभेदेन पूर्वान्तांश्च प्रकीर्णकान् ।  
निर्गतां जिनसङ्घक्रान् सारदां नोमि शारदाम् ॥९॥  
यस्याः प्रसादतः सर्वो चित्तिर्यं श्रुतसागरम् ।

परमाप्राप्ति भाषानां तां प्रणीमि त्रिनास्यजाम् ॥१०॥  
 त्रिहोतनयकाटीनां मुनीनां पादपंकजान् ।  
 स्मरामि स्मरजेतुणां ज्ञानृणां भयशरिधे ॥११॥  
 नमामि घृषमेनादिगौतमानान् गणेश्वरान् ।  
 साङ्ख्योदयतुर्गणेशान् व्यक्तिकान् श्रीसुख्यवान् ॥१२॥  
 गौतम धीसुधर्मा च जष्यारण्यमुनिवेशली ।  
 जय केशलिन पृथ्या नो नित्य मन्तु मिदये ॥१३॥  
 धोषिष्णुनन्विमित्राख्योऽपरम्पितमहातपा ।  
 गोयद्धना भद्रयाहु पञ्चतान् धृतसागरान् ॥१४॥  
 द्वादशांगधृताऽथामनारेण ज्ञानित न कान् ।  
 प्रणीम्यहं त्रिशुदुष्या तान् पञ्चपाण्डित्यदेतवे ॥१५॥  
 सृष्टे समयभारस्य कर्ता सूरिपदेदयम् ।  
 श्रीमच्छ्रीकुन्दकुम्हार्यस्तनीतु मतिमेदुराम् ॥१६॥  
 पुराणपद्धतिर्यस्य हृदये प्रसृत गता ।  
 प्रणीमि त्रिनमेनस्य चरणौ शरणं सताम् ॥१७॥  
 ज्ञोयात्ममन्तभद्रोऽर्त्ता भव्यशैरवचन्द्रमा ।  
 दुर्घादिषादक्षशुद्धनां शमनैकमहोपधि । १८॥  
 अक्षल्लङ्घ्युक्तोऽयादक्षल्लकपदेश्वरम् ।  
 योऽज्ञाना बुद्धिद्वेष्यज्ञानागुम्फदाहत ॥१९॥  
 शुद्धसिद्धान्तपायोधिपाराण पद्मेऽवर ।  
 मेमिचन्द्रशिवज्ञानन्दपद्मीमुख्यतां गत ॥२०॥  
 प्रभा गुणावती यस्य प्रभाचन्द्रस्य सूरिण ।  
 साऽस्तु मे बुद्धिमिद्वयार्थं काश्यायादिरमाल्य ॥२१॥  
 पञ्चाचाररता येऽन्य सूर्य सस्तुता सुरे ।  
 ते मे दिशन्तु ममोर्घां पद्मनन्दीश्वरादय ॥२२॥  
 मङ्गलाङ्गिमिद्वयार्थं मया भावनं सस्तुता ।  
 श्रीहनुमत्कुमारस्य कथाया मिद्वय पुन ॥२३॥

x

x

x

पञ्च भाग — (पृष्ठ ३१, श्लोक १ )

इत्युक्तं केनचित्तावन्कुमागय जितडिपे ।  
 अज्ञानाप्रपन्नं हृत्तं सर्वं कालविशेषप्रसम् ॥२६॥

मित्रागच्छ वयं यामो महेन्द्रपुरभेदने ।  
 अञ्जना मे स्थिता तत्र चित्तचोरगतम्करी ॥१७॥  
 स्वमिप्रेण स्वमं यागुरुचलत्त ज्वालुनं पुरम् ।  
 स्वात्मीयं गत्रमाप्ता यञ्जितः स्वजनंस्नदा ॥१८॥  
 संप्रानो नगरावाता ह्यसंभृतमानसः ।  
 प्रियाद्भूमिव संप्रानो दृष्ट्वा पुरवरं तदा ॥१९॥  
 प्रभशनकुमारस्यागमनं श्रुत्या महोपनिः ।  
 पुरशृङ्गारमकरोत् धंजयन्यादिनोरगैः ॥२०॥

अन्तिम भाग—

जैनेन्द्रशासनसुधारम्पानपुष्टो देवेन्द्रफोत्तियतिनायकनेष्टिकात्मा ।  
 तच्छिष्यस्यमधुरेणा चन्द्रमेतत्तु मूर्धं समोरगासुतस्य महर्दिकस्य ॥११॥  
 विजयशैलेश्वरधूनोशिलातलेरुराजहंसमोन्मयाय कौडनप्रियः  
 स्वमतसिन्धुवर्द्धने प्रकृष्ट्यामिनोतपननेज्जमाद्भुतप्रभामितः ।  
 सुरेन्द्रफोत्तिविद्ययादिनन्द्यनंगमर्द्धनेकपणितः फलाभरः  
 तदीयदेशनामवाप्य शुद्धबोधमाश्रितो जितेन्द्रियस्य भक्तितः ॥२॥  
 गोलाशृंगारवंशे नभसि दिनमणिदीर्घनिहो विपदिचम्  
 भार्यां वीधा प्रतीतातनुकहविदिनो ब्रह्मदीक्षाश्रितोऽभृद् ।  
 तेनोच्चैरेव ग्रन्थः कृत इति सुतरां शैलराजस्य सुरेः  
 श्रीविद्यानन्दिदेशान् मुकृतनिधिवजात्सर्वमिडिप्रमिद्धयै ॥९३॥  
 इदं श्रीशैलराजस्य चरितं दुरितापहम् ।  
 रचितं भृगुकण्ठे च श्रीनेमिजिनमन्दिरे ॥९४॥  
 धर्मार्थी लभते वृषं धनयुतो वृद्धिञ्च निःस्यो धनम्  
 पुत्रार्थी स्वकुलोचितं च तनयं कामांश्च कामो लभेत्  
 मोक्षार्थी वरमोक्षमाशु लभते प्रोक्तेन मन्त्रेण किम्  
 ह्येतत् शैलमुनीन्द्रराजचरितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥९५॥  
 पठिता पाठकश्चैव यक्ता श्रोता च भायुकः ।  
 चिरं नन्दादयं ग्रन्थस्तेन सार्द्धं युगावधिः ॥९६॥  
 प्रमाणास्य ग्रन्थस्य द्विसहस्रमितं कुधैः ।  
 श्लोकानामिह मन्तव्यं हनुमच्चरिते शुभे ॥९७॥

इतिश्रीहनुमच्चरित्रे ब्रह्माजितविरचिते एकादशः सर्गः ।

इसके लिपिकर्त्ता काशीनिवासी षट्क प्रसाद नाम के एक कायस्थ हैं। लिपिकाल स० १९७८ है।

इस प्रति के भतिरिक्त 'भवन' में बहुत प्राचीन १६० नम्वर वाली दूमरी प्रति भी है। खेद के साथ यह कहना पड़ता है कि ये दोनों प्रतियाँ भृगुद्वियों से मरी हुई हैं। बल्कि इसी प्राचीन प्रति से प्रस्तुत प्रति उतारी गयी है।

इसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्त्ता अजित ब्रह्मचारी देवेन्द्रकीर्त्ति जी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह और माता का बीधा था। इनके घंश का नाम गोल्लयङ्गार है। विद्यानन्दजी की आशानुसार ही इन्होंने भृगुकच्छ (मरोच) नगर में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। ग्रन्थ-रचनाकाल प्रशस्ति में नहीं दिया गया। पं० ज़ुगल-किशोर जी की राय है कि यह अजित ब्रह्मचारी १६वीं शताब्दी में हुए हैं।

(४) ग्रन्थ नं०  $\frac{२०४}{८}$

## विद्यानुवादांग (जिनेन्द्रकल्याणाम्बुदय)

कर्त्ता—

विषय—प्रतिष्ठापाठ

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १४ इंच

चौड़ाई ५॥ इंच

पत्रसंख्या १३१

### मंगलाचरण

लक्ष्मीं दिशतु धो यस्य ज्ञानार्जो जगन्नाथम् ।

धृष्टीपि स जिनः श्रीमाध्याभेयो नौरिवाम्बुधौ ॥१॥

माङ्गल्यमुत्तमं जीयाच्छरणयं यद्रजोहरम् ।

निरहस्यमरिचं तत्पञ्चमहात्कं महः ॥२॥

दोषसन्तापशमनीर्वाग्भयोत्क्या जिनचन्द्रजा ।

धर्षयन्ती धृताम्भोधिं स्वान्तं ध्वान्तं धुनोतु न ॥३॥

मोक्षलक्ष्म्या कृत कण्ठहारनायकरक्षताम् ।

रक्षत्रयं नमः सम्यग्दृग्ज्ञानाचारितक्षयम् ॥४॥

स्याद्वादाकाशपूर्णैन्दुर्भल्याम्भोरुहभानुमान् ।  
 दयागुणसुधाम्भोधिर्धर्मः पायादिहार्हताम् ॥५॥  
 अर्हिसास्त्रुतास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ।  
 सर्वपापप्रशमनं वर्द्धतां जिनशासनम् ॥६॥  
 पञ्चकल्याणसम्पूर्णाः पञ्चमज्ञानभासुराः ।  
 नः पञ्च गुरवः पान्तु पञ्चमीगतिसाधकाः ॥७॥  
 वृषभादीनहं वर्द्धमानान्तान् जिनपुङ्गवान् ।  
 चतुर्विंशतितीर्थेशान् स्तुवे त्रैलोक्यपूजितान् ॥८॥  
 वन्दे वृषभसेनादिगणिनो गौतमान्तिमान् ।  
 श्रुतकैवलिनः सूरीन् मूढोत्तरगुणान्वितान् ॥९॥  
 अनुयोगचतुष्कादिजिनागमविशारदान् ।  
 जातरूपधरांस्तोष्ये कविवृन्दारकान् गुरून् ॥१०॥  
 अर्हदादीनभीष्टार्थसिद्धयै शुद्धितयान्वितः ।  
 इत्यनन्तगुणोपेतान् ध्यात्वा स्तुत्वा प्रणम्य च ॥११॥  
 श्रीमत्समन्तभद्रादिगुरुपर्वक्रमागतः ।  
 शास्त्रावतारसम्बन्धः प्रथमं प्रतिपाद्यते ॥१२॥  
 पुरा वृषभसेनेन गणिना वृषभार्हतः ।  
 अनगार्योभ्यध्यायेत्तत् भरतेश्वरचक्रिणे ॥१३॥  
 ततोऽजितजिनेन्द्रादितीर्थकृद्भ्योऽवधार्यताम् ।  
 तत्तद्गणधरास्तत्र धार्मिकारणामिश्रवन् ॥१४॥  
 ततः श्रीवर्द्धमानार्हद्गिरमाकर्ण्य गौतमः ।  
 राज्ञे लोकेपकारार्थं श्रेणिकायाब्रवीद् गणी ॥१५॥  
 तस्माद्गुणभृदात्रायादिनुक्रमसमागतः ।  
 नाम्ना जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयोऽयमिहाच्यते ॥१६॥  
 सेनर्व रसुवीर्यभद्रसमाख्यया मुनिपुङ्गवाः  
 नन्दिचन्द्रसुकीर्त्तिभूषणहंज्ञया ऋषिसत्तमाः ।  
 सिंहसागरकुंभ(?)आलवनामभिर्यतिनायकाः ।  
 देवनागसुदत्ततुंगसमाह्वयैर्मुनयोऽभवन् ॥१७॥  
 तेभ्यो नमस्कृत्य मया मुनिभ्यः  
 शास्त्रोदधेः सूक्तिमर्णांश्च लब्ध्वा ।

हारं विरच्यार्यज्ञनोपयोग्यं  
 जितेन्द्रकन्याशयिधिर्जवायि ॥१५॥  
 र्थाचार्यस्तुपुण्यपात्रजिनमेनाचार्यसंभाविते  
 यः पूर्वं गुणभद्रमूरिषसुनन्दीन्नादिनस्युजितः ।  
 यथाशापरहस्तिमहकथितो यश्चैकमंधीरितः  
 तेभ्यस्स्याद्दत्तसारमा (१) रंरचितः स्याज्जैनपूजायाम् ॥१६॥  
 तर्कव्याकरणागमादिलहरीपूर्णश्रुताभ्योनिधेः ।  
 स्यादादाम्बरभाररस्य धरमेनाचार्यपर्यस्य घ  
 शिप्येणार्थपक्षोपिदेन रचितः कौमारभ्येनेमुने (१) ।  
 प्रथोऽयं जयताज्ञगद्यगुरोर्बिम्बप्रतिष्ठापिधि ॥२०॥  
 पूर्वस्मात् परमागमारसमुचितान्याशय पदान्यहम् ।  
 तत्रे प्रस्तुतसिद्धयेऽत्र यितिह्याभ्येतन्नरोपायतत् (१)  
 कन्याण्येषु रिमूयणानि धनिकाज्ञानीय निरिच्छन ।  
 शोभार्य स्वगनुं न भूययति किं सा राजने नास्य ते ॥२१॥  
 जितेन्द्रधारिमुनिमंथमस्तथा जितेन्द्रकन्याशयुक्ति प्रणोय  
 जितेन्द्रपूर्णां रचयन्ति येऽमी जितेन्द्रसिद्धधियमाश्रयन्ति ॥२२॥

मध्यभाग (४६ पृष्ठ ७ पंक्ति)

भतिनुतजलगन्धैरत्तनैरत्ततागैर्घत्तुसुम निवेदेष्विपभूषे फण्डि ।  
 जिनपतिपद्मम् योऽहं देद्वं नीयम् स भवति भुवनेशो मोक्षलक्ष्मीनिवास ॥

ॐ ह्रीं नमो ध्यनृभिस्त्रीप्सितेभ्य स्वाहा  
 नमः पुण्ड्रजितेन्द्राय नमोऽजितजितेशिने ।  
 नमः समधनायाय नमोऽभिनन्दनार्हते ॥  
 नमः सुमतये तुभ्य नमः पदाप्रभाय च ।  
 नमः सुपार्थदेवाय नमश्चन्द्रप्रभाय ते ॥

अन्तिम पद्य :—

तिथिरैकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रा द्विगुणं भवेत् ।  
 लग्नन्तु त्रिगुणं तेषां शुभाशुभफलं भवेत्

ग्रन्थकर्ता के मंगलाचरणागत १६वें श्लोक से यह ज्ञात होता है कि वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनन्दी, इन्द्रनन्दी, आशाधर और हस्तिमल इन आठ साहित्यिकरत्नों ने प्रतिष्ठा-ग्रन्थ लिखे हैं। और इन्हीं के आधार पर आर्यप या अप्पयार्य ने इस विद्यानुवादाङ्ग प्रतिष्ठा-ग्रन्थ की रचना की है। किन्तु इस समय उल्लिखित इन प्रतिष्ठाग्रन्थ प्रयोक्ताओं के सभी ग्रन्थ प्रायः उपलब्ध नहीं होते। इसके २०वें श्लोक से यह भी विदित होता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता धरसेनाचार्य और कुमारसेन मुनि को अपना गुरु मानते थे। इन्होंने इन्हें तर्क व्याकरण एवं सभी आगमों का मर्मज्ञ भी लिखा है। इसी श्लोक में "कौमारसेनेर्मुनेः" यह पद जो मिलता है, वह व्याकरण की दृष्टि से चिन्तनीय है। क्योंकि नियमानुसार "कौमारसेनस्य" होना चाहिये था। किन्तु इस शुद्धरूप की प्रयुक्ति से द्रव्योभंग हो जाता है। यह प्रति बहुत अशुद्ध है, अतः जिन महाशयों के पास इसकी दूसरी कोई प्रति हो वे उससे इसका मिलान कर इस सन्दिग्ध बात पर प्रकाश डालें। संभव है कि दूसरी प्रति शुद्ध हो।

भवन की इस प्रति में तो प्रशस्ति नहीं है। किन्तु "Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Central Provinces & Berar" में— जिसका सम्पादन राय बहादुर हीरालालजी ने किया है उसमें आर्यप या अप्पयार्य का संक्षिप्त परिचय-प्रदर्शन-पूर्वक कारंजा शास्त्रभाण्डार से प्राप्त प्रति से निम्न लिखित प्रशस्ति उद्धृत की है:—

शाकान्दे विधुवेदनेद्वाहिमगे (?) सिद्धार्थसंवत्सरे  
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुण्यार्कचारेऽहनि ।  
ग्रन्थो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक्  
सम्पूर्णोऽभवदेकशैलनगरे श्रीपालबन्धुजितः ॥

इति श्रीसकलताकिकचक्रार्त्तिश्रीसमन्तभद्रमुनीश्वरप्रभृतिकविद्वन्द्वारकवन्द्यमानसरो-  
घरराजहंसायमानभगवदहृतप्रतिमाभिप्रेकविशेषविशिष्टगन्धोदकपवित्रीकृतोत्तमाङ्गे नाप्पया-  
र्येण श्रीपुष्पसेनाचार्योपदेशकमेण सम्यग्विचार्य पूर्वशास्त्रेभ्यः सारमुद्घृत्य विरचितः  
श्रीजिनेन्द्रकल्याणभ्युदयापरनामधेयखिद्रशाभ्युदयोऽर्हत्प्रतिष्ठाग्रन्थः समाप्तः ॥

इस प्रशस्ति से यही बात ज्ञात होती है कि अप्पयार्य ने सिद्धार्थ नामक संवत्सर १२४१ माघ शुद्ध दशमी रविवार एवं पुष्य नक्षत्र में पुष्पसेनाचार्य के आदेश से रुद्रकुमार के राज्य में एकशैलनामक नगर में यह ग्रन्थ लिखकर समाप्त किया है। उल्लिखित समय ख्रिष्ट शक २०वीं जनवरी १३२० A. D. होता है। न मालूम किस आधार पर हीरालालजी ने अपने मसाले के अनुसार यह ग्रन्थ का नाम अप्पयार्य हीरालालजी ने लिखा है। यह है कि



मंगलाचरण्य का १६वाँ श्लोक भापकी नहरों में नहीं गुतरा है। क्योंकि पुण्यसेन तो मेरू ही मान्य होते हैं।

उक्त यह दृश्यतेन वर्तमान वरंगल का प्राचीन नाम है। वरंगल के और भी कई नाम हैं। यह प्राचीन तैलंग की राजधानी थी। काकतेयों ने इस पर ईस्वी सन् १११० से १३२३ ईस्वी तक राज्य किया है। इसी वंश में राजा रुद्रदेव हुए हैं। इनकी यहीं राजधानी थी। मान्य होता है राजा रुद्रदेव इस वंश के अन्तिम राजा थे, क्योंकि इस प्रशान्ति में पता चलता है कि इस ग्रन्थ की रचना ईस्वी सन् १३२० में हुई है और उस समय रुद्रदेव ही शासन कर रहे थे।

प्रशान्तिगत धरसेन, कुमारसेन, पुण्यसेन, धोषाना इन विद्वानों के समूह में मेरा इस समय कुछ भी विशेष पक्क्य नहीं है। क्योंकि धरण्येत्तोल के कतिपय शिलालेखों में धरसेन जी को छोड़कर जोय तीन नाम उपलब्ध होते हैं धरश्य, परन्तु इनमें से कुछ शिलालेखों में तो इनका समय ही नहीं दिया गया है। जिन लेखों में समय दिया गया है, वह भी "अपयार्थ" के समय में भ्रम नहीं करता। "दिग्भर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" में आये हुए इन उल्लिखित नामवाले ग्रन्थकर्ताओं की प्रतियों को देखने से संभवतः इनका विशेष परिचय मित सकता है।

१ हिन्दी-विरवशेष भाग ३ पृष्ठ ४११ और List of the Antiquarian Remains in the Nizam's Territories By consens "Another name of Warrangal × ×, is Akshalingar, which in the opinion of Mr. consens is the same yekshilangara"

—The Geographical Dictionary of Ancient & Mediaeval India By Nandoo Lal Dey P. 8

२ अनुमदुन्दपुर, अनुमदुन्दपट्टन, कोंडकोज (of Ptolemy), वेण्णाकरक, एकरुल्लिनगर आदि।  
(The Geographical Dictionary P. 262)

३ रुद्रदेव का शिलालेख JASB, 1838 P. 903 साथ ही Prof. Wilson's Mackenzie collection P. 76.

४ The Geographical Dictionary, P. 8.

५ 'वरंगल के काकतीय वंशी एक राजा × × ×।' हिन्दी-विरवशेष भाग ३२, पृष्ठ १२७

नोट—विरवशेषकार ने संख्या ३ देकर इनके मिया एक और का भी उल्लेख किया है। "एक हिन्दू राजा ये तैलंगाधिपति थे" सम्भवतः यह विरवशेष कार के तैलंग और वरंगल इन दोनों को दो भिन्न स्थान समझने की भूल है।

(५) ग्रन्थ नं० २०५  
ख

## निदान-मुक्तावली

कर्त्ता—पूज्यपाद (?)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३। इञ्च

चौड़ाई—८। इञ्च

पत्रसंख्या—६

### मङ्गलाचरणा

(अभाव)

प्रथम श्लोक—

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ।

सर्वप्राणिहितं द्रष्टं कालारिष्टञ्च निर्णयम् ॥१॥

मध्य भाग (पृष्ठ ४ पंक्ति ११)

पीत्वा जलं यस्य न याति तृष्णा भुक्त्वा भृशं न क्षुदपैति यस्य ।

शक्तिक्षये वाथ सुवर्णनासा मासेऽष्टमे तस्य हि कालमृत्युः ॥

खण्डं भवेद्यस्य पदं कदाचित् पङ्काङ्किते वा भुवि पांसुलेपात् ।

ते सप्तकं (१) मासि विहाय सर्वं प्रयाति याम्यं सप्तमं मनुष्यः ॥

अन्तिम भाग—

गुरौ मैत्रे देवेऽप्यगदनिकरैर्नास्ति भजनम् तथाप्येवं विद्या अतिनिगदिता शास्त्रनिपुणैः ।

अरिष्टं प्रत्यक्तं सुभवमनुमारूढसुभगम् विचार्यन्तच्छश्वन्निपुणमतिभिः कर्मणि सदा ॥

विज्ञाय यो नरः काललक्षणैरेवमादिभिः । न भूयो मृत्यवे यस्माद्विद्वान्कर्म समाचरेत् ॥

इति पूज्यपादविरचितायां स्वस्थारिष्टनिदानं समाप्तम् ।

×

×

×

इसमें दो ही निदान हैं—(१) कालारिष्ट और (२) स्वस्थारिष्ट ।

इस ग्रन्थ की प्रति मद्रास राजकीय पुस्तकालय में संगृहीत ग्रन्थ की प्रति से करायी गयी है ।

मंगलाचरण का ११वाँ श्लोक भाषकी नगरों से नहीं गुजरा है। क्योंकि पुण्यसेन तो शेरक ही मान्य होते हैं।

उक्त यह परकीर्त यत्मान परंगल का प्राचीन नाम है\*। परंगल के और भी कई नाम हैं\*। यह प्राचीन तैलंग की राजधानी थी\*। काकतीयों ने इस पर ईस्वी सन् १११० से १३२३ ईस्वी तक राज्य किया है\*। इसी दश में राजा चन्द्रदेव हुए हैं\*। इनकी यहीं राजधानी थी। मान्य होता है राजा चन्द्रदेव इस पत्र के अन्तिम राजा थे, क्योंकि इस प्रशस्ति से पता चलता है कि इस ग्रन्थ की रचना ईस्वी सन् १३२० में हुई है और उस समय चन्द्रदेव ही शासन कर रहे थे।

प्रशस्तिगत घटसेन, कुमारसेन, पुण्यसेन, धीराज। इन विद्वानों के सम्बन्ध में मेरा इस समय कुछ भी विशेष पक्य नहीं है। क्योंकि अथगुणेश्वरों के कतिपय शिलालेखों में घटसेन जी को छोड़कर और तीन नाम उपलब्ध होने हैं भरप, परन्तु इनमें से कुछ शिलालेखों में तो इनका समय ही नहीं दिया गया है। जिन लेखों में समय दिया गया है, वह भी "अपयार्थ" के समय से मेल नहीं खाता। "विगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" में आये हुए इन उल्लिखित नामवाले ग्रन्थकर्ताओं की हतियों को देखने से संभवतः इनका विशेष परिचय मिल सकता है।

१ हिन्दी-विरवकोप भाग ३ पृष्ठ ५६६ और List of the Antiquarian Remains in the Nizam's Territories By consens "Another name of Warrangal × ×, is Akshalingar, which in the opinion of Mr. consens is the same yekshilangara."

—The Geographical Dictionary of Ancient & Mediaeval India By Nandoo Lal Dey P. 8

२ अनुमङ्गलपुर, अनुमङ्गलपट्टन, काँह'कोल (of Ptolemy) वेवाङ्कक, एकैर्जिनगर आदि।  
(The Geographical Dictionary P. 262)

३ चन्द्रदेव का शिलालेख JASB, 1838 P. 903 साथ ही Prof. Wilson's Mackenzie collection P. 76.

४ The Geographical Dictionary, P. 8

५ 'परंगल के आकृतिय चरी एक राजा × × ×।' हिन्दी-विरवकोप भाग १२, पृष्ठ ६२७

नोट—विरवकोपकार ने संख्या ३ देकर इनके सिवा एक और का भी उल्लेख किया है। "एक हिन्दू राजा से तैलंगाधिपति थे" सम्बन्ध यह विरवकोप-कार के तैलंग और परंगल इन दोनों को दो भिन्न स्थान समझने की भूल है।

मध्यभाग—(पृष्ठ ३० पुष्पवाणरसः)—

रसभस्म त्रिभागस्यादृष्टभागं च गन्धकम् । चतुर्थं मौक्तिकं चाटं द्विभागा मौक्तिकी शिला ॥  
तारमन्त्रकलोहानां वङ्गमाक्षिकनागयोः । अयस्कोमं प्रवालाद्यै तुल्यभागं प्रकल्पयेत् ॥

अन्तिम भाग—(पञ्चवाणरसः)

सुवर्णं रजतं कान्तं वैश्रान्तं तीक्ष्णमन्त्रकम् । प्रवालं मुक्तभसितं नागवङ्गञ्च भास्करम् ॥  
पकैकसमभागं च सर्वतुल्यं रसेन्द्रियम् । तत्समं शुद्धगन्धञ्च हंसपादीरसेन च ॥  
कौमारीरससंप्रोक्तं मर्दितञ्च दिनत्रयम् । काचकुप्यन्तरे क्षिप्त्वा विलेप्य बल्लमृत्तिकाम् ॥  
घालुकायन्त्रके पक्त्वा पड्यामान्ते समुद्धरेत् । चूर्णाकृतं ततः खल्वे शतपत्ररसेन च ॥  
दिनत्रयञ्च यत्नेन चाधिकं सहभावनात् । कस्तूरिकां च कर्पूरं भावयेत यथाविधि ॥  
शाल्मलीकानि लाक्षाथ गान्धारी सममर्दयेत् । वराचन्दनसंयुक्तं कणक्षौद्रं सिताज्यकम् ।  
विंशतिञ्च प्रमेहाणां राजयक्ष्माननेकशः । शुक्रवृद्धिकरञ्चैव वन्ध्या च लभते सुतम् ॥  
वन्धनष्टं पुष्पनष्टं.....मसृग्दरम् । रक्तपित्तं चाम्लपित्तं अस्थिस्रावहलीमकम् ॥  
अहन्येव रजः स्त्रीणां भवन्ति प्रियदर्शनात् । वीर्यवृद्धिकरञ्चैव नारीणां रमते शतम् ॥  
पञ्चवाणरसो नाम पूज्यपादेन निर्मितः ॥

×

×

×

पूर्वोद्धृत 'निदानमुक्तावली' और यह वर्तमान 'मदनकामरत्नम्' दोनों ग्रन्थ प्रशस्ति नहीं रहने एवं विषयविच्छेद नहीं होने से ज्ञात होता है कि अपूर्ण हैं। साथ ही साथ इन दोनों के रचयिता भी एकही पूज्यपाद मालूम होते हैं।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ मदनकामरत्न को कामशास्त्र कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि ६४ पृष्ठों में से केवल १२ पृष्ठ तक तो महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अत्रिकुमार, ज्वरबलफणिगण्ड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्त्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलंकेश्वर राजेश्वर, बालसूर्योदय (दो प्रकार का) इन अन्यान्य ज्वरादि रोगों के बिनाशक रसों का विवरण और कर्पूरगुण, मृगहार भेद, कस्तूरी भेद, कस्तूरी गुण, कस्तूर्यनुपान और कस्तूरीपरीक्षा आदि है। बाकी जो ५२ पृष्ठ हैं वे कामदेव के जो पर्यायवाची शब्द हैं उन्हीं भिन्न भिन्न नामों से अङ्कित ३४ प्रकार के कामेश्वररसमय हैं। साथ ही बाजीकरण औषध, तैल, लिङ्ग-वर्द्धनलेप, पुहपवस्यकारी औषध, स्त्रीवस्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका-निर्माण-विधि भी है। कामसिद्धि के लिये छः मन्त्र भी आये हैं। उक्त दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के सभी पृष्ठ कामविषयक विधिविधानों से ही भरे पड़े हैं।

यों तो यह सारा ग्रन्थ पद्यबद्ध है किन्तु एक जगह पञ्चवाण रस के पद्याङ्कित पद्य की संस्कृत गद्य में व्याख्या कर दी गयी है।

इस ग्रन्थ के पद्या में पूज्यपादजी का नाम कहीं नहीं मिलता। किन्तु मूल प्रति में प्रकरणसमाप्ति सूत्रक वाक्य 'पूज्यपादवृत्त' लिखा रहने के कारण प्रतिलिपि कर्ता ऐच्छक को भी 'पूज्यपादवृत्त' ज्यों का था लिख देना अनिवार्य था। अन्तु इस ग्रन्थ के विषय और संस्कृत रचना की ओर ध्यान देने से स्वार्थसिद्धि आदि प्रथा के निमाता प्रात स्मरणीय हमारे प्रख्यात पूज्यपादजी को इस ग्रन्थ के रचयिता मानने में मन हीन क्रियाता है। सम्भव है कि यह प्रति किसी दूसरे पूज्यपाद जी की हो। इस सन्देहास्पद विषय को हल करने के लिये और और प्रतियाँ की जाकर हैं। आशा है कि अन्यान्य पण्डित मण्डली भी इसकी ओर ध्यान देंगी।

(६) ग्रन्थ नं० २०६  
ख

## मदनकामरत्नम्

कर्ता—पूज्यपाद (१)

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

सम्पाद १३॥ इ०

पौडार्द्र ८॥ इ०

पत्रसख्या ६४

## मङ्गलाचरणम्

(अन्तर)

प्राग्भिनव भाग—

महापूर्णचन्द्रोदय

मृत सूतलोहाभ्ररौप्य समागमम्

मृतस्वर्णगन्धं (१)

सप्तर्षि (१) विनित्तिग्य ख-वे विमर्षेत्तत्र स्वर्णनैलेन्द्रवेन त्रिवारम् ॥१॥

ततः शाल्मलीसारनियासगुञ्जं प्रयुञ्जीत तत्र सुहृद्यानुपानि ।

विद्वेषक्षयं चापि हन्यात्परेषाम् (१) धयस्तम्भकारी गर्दोन्मादहारी ॥२॥

धधुगर्भहारी रत्नौ वृद्धिकारी वृशत्वापहारी कलापूर्णधारी

समस्तसु योगेषु भूमौ विद्येयात् प्रसिद्धो महापूर्णचन्द्रोदयोऽपम ॥३॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ३० पुष्पवाणरसः)—

रसमस्र त्रिभागस्यादृष्टभागं च गन्धकम् । चतुर्थं मौक्तिकं वाटं द्विभागा मौक्तिकी शिला ॥  
तारमन्त्रकलोहानां वङ्गसाक्षिकनागयोः । अयस्कामं प्रवालाष्टौ तुल्यभागं प्रकल्पयेत् ॥

अन्तिम भाग—(पञ्चवाणरसः)

सुवर्णं रजतं कान्तं वैकान्तं तीक्ष्णमन्त्रकम् । प्रवालं मुक्तभसितं नागवङ्गञ्च भास्करम् ॥  
एकैकसमभागं च सर्वतुल्यं रसेन्द्रियम् । तत्समं शुद्धगन्धञ्च हंसपादीरसेन च ॥  
कौमारीरससंप्रोक्तं मर्दितञ्च दिनत्रयम् । काचकुप्यन्तरे क्षिप्त्वा विलेप्य वल्लभृत्तिकाम् ॥  
घालुकायन्त्रके पक्त्वा पड्यामान्ते समुद्धरेत् । चूर्णाकृतं ततः खल्वे शतपत्ररसेन च ॥  
दिनत्रयञ्च यत्नेन चाधिकं सहभावनात् । कस्तूरिकां च कर्पूरं भावयेत यथाविधि ॥  
शाल्मलीकानि लाक्षाथ गान्धारी सममर्दयेत् । धराचन्दनसंयुक्तं कणक्षौद्रं सिताज्यकम् ।  
विंशतिञ्च प्रमेहाणां राजयक्ष्माननेकशः । शुक्रवृद्धिकरञ्चैव बन्ध्या च लभते सुतम् ॥  
बन्धनष्टं पुष्पनष्टं.....मसृग्दरम् । रक्तपित्तं चाम्लपित्तं अस्थिस्रावहलीमकम् ॥  
अहन्येव रजः स्त्रीणां भवन्ति प्रियदर्शनात् । वीर्यवृद्धिकरञ्चैव नारीणां रमते शतम् ॥  
पञ्चवाणरसो नाम पूज्यपादेन निर्मितः ॥

×

×

×

पूर्वोद्धृत 'निदानमुक्तावली' और यह वर्तमान 'मदनकामरत्न' दोनों ग्रन्थ प्रशस्ति  
\* नहीं रहने एवं त्रिषयविच्छेद नहीं होने से ज्ञात होता है कि अपूर्ण हैं । साथ ही साथ  
इन दोनों के रचयिता भी एकही पूज्यपाद मालूम होते हैं ।

इस प्रस्तुत ग्रन्थ मदनकामरत्न को कामशास्त्र कहना अनुचित नहीं होगा ।  
क्योंकि ६४ पृष्ठों में से केवल १२ पृष्ठ तक तो महापूर्ण चन्द्रोदय, लोह, अग्निकुमार,  
ज्वरबलफणिगवड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्त्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलंकाेश्वर  
राजेश्वर, बालसूर्योदय (दो प्रकार का) इन अन्यान्य ज्वरादि रोगों के विनाशक रसों  
का विवरण और कर्पूरगुण, मृगहार भेद, कस्तूरी भेद, कस्तूरी गुण, कस्तूर्यनुपान और  
कस्तूरीपरीक्षा आदि है । बाकी जो ५२ पृष्ठ हैं वे कामदेव के जो पर्यायवाची शब्द हैं  
उन्हीं भिन्न भिन्न नामों से अङ्कित ३४ प्रकार के कामेश्वररसमय हैं । साथ ही बाजीकरण  
औषध, तैल, लिङ्ग-वर्द्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध  
और गुटिका-निर्माण-विधि भी है । कामसिद्धि के लिये ह्यः मन्त्र भी आये हैं । उक्त  
दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ के सभी पृष्ठ कामविषयक विधिविधानों  
से ही भरे पड़े हैं ।

यों तो यह सारा ग्रन्थ पद्यबद्ध है किन्तु एक जगह पञ्चवाण रस के पद्याङ्कित पद्य  
की संस्कृत गद्य में व्याख्या कर दी गयी है ।

(७) ग्रन्थ नं०  $\frac{२०७}{४}$ 

## जिनयज्ञफलोदयः

कथा—मुनि कल्याणकीर्ति

विषय—पूजापत्रविवरण

भाषा—संस्कृत

सन्वत् १२१ इ०

श्री ७॥ इ०

पत्रसंख्या ८६

## मङ्गलाचरण

सर्वज्ञ सर्वविद्याना विधातारं जिनाधिपम् ।  
 हिरण्यगर्भं नाभेयं धन्देऽहं विदुषार्चितम् ॥१॥  
 अन्यानपि जिनान्नत्या तयामण्यधरादिकान् ।  
 कथ्यते मुक्तिसम्प्राप्त्यै जिनयज्ञफलोदय ॥२॥  
 जीयाहलितकीर्त्तीशो मद्गुर्मुनिपुङ्गव ।  
 देवचन्द्रमुनीन्द्राचार्यो दयापाल प्रसन्नधी ॥३॥  
 मादृशोऽपि च यच्छक्तिजिनयज्ञफलोदय ॥१॥  
 न तच्चित्रं क्रमापातगुरुपदारलम्बनात् ॥४॥  
 कल्याणकीर्त्तिदेवस्य भारतीकविवेधसः ।  
 सता चेतसि पीयूषधारा धत्ते निरन्तरम् ॥५॥  
 वृद्धिं व्रजति शिक्षान कीर्त्तिधरति निर्मला ।  
 प्रयाति दुरित दूर जिनयज्ञफलस्तुते ॥६॥

मध्यभाग—(पृष्ठ ४१ श्लोक १६)

जिनशासनमासाद्य ये सम्यक्त्वसमन्वितम् ।  
 सद्भवत नहि कुर्वन्ति म्लेच्छास्ते पशुभिः समा ॥१॥  
 दुर्गन्धिविग्रहा ब्रूरा सर्वलोकतिरस्कृता ।  
 काणपद्भुविचर्णाङ्गा मलिनच्छिद्रबाससः ॥२॥  
 विरूपा विगतच्छाया धनबन्धुविवाजिता ।  
 लज्जते कन्दरा दुःखतत्कल कण्ठमण्डल ॥३॥

ग्रन्थिमाग—

श्रीमूलसंधे मुनिशीलतुंगे श्रीकौन्दकुन्दे धरसूरिवृन्दे ।  
 वंशे च देशीयगणो गुणाढ्ये मह्यामतुच्छे धनपुस्तगच्छे ॥४११॥  
 आसीदसीमापनसोर्गेपूर्वोऽवल्यम्बुराशिर्गुणरत्नराशिः ।  
 तस्माद्भूयन्द् इव व्रतीन्द्रः श्रीदेवकीर्त्तिर्जितमारमूर्त्तिः ॥४१२॥  
 सद्गोत्रजस्तदनुवृत्तरथाधिरूढः सच्छीलवाजिरखिलात्मसुखप्रवृत्तिः ।  
 दोषाकराक्रमणचारकरप्रचारो हंसोऽप्यसौ ललितकीर्त्तिरभूद्दहंसः ॥४१३॥  
 श्रीललितकीर्त्तियतिमहदुदर्यागरेरभवदागममयूखः ।  
 कल्याणकीर्त्तिमुनिरविरखिलधरातलवोधनसमर्थः ॥४१४॥  
 केचित्काव्यकथाप्रथाकुशलिनः केचिच्च सिद्धान्तिनः ।  
 केचिद् व्याकरणप्रयोगनिपुणाः केचिन्नरास्ताकिंकाः ॥  
 केचित्तोव्रतपःप्रभावकलिताः केचित्कवित्वश्रमाः ।  
 केचिद्वाचकचातुरीपरिचितास्ते तस्य शिष्या बभुः ॥४१५॥  
 त्रिभुवनकलशोऽपि नेमिनाथः कलशमगादथ भैरवेन्द्रतो जितेन्द्रः ।  
 तद्दुदयभुजि पाराड्यदेवनान्नि हावति चकार कलक्षितिं क्षितीजे ॥४१६॥  
 अन्यदा ललितकीर्त्तिमुनीन्द्रः संयुतामलतपोधनयुक्तः ।  
 तत्क्षितीशकृतचैत्यनिवासं रक्षिताखिलगुणः प्रययौ सः ॥४१७॥  
 एकस्मिन्दिवसे मुनिनाथो नाकफलां जिनपतिपदपूजाम् ।  
 श्रोतृजनेभ्यो विशदो कुर्वन् मातृवचो निचयात्स च दध्यौ ॥४१८॥  
 धर्ष्यं कथावतारं महद्विदमखिलं सत्पुराणप्रसिद्धम् ।  
 काव्यं पूजाप्रभावं तदलघुं गुरु तत् कार्यमल्पपद्मगम्यम् ।  
 तत्तत्संगृह्य विद्वत्परिपटुपनिपद्भूतचार्यगुम्फम्  
 सिद्धं निर्धूतदोषं श्रुतजनवितरत्तत्त्वविज्ञानसौख्यम् ॥४१९॥  
 एते सन्मुनिवृषभाः कवित्वभाजो वादीन्द्राः कति कति च प्रवाग्मिनोऽमी ।  
 अध्यात्मप्रसरणं.....किञ्च पत्र संबभूवः ॥४२०॥  
 अयञ्च कल्याणयशा मुनीश्वरः सुकाव्यतर्कागमशब्दबभूवः ।  
 पुराणपारीण इह प्रसादनः समर्थ एवेति विचिन्त्य स व्रती ॥४२१॥  
 मामाह्वय वतिकुलतिलको.....मिव विशदी कुर्वन् ।  
 वन्त्वचिद्भिर्मयि मुनिरवदन्मस्तकविस्तृतकर्णोदजः ॥४२२॥



एवास्तो रतथादिपर्यतशितो वसायने यागियम्  
 भाहियार्णवपूर्वाचन्द्रनि मुने कल्याणकीर्तिस्तय ।  
 मन्दारदूमगुच्छविष्णुतउधामभूतमन्दाकिनी  
 स्वर्णाम्बोच्छ्रयानमागुररमानेरांगुस्तथादिनी ॥४२३॥  
 भंगमंगानियातनमारती संगनार्थरचनां च सायकम् ।  
 मंगतां कुत्र त्रिनेत्रयथा लम्बुणयैमरयुतां गुणस्तुते ॥४२४॥  
 इति मुनिपरिभाषि प्रेरितेनामन्त्राभि ऋचुतरमतिशया शक्तिसाम्राज्यन  
 भाषि च शुद्धममीपे वामवारंभि पूर्वम् मनु विमकरलीये सत्तरापीनपृत्ते ॥  
 चारितयारागिमुधाकरेण कल्याणकीर्ति (प्रतिना) मुनिनाऽप्यथापि ।  
 जीनेन्द्रयज्ञस्य परतोऽयास्य कास्य जयत्यासितिवद्वेतात्म् ॥४२५॥  
 द्विसहस्रमिदं शोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणतः ।  
 पञ्चाशदुत्तरे साध्याल्लोके च सगतम् ॥४२६॥  
 पञ्चाशच्छिगीयुत्तरसहस्रशतयत्सरं ।  
 इत्यंते धृतपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥४२७॥

इत्यर्थे धीमत्कल्याणकीर्तिमुनीन्द्रपरिविने त्रिनयन्नल्लोके विप्रमहद्वेम्पभादि  
 त्रिनयन्नाष्टविधानाव्ययार्णव नाम नयमो लम्बु समस्तः ।

× × × ×

इसके कालों मुनि कल्याणकीर्ति का काल के मद्रापीण ललितकीर्तिजी के शिष्य ।  
 इनका ग्रन्थनिर्माण समय ज्ञानिवाहन शक १३५० ई तथा यह पाण्ड्य राजा के शास  
 समय में विद्यमान थे । इस ग्रन्थ के रचयिता अर्थात् पर चौथीसर्ष धरं के दिगम्बर  
 मासिक पत्र के विशेषाङ्क (१-२) में मुने कुत्र विस्तृत रूप से ऐतिहासिक प्रकाश डाला है

कवि कल्याणकीर्तिजी के गुरु ललितकीर्तिजी भैरवराजवंश के प्रमाणत राज  
 हैं । आज भी बार्कल मठ की गद्दी पर बैठनेवाले भट्टारकों का वही परम्परागत लल  
 कीर्ति नाम चला आता है । इस "त्रिनयन्नल्लोदय" के "पञ्चाशच्छिगीयुत्तरसहस्रशकयत्सरं  
 इत्यंते धृतपञ्चम्यां ज्येष्ठे मासि प्रतिष्ठितम् ॥" इस श्लोक से इनका समय शक सम  
 १३५० सिद्ध होता है । मुनि महाराजजी ने उसी ग्रन्थ के निम्नांकित श्लोक में भैरव  
 तथा उनके पुत्र पाण्ड्यदेव का इस प्रकार उल्लेख किया है —

"त्रिभुवनकलयोऽपि नेमिनाथ कलशमगावध भैरवेन्द्रतो जितेन्द्र । तदुदयधुं  
 पाण्ड्यदेवनाम्नि शक्यति चकार कलसिति तितीये ।" इन दोनों में से भैरवरस भोदय  
 समय शक सम्वत् १३५० (ई० सन् १४१८) एवं पाण्ड्यराज का समय शक सं० १३५

भैरवराज का काल कवि के द्वारा उल्लिखित श्लोक में जिन नेमिनाथ तीर्थङ्कर का उल्लेख किया गया है उन्हीं के मन्दिर के दरवाजे पर लगे हुए शिलालेख से लिया हुआ है। पाण्ड्यराज वही वीरपाण्ड्य भैरवरस ओडेय हैं जिन्होंने कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल एवं मनोह्र मूर्ति को स्थापित कर अपने नाम को अमर कर दिया है। बाहुबली स्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा शक सम्बत् १३५३ (ई० सन् १४३१-३२) में हुई थी। यह बात मूर्ति की बगल में लगे हुए संस्कृत एवं कन्नड शिलालेखों से ज्ञात होती है। इस शुभावसर पर प्रसिद्ध विजयनगराधीश द्वितीय देवराय भी आमन्त्रित किये गये थे। यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया था। प्रशस्तिगत इस “देवचन्द्रमुनीन्द्रार्च्यों दयापालः प्रसन्नधीः।” श्लोकांश से यह भी विदित होता है कि ललितकीर्त्तिजी को देवचन्द्र नाम के एक दूसरे शिष्य भी थे। कवि कल्याणकीर्त्तिजी के गुरु ललितकीर्त्तिजी मूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय, देशीयगण, पुस्तकगच्छ के पट्ट-क्रमागत भट्टारक थे। इन भट्टारकों का मूलस्थान मैसूर राज्यान्तर्गत “हणसोगे” था। प्रशस्तिगत ४१२ वें श्लोक से ज्ञात होता है कि ललितकीर्त्तिजी के गुरु देवकीर्त्तिजी थे। विदित होता है कि यह ललितकीर्त्तिजी अन्यान्य विषयों के अच्छे मर्मज्ञ थे। क्योंकि कल्याणकीर्त्तिजी ने इस प्रशस्ति में दिखलाया है कि काव्य, व्याकरण, न्याय, सिद्धान्तादि विषयों के ज्ञाता कई शिष्य और भी ललितकीर्त्तिजी के मौजूद थे।

कल्याणकीर्त्तिजी ने ग्रन्थ रचना का उद्देश ग्रन्थ के अन्त में यों बतलाया है कि एक बार मेरे पूज्य गुरुदेव ललितकीर्त्तिजी ने बहुतेरे श्रोताओं को जिनपूजा का फलोपदेश देने के पश्चात् यह कहा कि मैंने यह पूजाफल संक्षेप में वर्णित किया है—पुराणों में इसका विस्तृत विवरण है। साथ ही साथ मुझे योग्य समझ कर उन्होंने दत्तद्विषयक एक ग्रन्थ-प्रणयन करने का आदेश भी दिया। उन्हीं की आज्ञा का पालन-फलस्वरूप यह जिनयज्ञ फलोद्भूत है।

निम्नलिखित श्लोक के आधार पर इस ग्रन्थ की श्लोक-संख्या दो हजार सात सौ पचास (२७५०) सिद्ध होती है :—

“द्विसहस्रमिदं प्रोक्तं शास्त्रं ग्रन्थप्रमाणतः।

पञ्चाशदुत्तरैः सप्तशतश्लोकैश्च संगतम् ॥”

“कर्णाटक कविचरिते” के द्वितीय भाग से ज्ञात होता है, हमारे यह कल्याणकीर्त्तिजी निम्नलिखित ग्रन्थों के भी रचयिता हैं :—

(१) ज्ञानचन्द्रान्युदय (२) कामनकथे (३) अनुप्रेक्षे (४) जिनस्तुति (५) तत्वभेदाष्टक (६) सिद्धराशि। इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय क० कविचरिते के मान्य सम्पादक ने अपने ग्रन्थ में दे दिया है। इस कवि का लिखा हुआ संस्कृत भाषाबद्ध एक गणेशप्रतिष्ठा

एष कन्नड में फण्डुमार-चरित भी हैं। यशोधरचरित को श्लोक सं० १८५० और रचना समय शक सं० १३७५ है। इस ग्रन्थ का आधार गन्धर्व कवि का प्राकृतग्रन्थ है और इसकी रचना पाण्ड्य नगर (कार्कल) के गोम्मटेवर चैत्यालय में हुई थी। फण्डुमार चरित का प्रणयनकाल शक सं० १३६४ है। ताडपत्ताङ्कित ये दोनों ग्रन्थ भवन में मौजूब हैं। भवन के संगृहीत ताडपत्ताङ्कित "चिन्मय चिन्तामणि" नामक कन्नडपद्यत्मक लघुकलेवर ग्रन्थ भी समयत इन्हीं कल्याणकीर्ति का हो।

(८) ग्रन्थ नं० ३९६

## पद्दर्शन-प्रमाण-प्रमेयानुप्रवेश

कृता—शुभवम्

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इंच

चौड़ाई ४।। इंच

पत्रसंख्या २४

मङ्गलाचरण

साधनन्तं समाख्यातं व्यतानन्तचतुष्टयम् ।

श्रौढोक्तये यस्य साध्नाग्ये तस्मै तीर्थहृते नमः ॥

× × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १० पक्ति ३य)

अपरं च द्रव्यतत्त्वादिनित्यद्रव्यवृत्तयोऽस्याविशेषा भ्युत्सिद्धानामाधाराधेयभूतानां यं सम्बन्धं ह्येवं प्रत्ययहेतु स समवायः । प्रत्यक्षलैङ्गिके द्वे एव प्रमाणमिति वैशेषिक-दर्शनसमासः । साध्यैस्तु घत्सनिज्जुद्ध्या परिकल्पितोऽयं निवृत्तिनगर्या पन्थाः । यदुत पञ्चविंशतितत्त्वपञ्चिानाशि धेयसाधिगमः । तत्र प्रयो गुणाः । सत्त्व रजस्तमसः । तत्र प्रसात्लाघवप्रसवानभिगद्वेपप्रोतयः कार्यं सत्त्वस्य । शोकतापस्वेदस्तम्भोद्वेगप्रद्वेषाः कार्यं रजसः । मरणसाधनबीभत्सदैन्यगौरवाणि तमसः कार्यम् । ततः सत्त्वरजस्तमसां सान्न्वयस्या प्रकृतिः सैव प्रधानमित्युच्यते ।

प्रशस्ति :—

जयति शुभचन्द्रदेवः कण्डूगणपुराडरीकवनमार्त्तण्डः ।  
चण्डोद्दण्डदूरो राद्धान्तपयोधिपारगो बुधविनुतः ॥

x x x

इस लघुकलेवर ग्रन्थ में विद्वद्भर शुभचन्द्रदेव ने पद्धतियों के प्रमाण और प्रमेय का संक्षिप्त परिचय दिया है। शुभचन्द्र नाम के कई विद्वान् हुए हैं। “दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ” के अनुसार निम्न लिखित पाँच (?) शुभचन्द्र के नाम उपलब्ध होते हैं:—

(१) शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्णव के कर्त्ता—जीवनकाल ११वीं शताब्दी\*) (२) शुभचन्द्र-भट्टारक (जीवनकाल वि० सं० १४५०) (३) शुभचन्द्र (प्रसिद्ध पाण्डव-पुराणादि अन्यान्य कई ग्रन्थों के कर्त्ता—जीवन-काल वि० सं० १६५०) (४) शुभचन्द्राचार्य (संशयि-वदनविदारण के कर्त्ता—जीवन-काल x) (५) शुभचन्द्र (करकण्डु महाराजचरित्र आदि के कर्त्ता जीवन-काल वि० सं० १६११) पाण्डवपुराणादि के कर्त्ता भट्टारक शुभचन्द्र का जीवनकाल प्रेमी जी के उक्त ग्रन्थ में वि० सं० १६५० लिखा हुआ है। किन्तु यह समय मुझे भ्रमपूर्ण मालूम होता है। क्योंकि पाण्डवपुराण की निम्नाङ्कित प्रशस्ति से यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जाती है कि उनका समय वि० सं० १६०५ है:—

“श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहतस्य पण्डे संख्ये शते (?)

रम्याष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ।

श्रीमद्गम्बरनीचूतीदमतुले श्रीशाकवाटे पुरे

श्रीमच्छ्रीपुरुधात्रि च विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥

इससे यह भी विदित होता है कि करकण्डु महाराजचरित्र के रचयिता शुभचन्द्र पाण्डवपुराण के कर्त्ता से भिन्न नहीं है। क्योंकि जीवनकाल में केवल तीन वर्ष की दूरी अधिक नहीं कही जा सकती है एवं करकण्डु महाराज का चरित्र भी दोनों शुभचन्द्र की रचना में आगया है। फिर भी यह अनुमानपरक है। प्रशस्ति एवं रचनाशैली आदि से इसका प्रकृत निर्णय किया जा सकता है। पाण्डवपुराण की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि “संशयिवदनविदारण” के कर्त्ता पाण्डवपुराण के कर्त्ता शुभचन्द्र से भिन्न नहीं हैं। पाण्डवपुराण और संशयिवदनविदारण के कर्त्ता शुभचन्द्र को भिन्न भिन्न मानने की धारणा

\*रायचन्द्र जैनशास्त्रमाला में प्रकाशित ज्ञानार्णव के प्रारंभ में प्रेमी जी के द्वारा लिखित “श्रीशुभचन्द्राचार्य का समय-निर्णय” के आधार पर ।

में मुख्य कारण यह हो गया है कि संशयिग्रहनिवारण ग्रन्थ का प्रतिलिपिकाल संप्रह-कर्ता को वि० सं० १६८८ मिला है। मेर भुमान से यह काल सम्पूर्ण सा ज्ञात होता है।

इसी प्रकार धरणश्रेणोत्त के शिलालेखों में भी मुझे शुभचन्द्र घटुष्टयी के दर्शन होते हैं। एक तो देवकीर्ति के शिष्य, दूसरे गण्डविमुक्त मल्हारिदेव के शिष्य, तीसरे माघनन्दी के शिष्य और चौथे रामचन्द्र के शिष्य।

पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में प्रतिपादित "ब्रह्माद्" ही संभवतः यह प्रस्तुत ग्रन्थ "ब्रह्मदर्शनप्रमाणप्रमेयानुप्रवेश" है। किन्तु साथ ही साथ मन में यह भी शङ्का स्थान कर जाती है कि पाण्डवपुराण, कार्तिकेयानुप्रेक्षा भादि भगवत् अथवा अन्य ग्रन्थों की प्रशस्तियों में अपनी विस्तृत गुणपरम्परा भादि का परिचय जिस प्रकार इन्होंने दिया है, इसमें भी दे दिये होते। अस्तु जो हो इस ग्रन्थ की रचनाशीली वर्ष भाषा सरणी प्रशस्त है। अन्तिम श्लोक से यह भी ज्ञात होता है कि आप अपूर्ण याद पटु, तपस्वी एवं सिद्धान्त शास्त्र के प्रखर विद्वान् थे।

इति उल्लिखित धरणश्रेणोत्त के एक सम्बत् १०४२ के ४३ (११७) वें शिलालेख में उल्लिखित २४ शुभचन्द्र देव की ओर मेरा ध्यान कुछ भाव्य सा हो जाता है। क्योंकि उस शिलालेख में उल्लिखित शुभचन्द्र के व्यक्तित्व और पाण्डित्ययुक्त विशेषणों में इस ग्रन्थ का अन्तिम एकमात्र श्लोक मिल सा जाता है। अतः इतिहास प्रेमी विद्वान् इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

(६) ग्रन्थ नं० २१२  
ख

## अलंकार-संग्रह

कर्ता—अमृतनन्दयोगी

विषय—अलंकार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८। इञ्च

चौड़ाई—४। इञ्च

पत्रसंख्या—१०४

मङ्गलाचरण

जगद्विचित्र्यजननजागरूकरूपद्वयम् ।

भवियोगरस्तामिशमाद्य मिथुनमाश्रये ॥१॥

तदुल्लासरसाकारां तत्त्वकैरवकौमुदीम् ।  
नमामि शारदां देवीं नामरूपाधिदेवताम् ॥२॥

ग्रन्थावतरण—

उद्दामफलदां शुर्वामुदधिमेखलाम् (?) ।  
भक्तिभूमिपतिः शास्ति जिनपादाञ्जपट्पदः ॥३॥  
तस्य पुत्रस्त्यागमहासमुद्रविह्वदङ्कितः ।  
सोमसूर्यकुलोत्तंसो महितो मन्वभूपतिः ॥४॥  
स ऋदाचित्सभामध्ये काव्यालापकथान्तरे ।  
अपृच्छद्मृतानन्दमादरेण कवीश्वरम् ॥५॥  
वर्णाशुद्धिं काव्यवृष्टिं रसान् भाषाननन्तरम् ।  
नेतृभेदानलङ्कारान् दोषानपि च तद्गुणान् ॥६॥  
नाट्यधर्मान् रूपकोपरूपकाणां भिदालप्सि(?) ।  
चाटुप्रबन्धभेदांश्च विकीर्णास्तत्र तत्र तु ॥७॥  
सञ्चित्यैकत्र कथय सौकर्याय सतामिति ।  
मया तत्प्रार्थितेनेत्यममृतानन्दयोगिना ॥८॥  
तत्रान्तरोदितानर्थान् वाक्यान्थैव क्वचित् क्वचित् ।  
सञ्चित्य क्रियते सम्यक् सर्वालङ्कारसंग्रहः ॥९॥

x x x

मध्यभाग—(पृष्ठ पूर्व ५२ पंक्ति ४)—

लीलेति पूर्वकथितं पुनरपि लीलेति कथितमेतस्मिन् ।  
यस्मिन्नदः प्रकृष्टं पतत्प्रकर्षं तदामनन्ति यथा ॥  
कः कः कुत्र न घर्घरायितघुरी घोरो घुरेत्सूकरः  
कः कः कं फमलाकरं विकमलं कतुं करी नोद्यतः ।  
के के कानि वनान्यरण्यमहिषा नोन्मूलयेयुर्यतः ।  
सिंहे स्नेहविलासबद्धवसतिः पञ्चाननो वर्त्तते ॥

x x x

अन्तिम भाग—

इत्यमृतानन्दयोगिविरचिते अलङ्कारसंग्रहे वसुनिर्णयो नामाष्टमोऽध्यायः

“कन्नड कविचरिते” भाग २५ पृष्ठ ३३ में एक अमृतनन्दी कवि के बारे में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

“इन्होंने अकारादि धैचनिघण्टु लिखा है। यह जैन कवि है। इनका लगभग १३०० शताब्दी में होना संभव ज्ञात होता है।”

“रसरत्नाकर” नामक कन्नड अलङ्कार ग्रन्थ की भूमिका में स्वर्गीय ए० वेङ्कटराव बी० ए० दल० टी० तथा पण्डित एच० शेर पेय्यङ्गार ने लिखा है कि—“अमृतनन्दी का अलङ्कारसंग्रह नाम का एक ग्रन्थ है। उसमें (१) वर्णगण विचार (२) शब्दार्थ निर्णय (३) रसनिर्णय (४) नेत्रभेदविचार (५) अलङ्कारनिर्णय (६) दोषगुणालङ्कार निर्णय (७) सम्बन्ध-निरूपण (८) वृत्तिनिरूपण (९) काव्यालङ्कारनिरूपण नामक ये नव परिच्छेद हैं। यह भी इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। क्योंकि प्राचीन आलङ्कारिक ग्रन्थों का देखकर ‘मन्व’ भूपति की अनुमति से यह ग्रन्थ संचित करके मैंने लिखा है यों ग्रन्थार्थ में रचयिता ने स्वयं कहा है। यह मन्व राजा सोमसूर्यकुलोत्तस, समुद्रविश्वाम्बुत, यमगंडरगंड, कारवंकभीम, समरनिरङ्कुश एवं नूतसाहसाङ्क आदि विद्वान्मण्डल से अलङ्कृत थे। इस बात का कवि ने ग्रन्थ के प्रत्येक परिच्छेदान्त पद्य में कहा है। इस मन्वभूरति के पिता शिवपादाज्जवत्पद भक्ति भूमिप थे।”

तिरुचनापल्ली के जम्बुकेथर देवस्थान में प्राप्त प्रतापहरदेव के एक शासन से मन्वगण्ड गोपाल नामक एक प्रताप हर का सामन्त था ऐसा विरहित है, इसलिये अनुमान किया जाता है कि यही अमृतनन्दी के आश्रयदाता होंगे।

नेल्लूर के शक वर्ष १२२१ (ख्रीस्ताब्द १२६६) एक शासन में “तस्याप्रज सुतो मन्व-गण्डगोपालभूपति”। प्रतापहरभूपत्य प्रसादाश्रितमैत्र” ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे इस मन्वभूप का समय विश्व शक १२६६ सिद्ध होता है। अत्र कवि अमृतनन्दी का काल विश्व शक १३वीं शताब्दी का अन्तिम भाग परिज्ञात होता है। यह कवि प्रतापहर के आश्रय में प्रतापहरद्रीय ग्रन्थ के रचयिता विद्यानाथ के समकालीन होंगे या कुछ इधर के।”

इन उल्लिखित दोनों उद्धरणों से इस ग्रन्थ के रचयिता यही अमृतनन्दी हैं तथा इनका समय भी वही १३वीं शताब्दी है यह बात प्रमाणित होती है।

किन्तु मन्व की इस प्रति में “शिवपादाज्जवत्पद” बही पाठ है।

(१०) ग्रन्थ नं० २१३  
ख

## केवलज्ञानहोरा

कर्ता—चन्द्रसेनमुनि

विषय—ज्योतिष

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—१३॥ इञ्च

चौड़ाई—८॥ इञ्च

पत्रसंख्या—३७६

प्रारम्भिक भाग—

अनन्तविद्याविभवं जिनेन्द्रं निधाय नित्यं निरवद्यबोधम् ।  
स्वान्तेऽहमिन्द्रुप्रभमिन्द्रवन्द्यं वक्ष्ये परां केवलबोधहोराम् ॥१॥  
होरा नाम महाविद्या वक्तव्यञ्च भवद्वितम् ।  
ज्योतिर्ज्ञानकलासारं भूपरां बुधपोषणम् ॥२॥  
केवलज्ञानहोरायाः चन्द्रसेनेन भाषितम् ।  
परोपदेशिकं ग्रन्थं (?) मया सप्तशतं (?) कृतम् ॥३॥  
आगमः (?) सदृशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः ।  
केवली (?) सदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥४॥  
ध्रीमत्पञ्च गुरुंश्चतुर्विधसुराधीशाञ्चितान् संस्तुतान्  
चातुर्वर्णजन(?) चतुर्गतिभवक्लेशापहारानपि ।  
तत्त्वान् सप्तवरैकवाक्यनिरतान् द्वापद्वयध्वंसकान्  
आचार्याश्च (?) उपासकान्मुमनसा वन्दामहे दिग्ग्रहान् ॥५॥  
तन्मात्रवेदास्तुधिवाणशैलशस्थित्तिचन्द्राश्वमेवे ध्रुवाङ्गाः ।  
प्राच्यादिदिक्षु प्रथिता मुनीन्द्रैर्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥६॥

x

x

x

गध्यभाग (पृष्ठ १८४ पंक्ति ४)

तन्मात्रवेदास्तुधिकामशैलशतांगनेत्रचितयो द्रुतान्ताः (ध्रुवाङ्गाः) ।

प्रागादिदिक्षु प्रथिता मुनीन्द्रैर्नष्टादिविज्ञानविधौ विधेयाः ॥

पृच्छकदिग्दशगुणितं प्रहरयुतं त्रिगुणितं त्रिंशत् ।



समे । त्रिषुष (१) सप्रभात्तर्युत । यमु ७ । हर्त । तच्छ्रेयं १ । अयर्ग २ । ययर्ग ३ । टयर्ग ४ । तयर्ग ५ । परर्ग ६ । ययर्ग ७ । सयर्ग कयर्ग । अय । एकादिशु-ययर्गम् १ । अयर्ग २ । कयर्ग ३ । ययर्ग ४ । टयर्ग ५ । तयर्ग ६ । ययर्ग ७ । ययर्ग । ययर्ग । तययययय । भेयययय ५ । हर्त । वि । विप्रभात्तर । स । समात्तर । अन्त्यात्तर । तत्तर शेष । गिरिकाय ५७ । हर्त दिवत । वि । पूर्यात्तर । सं । द्वितीयात्तर । एत अत्तरमेव ।  
x x x x x x x

x

x

x

अन्तिम भाग—

x x x x x x देहनिर्ग ८५ । हुलिगाट्टु ८६ । हेरुवलि ८७ । हिरिगिय ८८ । हलयाल ८९ । हादू ९० । होमाक ९१ । हाडूय ९२ । हेगति ९३ । हेकब ९४ । हगरे ९५ । हरिपट्टि ९६ । हुक्रेट्टि ९७ । हरिग ९८ । हिरिगिगे ९९ । हुकूमति १०० । कोडन हुबलि १०१ । होसदुग १०२ । द्विगविट्टि १०३ । हुबलि १०४ । हुगिसिगे १०५ । हन गगडे १०६ । हामगळि १०७ । सम्पूर्णम् ।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट तादृशं लिखितं मया ।

अबद्ध वा सुबद्ध वा मम दोषो न गिने ॥१॥

हमारा ज्योतिषशास्त्र दो भागों में विभक्त है । एक गणित और दूसरा जन्मित या होय विज्ञान । प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम केवलज्ञानहोय है । होय की व्युत्पत्ति विद्वानों ने यों की है—'आय तयर्णलोपात् होयस्माकं भयत्यहोयत्रात्'—अर्थात् 'अहोयत्र शब्द का आदिम अक्षर अ' और भन्तिम अक्षर त' इन दोनों के लोप कर देने से होय\* शब्द व्युत्पन्न हुआ है । केवलज्ञानहोय इस नामसे बहुत से व्यक्तियों का यही धारणा है कि यह भी फलित ज्योतिष का एक मौलिक ग्रन्थ होगा । अत्रकाशामय से इसका विशेष परिचय इस समय यहाँ पर नहीं दिया जा सका । हाँ इस विद्या के ममज्ञ किसी सावकाश विद्वान् के इस पर कुछ विशय प्रकाश डालने की चेष्टा करनी चाहिये । 'द्विगम्बर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ में भी इसे ज्योतिषशास्त्र ही लिखा है । साथ ही साथ श्रीमती जी की इस पुस्तक में इस 'केवलज्ञानहोय की श्लोकसंख्या तीन हजार बतलायी गयी है । परन्तु प्रारम्भिक परापरशिक ग्रन्थ १ मया समारणं कृतम् इस तीसरे पद्यभाग से इस ग्रन्थ की श्लोकसंख्या सात सौ सिद्ध होती है । किन्तु ग्रन्थ बहुत बड़ा है । न मालूम ग्रन्थकर्त्ता ने यह सात सौ संख्या किस बात की की है ।

इसके कर्त्ता चन्द्रसेनमुनि हैं । इन्होंने अपने इस ग्रन्थ के 'केवलज्ञानहोयशास्त्रसेनेन

\* ज्योतिषोक्तं अत्र एव एक शशि वा अम के आधे भाग को भी होय कहते हैं ।

भाषितम्” इस पचांश में इस बात की स्पष्ट कर दिया है। साथ ही साथ “आगमः सद्यो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः। केवली (?) सद्गुणी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥” इस पद्य में अपनी प्रचुर प्रशंसा भी की है। इधर उधर बहुत कुछ टटोलने पर भी इनके बारे में विशेष परिचय मैं नहीं मालूम कर सका। ग्रन्थान्तर्गत बातों से ज्ञात होता है कि आप ज्योतिषशास्त्र के एक अच्छे ज्ञाता थे। इसमें कोई शक नहीं कि आप कर्नाटकनिवासी एवं कन्नड़भाषी थे। क्योंकि अपने ग्रन्थ के संस्कृतबद्ध पद्यां (कर्णसूत्रों) के खुलाशा करने के लिये इन्होंने जहाँ तहाँ कन्नड़भाषा का भी अधिकतर आश्रय लिया है। भवन की यह प्रति श्रवणवेलगोल की कन्नड़ प्रति से उतारी गयी है, किन्तु है यह बहुत अशुद्ध। अतः यहाँ आपकी संस्कृत-रचनाशैली के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किसी शास्त्रागार में इसकी कोई शुद्ध प्रति का अन्वेषण परमावश्यक है। इसमें जो प्रकरण\* हैं उनमें कुछ का नीचे नाम-निर्देश किया जाता है :—

हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, घृत्तप्रकरण, कार्पास-शुल्म-वलकल-तृण-रोम-चर्म-पट्टप्रकरण, संख्याप्रकरण, नष्टद्रव्यप्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्य-प्रकरण, लाभालाभप्रकरण, मौक्तप्रकरण, स्त्रीसंभोगप्रकरण, भोजनप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, सामुद्रिकप्रकरण, स्वरप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, शकुनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अज्ञानविद्याप्रकरण, विषविद्याप्रकरण। इसी प्रकार देशभेद, उपकरणभेद, शास्त्रभेद, रत्नभेद, पक्षिभेद, यन्त्रभेद, मन्त्रभेद, जातिभेद, मुद्राभेद आदि अनेक द्रव्यों के भेद भी इसमें द्रस्ताये गये हैं। बल्कि मुद्राभेद नामक शीर्षक में चिक्रम, चालुक्य, फादम्ब, युधिष्ठिरादिक अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम भी आये हैं।

\* ये प्रकरण किसी वाण्ड या अध्याय के अन्तर्गत हैं।



(११) ग्रन्थ नं० ३१४  
ख

## दानशासन

\* कर्ता—धीरामुपूज्य ऋषि

विषय—दानकलादिविवरण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च

चौड़ाई १॥ इञ्च

पत्रसंख्या ५५

प्रारम्भिक भाग —

यस्य पादाञ्जसदुगन्धाघ्राणनिमुक्तकल्मषाः ।  
 ये भव्याः सन्ति तं देवं जिनेन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥१॥  
 दानं धन्येऽथ धारीय शस्यसम्पत्तिकारणम् ।  
 क्षेत्रोत्तं फलतीव स्यात् सर्वस्त्रीषु समं सुखम् ॥२॥  
 शुद्धसदुद्विष्टिभिः शुद्धपुण्योपाज्जनलम्पटेः ।  
 सार्द्धं द्रूयादिर्म प्रण्यं नेतरैस्तु कदाचन ॥३॥

x

x

x

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २८ पंक्ति १५)

धोमन्त्रिलोकभवनान्तरसर्वथस्तुप्राक्षिप्रबोधनिद्रिताङ्गिविपजमानम् ।  
 हानैकगोचरमशेषमुनीन्द्रवन्द्यमिन्द्रार्चिताङ्गिमर्हन्तमहं नमामि ॥१॥  
 कर्मद्वन्द्वमर्हत्पात्रं तस्य भेदानहं ब्रूवे ।  
 पात्रो देयं न धान्यत्र क्षेत्रे वृष्यधिपो यथा ॥२॥  
 रत्नत्रयात्मको धर्मस्तमाचरति धार्मिकः ।  
 धर्माभिवृद्धये स्वस्य धार्मिके प्रीतिमाचरेत् ॥३॥  
 पात्रभेदकयावत्तैः पात्रं पञ्चविधं मतम् ।  
 तद्यथेति हृते प्रशने सुरिणहं तदुत्तरम् ॥४॥  
 उत्कृष्टपात्रमनगारमण्डपताल्यं मर्ष्यं धतेन रहितं सुदर्शं जयन्यम् ।  
 निर्दर्शनं धतनिकाययुतं कुपानं युग्मोज्जितं नरमपात्रमिदञ्च विधि ॥५॥

संग्गादिरहिता धीरा रागादिमलयजिताः ।  
 शान्ता दान्तास्तपोभूपास्ते पात्रं दातुंस्तमम् ॥६॥  
 निस्तंगिनोऽपि घृत्ताद्या निःस्नेहाः सुगतिम्रियाः ।  
 अभूवाश्च तपोभूपास्ते पात्रं दातुंस्तमम् ॥७॥  
 परीपहजये शक्ताः शक्ताः कर्मपरित्तये ।  
 ज्ञानप्यानतपःशक्तास्ते पात्रं दातुंस्तमम् ॥८॥  
 प्रशान्तमनसः सौम्याः प्रशान्तकरुणक्रियाः ।  
 प्रशान्तारिमहामोहास्ते पात्रं दातुंस्तमम् ॥९॥  
 धृतिभावनया युक्ताः सत्यभावनयान्विताः ।  
 तत्त्वार्थहितचेतस्कास्तेपात्रं दातुंस्तमम् ॥१०॥  
 परीपहजये श्रुताः श्रुता इन्द्रियनिग्रहे ।  
 कर्मायचिजये श्रुतास्ते पात्रं दातुंस्तमम् ॥११॥  
 × × ×

अन्तिम भाग—

मतं समस्तैः ऋषिभिर्यथाहृतैः प्रमासुरात्मावनदानशासनम् ।  
 मुदे सतां पुण्यधनं समर्जितं दानानि दद्यान्मुनये चिचार्य्यं तत् ॥  
 शाकान्दे त्रियुगान्निशीतगुणितेऽतीते घृषे घत्सरे  
 माये मासि च शुरुपत्तदशमे श्रीवासुपूज्यपिणा ।  
 प्रोफतं पावनदानशासनमिदं दात्वा हितं कुर्वताम्  
 दानं स्वर्गापरीक्षका इय सदा पात्रत्रये धार्मिकाः ॥

समाप्तमिदं दानशासनम्

ग्रन्थ के अन्तिम पद्य से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि इस "दानशासन" के कर्ता वासु-  
 पूज्य ऋषि हैं। साथ ही साथ उक्त पद्य से यह भी विदित होता है कि यह ग्रन्थ शक सम्बत्  
 १३४३ माघ शुक्ल दशमी के समाप्त हुआ था। ग्रन्थकर्ता ने अपने इस ग्रन्थ में शुकपरम्परा,  
 गण, गच्छ आदि की कुछ भी चर्चा नहीं की है। अतः इनके विषय में अधिक प्रकाश नहीं  
 डाला जा सका। दक्षिणात्य कतिपय शिलालेखों में "वासुपूज्य" यह नाम मिलता है  
 अवश्य। पर प्रस्तुत वासुपूज्य के गणगच्छादि के न मालूम होने से नहीं कहा जा सकता  
 है कि अमुक वासुपूज्य ही इस दानशासन के कर्ता हैं। अगर किसी विद्वान् के इन  
 वासुपूज्यऋषि के गणगच्छादि विशेष बातों का पता प्राप्त हो तो उन्हें प्रकट कर देना चाहिये।

इसकी संस्कृत रचनाशैली साधारणतया अच्छी है। प्रत्येक भाग की श्लोकसंख्या अलग अलग बता कर इस ग्रन्थ को इन्होंने निम्नलिखित भागों में विभक्त किया है:—

(१) अष्टविधदानलक्षण (२) उत्तमपात्रसामान्यविधि (३) अमयदानविधि (४) दानशालाविधि (५) क्रियाविधि (६) द्रव्यशोधनविधि (७) पात्रलक्षणविधि (८) करण-तपलक्षिताहारदानविधि (९) भैषज्यदानविधि (१०) शास्त्रदानविधि।

(१२) ग्रन्थ नं० २१५

## भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका

कर्ता—अर्हदास

विषय—देवगुरुशालादिलक्षण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥ इंच

चौड़ाई ६ इंच

पत्रसंख्या २३

प्रारम्भिक भाग—

धीमान् जिनो मे श्रियमैव दिव्याद्यदीयरत्नोज्ज्वलपादपीठम् ।  
 करनतेन्द्रोत्करमौलिरःनै स्वपत्तरागादिव धालित स्वै ॥१॥  
 सदापि सिद्धो मयि सन्निदध्यात्स सिद्धिवश्या सह सान्द्रसौख्यम् ।  
 चयैत्यत्र दत्त तनुमाह्वान्त' सभोगभाविभ्रमभीतवैद्य ॥२॥  
 अचार्यधर्याश्चरितानि शिष्यानाचार्यन्त' स्वयमाचरन्तः ।  
 पटत्रिंशतापि स्वगुणैर्युतास्ते सदापरात्माष्टगुणामितापः ॥३॥  
 तेऽध्यापका स्युर्ददते नितान्तं ये ब्रह्मधर्यत्रतपालिनोऽपि ।  
 द्याञ्च चित्तेषु सरम्यतीञ्च मुखेषु देहेषु तपःश्रियञ्च ॥४॥  
 ते साधवो मे ददतु स्वयुक्तिं द्यालभोऽपि व्रतदिव्यगर्है ।  
 अन्नगराज समरे निहत्य कुर्वन्त्यनगोरुपद स्वकीयम् ॥५॥  
 जिनागमस्तीरनिधिर्गामीरो रिलोडितश्चेद्दिबुधैर्विधानात् ।  
 इवाति रत्नत्रयमुग्धलंगं तदा स तेभ्योऽप्यमृतं दुरापम् ॥६॥

श्रीगौतमाद्या जिनयोगिना ये वीरांगदान्ता महितात्मवृत्ताः ।  
 तदीयनामाक्षररत्नमाला मदीयवासाया मृगिकण्डिका स्यात् ॥७॥  
 अथाशरीरानुपमामनुजाक्षीमप्याशु वश्यां यदलं विधातुं ।  
 शतं सुवर्णाभिनवार्थरत्नेस्तद्भव्यकण्ठाभरणं तनिष्ये ॥८॥

x x x

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १४ पंक्ति ४)

श्रित्वादिमं (१) तापमितेषु बुद्ध्यानाश्रित्य मूलाच्च भजत्वस्वमुक्त्वा ।  
 ह्याद्याद्वृत्तस्य न रुद्रपरागस्तथापि ते दुःखसुखास्पदानि ॥१॥  
 तस्मिन्निदानीमिव सार्वभौमे देशे वसत्यप्यतिविप्रकृष्टे ।  
 चरन्ति ये ते सुखिनस्तदीयामाक्षामनुल्लङ्घ्य परे सद्दुःखाः ॥२॥  
 जना गृहग्रामपुरोजनान्तपट्टखण्डमात्रप्रभुशासनं चेत् ।  
 उल्लङ्घयन्तोऽप्युरुदुःखभाजस्तर्किक पुनस्सर्वजगत्प्रभोस्तत् ॥३॥  
 सतो हितं शास्ति स एव देवः सदाप्य (१) ते शासनतत्फलैच्छाम् ।  
 कलस्वनं कर्णसुधारसौत्रं वमत्तयोर्वाद्यमपेक्षते किम् ॥४॥

x x x

अन्तिम भाग---

अर्च्यस्तद्दार्थाभिदयेति सर्वेऽप्याचार्यमुख्या गुरुस्वस्वयोऽपि ।  
 असारसंसारविनाशहेतोराराधनीया अनिशं मया स्युः ॥१॥  
 सूक्तयैव तेषां भवमीरवो ये गृहाश्रमस्थाश्चरितात्मधर्माः ।  
 त एव शोपाश्रमिणां सहाया धन्याः स्युराशाधरसूरिवर्याः ॥२॥  
 आराध्यमानामलदर्शनास्ते धर्मेऽनुरक्ताः शमिनां सदापि ।  
 एकं यथाशक्ति भजन्यशलयमेकादशाणुवतिकास्पदेषु ॥३॥  
 ते पात्रदानानि जिनेन्द्रपूजाः शीलौपवासानपि चिन्वते च ।  
 न्यायेन कालादसतीश्वरोपभोगस्य शर्मानुभवन्ति चाक्षम् ॥४॥  
 कर्तुं तपः संयमदानपूजास्वाध्यायमप्याश्रितचारुवातां ।  
 ते तद्भवं श्रीजिनसूक्तशुद्ध्या पक्षादिभिश्चाघलयं क्षिपन्ति ॥५॥  
 त एव मान्या भुवि धार्मिकौघा धर्मानुरक्ताखिलभव्यलोकैः ।  
 सुधानुरक्ता हानुरागसूतिमाधारपात्रेष्वपि तन्वतेऽस्याः ॥६॥

इत्युक्तमाचारिकसम्बन्धं संश्लेषतोऽप्येव एता कविः इत्यात्  
 सत्मानमन्याभारितं ततोऽस्मात्कर्मरूपोऽस्मत्सुखानयदुःखम् ॥७३  
 अजादिकारमिति सिद्धमनेषु सम्पत्तेषु रागमितेषु च मन्थमात्रम् ।  
 ये तन्मने बुधजना निपतेन तेऽर्हंरासम्भवे च सततं सुखितो भवन्ति ॥७४  
 इत्यर्हंरासत्तमन्थकण्डामरस्य पश्चिहा समाप्तम् ॥

इस "मन्थकण्डामरणश्रिया" के कर्ता कवियर महंरारात्री है। सभी तरह इनके तीन ही मन्थ उपराध हुए हैं। शक्ति प्रभुण र्गि को छोड़ कर जोन दो मन्थ— "पुन्देव-यम्" तथा "मुनिमुनकाय" प्रफानित हो भी चुके हैं। पहला मन्थ "मालिन्धवन्त्र जैन-मण्यमाला" बंदों में और दूसरा "मुनिमुनकाय" मन्थ हिन्दी-श्रीहा महित "जैरसिदान्त-मयन" आरा में। इन ही कविता के बारे में यहाँ पर मैं विशेष बुद्ध न लिख कर सद्धर्य पाठकों में "मुनिमुनकाय" को ही मायस्त एक बार पढ़ जाने का अनुरोध करता हूँ। हमारे महंरारा जी मय पय दोनों के गिद्धहमन लेखक हैं। आपही सभी रचनायें माधुर्य आर प्राणादादि काव्योक्तिगुणों में भोतप्रोत हैं।

भाव विद्वर आशाघर जी के शिष्य हैं। यह बात आपही तीनों कृतियों के निर-लिखित अन्तिम पयों से स्वयं सिद्ध होनी है:—

मित्यात्यरमंरटैधिरमागूने मे युग्मे एतो बुधपयाननिदानभूने ।  
 आशाघरोक्तिरसद्ब्रनसंपयोगैः स्वच्छीकृते पृथुनसत्यपमाधितोऽस्मि ॥  
 (मुनिमुनकाय)

मूलपैव तेषां मयमीरयो ये गुणप्रमरणाधरितात्मधर्मा ।  
 स एव गोपाधमिषां सहायाः धन्याः सुपुत्राघरसुत्वियाः ॥  
 (मन्थकण्डामरणश्रिया)

मित्यात्यरं ककलुये मम मानसेऽस्मिन् आशाघरोक्तिरुत त्रसरेः प्रसये ।  
 उह्वासिनेन शरषा पुन्देवभनघा सधम्बुद्गमजलदेन समुद्रमृग्मे ॥  
 (पुन्देवयम्)

पण्डित नाथूराम प्रेमी जी ने अपनी "विद्वरनाला माग १म में लिखा है कि पण्डित-प्रवर आशाघर जी का जन्म वि० सम्वत् १२३३ के लगभग हुआ होगा। इनकी जन्मभूमि सपावल्ल (सवालाल) देशका मण्डलकर (मंडलगढ़) थी। उस समय उक्त मंडलगढ़

अजमेर के चौहानों के अधीन रहा। ई० सन् ११६२ के बाद जब यह गढ़ मुसलमान बादशाहों के हाथ में आया तब मुसलमानों के उपद्रव से बचने के लिये आशाधर जी को अपनी जन्मभूमि का परित्याग कर सपरिवार धारानगरी में आकर रहना पड़ा। उन दिनों धारा नगरी में राजा विन्ध्यवर्म का शासन चलता था। यह बड़ा विद्याप्रेमी था। इसका मन्त्री बिल्हण था। यह आशाधरजी को बहुत मानता था। बल्कि आशाधरजी को बिल्हण 'कविराज' कह कर पुकारता था। अन्यान्य विद्वान् भी आशाधर जी की कविता का बहुत आदर करते थे। आशाधर जी के मदनोपाध्याय आदि कई प्रख्यात पण्डित शिष्य थे। बल्कि इस मदनोपाध्याय को महाराज अर्जुनदेव का राजगुरु एवं मशकवि होने का भी सम्मान प्राप्त था। उक्त अर्जुनदेव राजा विन्ध्यवर्म का पुत्र था। आशाधरजी स्वयं गृहस्थ थे, फिर भी बड़े बड़े मुनिगण इनकी शिष्यता स्वीकार कर इनसे पढ़ते थे। पता चलता है कि आशाधरजी वृद्धावस्था में नलकच्छपुर (नालडा) में जाकर रहने लग गये थे। इनकी कई अमूल्य कृतियाँ उपलब्ध हैं। इनमें "मन्त्रकुमुद-चन्द्रिका" नामक अजगार-धर्माश्रित की टीका ही सब से पीछे की है। यह टीका वि० सं० १३००\* में समाप्त हुई थी। अतः प्रस्तुत भव्यकण्ठाभरणपञ्चिका के रचयिता आशाधरजी के शिष्य इस अर्हदासजी का समय भी लग-भग यही विक्रम की १३ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १४ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध होना चाहिये।

\* यावू हीरालालजी का मत है कि आशाधरजी ने वि० सम० १२७५ के लगभग कुछ काल बरार प्रान्त में निवास और ग्रन्थ-रचना भी की होगी। देखें "मध्यप्रान्त-मध्य-भारत व राजपूताना के प्राचीन जैन स्मारक" की भूमिका पृ० १७।





(१३) ग्रन्थ नं० ३१६  
ख

## भव्यानन्द-शास्त्र

कृतां—धीमत्पाण्ड्य क्षमापति

विषय वेदाभ्य

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—६॥॥ इञ्च

चौडाई—६ इञ्च

पत्रसंख्या १२

प्रारम्भिक भाग—

अयं क्रियायस्य महामिषेके निरस्तगाभीर्यगुणं पयोधि ।  
 स्वकीयरत्नप्रकरे प्रदीपशोभां विधत्ते स जिनधिरथ ॥१॥  
 नेत्राभ्यैरभ्युज्जीरुद्वनयनजलेर्विज्यतीर्षाम्बुपुरी-  
 मण्डे शुद्धं सुगन्धैर्निक्षिप्तमिलत्स्रज्जातरीषे प्रदीपे ।  
 वाग्जालैरक्षतार्यं सह विधुविशदैरक्षतेर्भक्तिरूपे-  
 र्धैरिन्द्रावर्यमानं जिनचरणसरोज्जातयुग्मं भजामि ॥२॥  
 शीलाकण्डं विष्यगुणाभिरामान् निमुञ्जशाखाग्निमुषोऽग्निमान् ।  
 मत्स्या महत्या प्रणमामि नित्यं समन्तमद्रादिमुनीन्द्रमुख्यान् ॥३॥  
 भोन्द्रमुख्यैरिह पूज्यपाद शीलैः समस्तैश्च समन्तमद्रम् ।  
 गुणैरनिन्द्यैरकलदुर्भेदे धीर्ज्जमानं द्युतपद्मभालुम् ॥४॥  
 वर्द्धमानाख्यया नित्यं धर्षितोऽपि महीतले ।  
 असी मुनिपतिध्वजं गतमानकपायकम् ॥५॥  
 अन्नित्किताशेषचरितपूज्यधीनागवन्द्रमतिपुंगवस्य ।  
 निर्वाणमेतद् भुवि सदुदुधानां निर्वाणवृत्तं प्रक्रीकरोति ॥६॥  
 पाण्डालं सुधया गुणान्वितं सद्गुणाभीर्यमग्मोधिना  
 शान्तिं कैर्यकान्तकान्तकचिर्मर्ष्यं सुयर्णाद्रिणा ।  
 शीलं स्वामिनिष्ठरगसरसत्वं मुत्यवृत्तिं मनो  
 जाड्या सह सन्ध्याति भवत धीदेवचन्द्रमनो ॥७॥  
 गुणाहितोर्जित (१) सुमनोऽन्वितोऽपि सुवर्णांशुर्णामरव्याधिनेऽपि ।  
 धीपूज्यपादमतिपो विचित्र विमुनभोगे गतभूयद्वाङ् ॥८॥

निरस्तामोहैः सुजनैर्नतीहैः प्रशान्तभादैः प्रतिभावलोकैः ।

अस्मिन्प्रबन्धे सततं प्रमोदात्प्रचिन्तनीयानि पदानि सन्ति ॥६॥

यथा वस्तुस्थितिलोके तथा वक्ष्याम्यहं निजम् ।

रागद्वेषद्वयं हित्वा सदा शृण्वन्तु धीधनाः ॥१०॥

हिंसासक्तैर्मृपानन्दैर्दुर्बुधैश्च बलैरपि ।

अभव्यमेव मत्काव्यं भाव्यं भव्यजनैः सदा ॥११॥

स्वभावसिद्धमभ्यस्य लोकस्य हि गुणागुणाम् ।

अवाच्यमप्यहं वक्ष्ये भव्यबोधाय भावतः ॥१२॥

शुचिचिह्नतरभव्यानन्दनामैकपूज्यं मद्गिरिशतकोटिं ग्रन्थमानन्दकंदं ।

पुलकवनवसन्तं पाण्ड्यभूनाथजातं सहजसुखसुधाग्निं वीक्ष्य नन्दन्तु सन्तः ॥१३॥

निजकरद्विनिकटकटुरद्वधमधुकरनिनददत्तकर्णास्य ।

मिथ्यागजस्य विदलनविधिचतुरपदो मदीयकाव्यहरिः ॥१४॥

त्यक्त्वा जिनेन्द्रवचनामृतमात्मसारं कुर्वन्ति कुत्सितमृग्यावचनेषु रागम् ।

ये ते स्वमातृकुचदुग्धरसं विहाय मुग्धाः पिवन्ति विपतोयमतिप्रमोहात् ॥१५॥

×

×

×

गध्यभाग (पृष्ठ ६ श्लोक ६२—६३)

मृपापदं घोरभवाग्निंकवुं कृशोदरीकण्ठमिमं हि लोके ।

मनोजपूगीगलमित्यवेद्य मनोविकारं मनुजाः श्रयन्ते ॥६२॥

हृद्गोलाङ्गूललीलाचलमधमधुलिट् पद्मकोशं भवाग्नि-

न्यम्भः क्रीडद्रयांगं धनपिशितमयं यत्कुचं कामिनीनाम् ।

कुम्भं दम्भोलिपाणिद्विरदपरिलसत्कुम्भमित्येव मुक्त्वा

चित्रं तत्रैव सक्तं सकल जगद्दिदं धिङ् नृणां चेष्टितानि ॥६३॥

×

×

×

अन्तिम मंगलाचरण एवं प्रशस्तिः—

सम्यक्चाङ्कुरसंभवः प्रविलसद्वैराग्यमूलान्वितः

शुद्धानन्दविलोलपल्लवकुलः कल्याणशाखान्वितः ।

ज्ञानोद्यत्कुसुमान्वितः क्षमफलाकीर्णो विचारास्पदम्

जीयादाहृतपारिजातविट्पि संसारसन्तापहः ॥

मानानभ्यरसास्यदं धुधजनानन्दाधुपुष्पदः  
 मय्याह्लात्समर्पणैकनिपुणो प्रन्य' प्रबोधाकरः ।  
 युक्तया धीजिनदत्तभूमिपमहावंशाब्धिपुण्ड्रना  
 पाण्ड्यपद्मापतिना रिशुद्धमतिना सौख्याश्रयो निर्मितः ॥  
 आचन्द्राकं जगत्यास्मिन् धर्माधर्मसमन्विते ।  
 मन्वानन्दाभिधो प्रन्यो मन्वानन्दाय वर्धताम् ॥  
 नमः धीशान्तिनाथाय कर्मारण्यद्वाप्रये ।  
 धर्माधर्मवसन्ताय वेधाभ्योधिमुघांशवे ॥

इति श्रीमत्पाण्ड्यभूपतिविरचितो मन्वानन्दः समाप्तः ।

इस मन्वानन्द ग्रन्थ के कर्ता पाण्ड्य इमापति के परिचय के साथ साथ इनका कुछ वंशपरिचय भी दे देना मैं समुचित समझता हूँ । प्राचीन समय में उत्तर मधुरा (मयुरा) में उपवेशीय वीरनारायण आदि अनेक शासक हुए हैं । पीछे इस वंश का राजा साकार हुआ जो किसी समय एक भील लडकी पर आसक्त होकर अपनी धर्मपत्नी महिषी धीयला देवी एवं पुत्ररत्न जिनदत्त राय से उदासीन हो गया । बल्कि एक दिन उक्त भील की लडकी पतिनी के दुराग्रह से यह अपने प्रिय पुत्र जिनदत्त राय तक को भी मरवा डालने के लिये उतार डाला गया । पर भील कन्या के इस पश्यन्व का अपने कुलगुरु के द्वारा रानी धीयला को पता लग गया । तुरन्त ही उक्त रानी धीयला ने कुलदेवी वमा वती की प्रतिमा के साथ अपने प्रियपुत्र जिनदत्त राय को सुरक्षा के खपाज से यहाँ से कहीं अन्यत्र भेज दिया । जिनदत्त राय मयुरा में चलकर कुछ दिनों के बाद वर्तमान मीसूर राज्यान्तर्गत पोन्नुच में पहुँच एव वहाँ राज्य स्थापित कर शासन करते लगे । इसके बाद इन्होंने क्षत्रिय मधुरा (मयुरा) का प्रसिद्ध पाण्ड्यवंशी राजा धोर पाण्ड्य की पुत्री पतिनी और मनोराधा के साथ विवाह किया । इस मयुरा पाण्ड्यवंश का विस्तृत वर्णन जो हिन्दी विश्वकोष के १३ वें भाग में दया है उसी में इस वंश के राजाओं के नाम की एक लम्बी तालिका भी दी गयी है । तालिकान्तर्गत राजाओं के भित्तिक इसी वंश की एक शाखा वर्तमान क्षत्रिय कन्नड़ निवा में भी राज्य शासन करती रही। उसको राजधानी बारकूठ थी। उस समय यह "बारकूठ" क्षत्रिय भारत में एक समृद्धिवाली नगरी मानी जाती थी। क्षत्रिय के स्वर्गीय ताताचार्य आदि कई सुप्रसिद्ध विद्वानों ने पाण्ड्यवंश को जैन

बतलाया है। हाँ, इसके सभी शासक तो जैन नहीं माने जा सकते किन्तु दक्षिण कन्नड़ प्रान्त में इस वंश के जितने राजा हुए हैं वे सब के सब जैन धर्मावलम्बी थे।

कुछ दिनों के बाद राजा जिनदत्त राय को पार्श्वचन्द्र तथा नेमिचन्द्र नामक दो पुत्र हुए। पार्श्वचन्द्र ने अपने शासन-काल में अपने नाम के अन्त में "पाण्ड्यभैरव राज" यह एक नूतन उपनाम जोड़ दिया। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि पुर्य में भैरवी पद्मावती के द्वारा अपने पिता की रक्षा एवं अपनी माता पाण्ड्यवंशीय होने से ही इन्होंने उक्त उपनाम को अपनाया। पीछे इस वंश के सभी राजा इस "पाण्ड्यभैरव" उपनाम को बड़े आदर के साथ अपने नाम के आगे जोड़ने लगे। उक्त जिनदत्त राय के वंश के राजा पीछे दक्षिण कन्नड़ जिला में भी शासन करने लगे। इन राजाओं की राजधानी वर्तमान कार्कल में थी। कार्कल में शासन करने वाले इस वंश के राजाओं की नामावली इस प्रकार है :—

(१) पाण्ड्य देवरस अथवा पाण्ड्य चक्रवर्ती, (२) लोकनाथ देवरस (३) वीरपाण्ड्य देवरस (४) रामनाथ अरस (५) भैरवस ओडेय (६) वीर पाण्ड्य भैरवस ओडेय (७) अमिनव पाण्ड्य देव अथवा पाण्ड्य चक्रवर्ती (८) हिरिय भैरव देव ओडेय (९) इम्मडि भैरव राय (१०) पाण्ड्यप्य ओडेय (११) इम्मडि भैरव राय (१२) रामनाथ (१३) वीर पाण्ड्य<sup>३</sup>।

उक्त तालिका में प्रतिपादित शासकों में से ही मुझे कविवर पाण्ड्य क्षमापति को खोजना है। पर खेद है कि इन्होंने अपनी रचना में कहीं भी अपना समय न देकर इस कार्य को कुछ गहन बना दिया है। खैर, इन्होंने इस मध्यानन्द ग्रन्थ के प्रारंभिक ६४ एवं ७म श्लोकों में क्रमशः नागचन्द्रवती तथा देवचन्द्र इन दोनों का सादर स्मरण किया है। अब मुझे इन्हीं दोनों पाण्ड्य क्षमापति के स्मरणीय व्यक्तियों के समय के आधार पर इनका समय निर्धारित करना है। उल्लिखित नागचन्द्रजी वही नागचन्द्र हैं जिन्होंने धनंजयकृत विषापहार स्तोत्र की एक संस्कृत टीका लिखी है। वह टीका "भवन" में मौजूद है और इसको प्रशस्ति यथास्थान "भास्कर" की किसी किरण में दी जायगी। इस टीका से पता चलता है कि मूलसंघान्तर्गत देशोगण, पुस्तक गच्छ के ललितकीर्त्तिजी के प्राय अप्रशिष्य थे। साथ ही साथ नागचन्द्रजी ने अपनी टीका में यह साफ साफ लिख दिया है कि इनके गुठ ललितकीर्त्तिजी पनसोगे (मैसूर) के निवासी एवं तौळव देश के प्रवासी थे। दक्षिण कन्नड़ प्रान्त की बोल-चाल को माया 'तुळु' है इसी से यह तौळव देश कहलाता है। यही ललितकीर्त्ति जी तौळव देशान्तर्गत कार्कल के राज्यशासक भैरव

राजवंश के मनोनीत राजगुरु थे। बल्कि इन्हीं के समक्ष में शकसम्वत् १३५३ वि० सं० १४८८ म धीर पाण्डव के द्वारा कार्कल में बाहुबली स्वामी की विशाल प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गयी थी। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि नागचन्द्रजी विक्रमीय १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के गिज्ञान हैं। सुहृद्दर्पण जुगल किशोरजी ने "जैन हितैषी" भाग १२, अङ्क २३ में इनका जो समय विक्रमीय १६ वीं शताब्दी निर्धारित किया है वह मुझे ठीक नहीं जँचता है। क्योंकि आपके इस समय-निर्णय से तो गुरु ललितकीर्त्ति और शिष्य नागचन्द्र में कम से कम सौ सवा सौ वर्षों का एक विशाल अन्तर पड़ जाता है। साथ ही साथ प० जुगल किशोरजीने नागचन्द्र के मुनित्व पर जो सन्देह प्रकट किया है वह भी प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रारम्भिक दृष्टिकोण से दूर हो जाना चाहिये। क्योंकि इस पद्य द्वारा इन्हें 'धतिपुंगव' आदि विशेषणों से स्मरण किया है।

अब देवचन्द्रजी को लीजिये। यह देवचन्द्र इन्हीं नागचन्द्र के अग्र्यतम गुरु एवं उल्लिखित ललितकीर्त्तिजी के शिष्य है। नागचन्द्रजी ने अपनी विद्यापहार की टीका में इन्हें भी अपना गुरु स्पष्टतया लिखा है। बल्कि उल्लिखित ललितकीर्त्तिजी के शिष्य जिनयशकलोदय के कर्त्ता मुनि कल्याणकीर्त्ति ने अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में स्वगुरु की प्रशंसा करते हुए "देवचन्द्रमुनीन्द्राचार्यो दयापाल प्रसन्नधी" इस पद्यांश में उक्त देवचन्द्र का भी उल्लेख कर दिया है। इनका यह जिनयशकलोदय ग्रन्थ शक १३५० में समाप्त हुआ था।\* अबणवेदगेण के शक सम्वत् १३२० के सं० १०५ (२५५) वाले शिलालेख में प्रतिपादित नागचन्द्र और देवचन्द्र हमारे पूर्वोक्त नागचन्द्र—देवचन्द्र से प्रायः अभिन्न होंगे। क्योंकि दोनों के गणगच्छा एक हैं और साथ ही साथ ३५ साल के समय का यह अन्तर भी कोई असम्भवपरक मद्दान अन्तर नहीं है।

अस्तु उल्लिखित प्रमाणों के आधार में मैं यह कह सकता हूँ कि ललितकीर्त्ति, देवचन्द्र, कल्याणकीर्त्ति नागचन्द्र और पाण्डव द्वापति ये सब के सब लगभग सम सामयिक विद्वान् थे। समर्थ है कि ये लोग एक साथ कार्कल में रहे हों। साथ ही साथ यह भी सिद्ध हो जाता है कि देवचन्द्र नागचन्द्र और कल्याणकीर्त्ति ये तीनों ललितकीर्त्ति के शिष्य थे। इससे भव्यान्न्द शास्त्र के कर्त्ता वारहण द्वापति का समय भी एक प्रकार से हल हो जाता

\* प्रशस्ति समूह पृष्ठ १८ देखें।

+ देशीगणवे एनगुण्येऽन्वितः कल्याणद्वाराद्येऽनुशेधरः कर्त्तव्यः प्रभूता ।

है। मेरा अनुमान है कि अपने ग्रन्थ (भव्यानन्दशास्त्र) में नागचन्द्र-देवचन्द्र को स्मरण करने वाले यह पाण्ड्य क्षमापति ही वाहुबलीमूर्त्ति के प्रतिष्ठापक वीर पाण्ड्य भैरवस (शक १३५३ सन् १४३१-३२) अथवा उनके उत्तराधिकारी अभिनव पाण्ड्यदेव या पाण्ड्यचक्रवर्ती (शक १३७६ सन् १४५७) हों।

मैंने पाण्ड्य क्षमापति का वंश-परिचय जो ऊपर दिया है वह भव्यानन्द के अन्त के "नानानव्यरसास्पदं बुधजनानन्दाश्रुपूरप्रदो भव्याह्लादसमर्पणैकनिपुणो ग्रन्थः प्रवोधाकरः। युक्त्या श्रीजिनदत्तभूमिपमहावंशाब्धिपूर्णेन्दुना पाण्ड्यक्षमापतिना विशुद्धमतिना सौख्या-श्रयो निर्मितः ॥ इस श्लोक के आधार पर। आशा है कि यह वंश-मन्तव्य आपजनक नहीं होगा।

(१४) ग्रन्थ नं०  $\frac{२१७}{९}$

## बीजकोश

कृता—

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥॥ इञ्च

चौड़ाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या २१

प्रारम्भिक भाग—

तेजो भक्तिर्विनयः प्रणवः ब्रह्मप्रदीपवामाश्च ।  
वेदोज्ज्वलदहनध्रुवमादि(?) श्रोमिति ख्यातम् ॥  
मायातत्त्वं शक्तिलोकेशो ह्रीं त्रिमूर्त्तिबीजेशौ ।  
कूटाक्षरं क्षकारं मलवरयूँ पिण्डमष्टमूर्त्तिञ्च ॥  
बाणाः पञ्च द्रां द्रीं ह्रीं ह्रीं सु इति ठवर्णमखिलेन्दुः ।  
भ्रवीं स्वीं हं सं सुरभिमुद्राक्षरमयबाग्भश्चै (?) च ॥  
क्षिप श्रौं स्वाहा बीजाः क्षितिजलदहनानीलाम्बरं क्रमशः ।  
खगपतिपञ्चाक्षरमित्यां वा शतत्कशां च स्यात् ॥

x

x

x

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ ३ पक्ति ७)

अथ मन्त्र-व्याकरणम्

अहंता असरीता आश्रिया उबन्धया मुणिणो ।

पदमन्थर णिण्णो भोंकारो पंचपरमैद्वी ॥

अकारादित्तकारपर्यन्तमेकाक्षरलक्षणमुवाहरिष्यामः ।

पृष्ठासनं गजराहनं हेमवर्णं क्षुब्धमण्यं लयगास्वात् जम्बूश्रोपविस्नीर्णं चतुर्मुखं भद्रबाहुं  
 कृष्णलोचनं जट्टामुकुटधारिणं सितवर्णं मौक्तिकामरणं भनीरबलगंभीरं पुंलिङ्गं अकारस्य  
 लक्षणं । पद्मासनं गजगालराहनं सितवर्णं शंखचक्रबद्धाङ्गुलधारिणं द्विमुखमष्टहस्तं  
 अहिभूरणं शोभगादिमहादुपुतिं त्रिगतासहस्रयोजनविस्नीर्णं श्लोकलिङ्गं अकारस्य माहा-  
 ल्यम् । कूर्मवाहनं चतुरध्वाननं हेमवर्णं अज्ञायुधं एकयोजनविस्नीर्णं द्विगुणायाममुन्नेषं  
 कृपापस्यादं अक्षदेहूर्ध्वधर्णादहनं अक्षरं नपुंसकं सत्रियमिकारस्य माहालयम् ।

x

x

x

अन्तिम भाग—

पुटपदवरीयाश्च कूर्मप्रचनरोधगाः ।

वर्ष्ये द्वेने च शान्ती च स्तम्भाहरदौ च वीहने ॥

मन्त्रमन्थगतं नाम पुटमन्त्रे च पलायम् ।

भारभे क्षीरनं विशि द्वयुक्तमन्त्रं विदुर्भङ्गम् ।

वकासरास्तरं नाम प्रचनं रोधनं पुनः ॥

आचन्तमंयुतं नाम तेष्विष्टं सम्प्रगाद्येत् ॥

वक्ष्याकर्दमार्गमन्त्रमपीडात् पालसारकम् ॥

शान्तिपुष्टिं कर्माग्रतोमपमैत्र्यै शान्तयश्चिदु ।

मन्त्रप्रायनेनृपानुगुणं शपीयो युषी ॥

द्विष्णालयनमिडात् कार्पमिडिद्य विष्णया ।

पूरुहे वष्यकर्मोद्य मन्त्राहे देमनाशनम् ॥

अरताहे वगार् च वीडा राणवागता मयेत् ॥

शान्तिवर्धनं तयो च मन्त्रे वीरिष्टं तथा ॥

कार्पं मुक्त्वाप्यकर्मोद्यि मन्त्रहन्त्रेन देवदेव ॥

अंबुदाम्बुजमन्त्रोपं प्रचनं परिश्रितका ॥

मुद्राहरिणो शान्तिवर्धने रोधरोधने ।

वण्डस्वस्तिकर्पकजकुक्कुटकुलिशाख्यभद्रपीडानि ।  
 उद्र्यार्करागशशधरधूमहरिद्राः सिता वर्णाः ॥  
 अस्त्रकं शस्यते कुंडं वय्याकर्षणपीडने ।  
 शान्तिपुष्टौ चतुष्कोणं वृत्तं द्वेषापसारके ॥  
 स्फटिकं च प्रवालं च मुक्ता स्वर्णं च बीजकम् ।  
 शान्तिपुष्टौ वशाकृष्टौ विद्वेषोच्चाटरोधने ॥  
 शान्तिपुष्टौ तु रुद्राक्षैः पद्माक्षैः स्फटिकैर्जपेत् ।  
 तद्वर्णयुतसत्पुष्पैर्जपं स्यात्सर्वकर्मणि ॥  
 मोक्षशान्तिवशाकर्षे स्तम्भद्वेषेऽपसारके ।  
 अंगुष्ठमध्यमानामितर्जनीभिर्मणिं चरेत् ॥  
 शङ्खलानि समुद्द्वैष्यं द्वादशाक्षुषिर्व्ययोः ।  
 अष्टावेवामिचारेषु नवशान्तिकर्षौष्टिके ॥  
 वषट् वस्ये फड् वसि हुं द्वेषे षौष्टिके स्वधा ।  
 वौषडाकर्षणे स्वाहा शान्तिके षेऽथ पीडने ॥  
 शान्तिपुष्टयोः सितं पुष्पं वय्याकृष्टौ च रक्तकम् ।  
 अभिचारे तु धूमं स्यात् स्तम्भने पीतमादिशेत् ॥  
 सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तद्रजोभिर्गुडान्वितैः ।  
 चन्द्रनागुरुकर्पूरगुग्गुलाश्रवृतादिभिः ॥  
 पायसान्नाक्षतीर्मिश्रैर्ब्रह्मवृत्तोद्भवादिभिः ।  
 समिद्धिश्च चरेद्धोमं प्रतिग्राशान्तिषौष्टिके ।

॥ इति पट्टकर्मविधिः समाप्तः ॥

यह एक मन्त्र-शास्त्रान्तर्गत अल्पराय ग्रन्थ है। इसका नाम "बीजकोष" है।  
 देवताओं के मूल मन्त्र को बीज मन्त्र कहने हैं। यह इसी का संग्रह—कोश है। तन्त्र-  
 शास्त्र में प्रत्येक देवता के भिन्न भिन्न बीजमन्त्र कहे गये हैं।

इसमें सर्व-प्रथम बीजाक्षर सामर्थ्य प्रकरण दिया गया है। इस प्रकरण में भिन्न भिन्न  
 बीजाक्षरों को सामर्थ्य बतलायी है। जैसे ह्रीं ओं ह्रीं स्मृतिनाशनम्, ह्रीं मां ह्रीं आकर्षणम्,  
 ह्रीं ईं ह्रीं पुष्टिकरणम्, ह्रीं ईं ह्रीं आकर्षणम् आदि। दूसरा प्रकरण है बीजकोष। इसमें  
 अन््यान्य बीजाक्षरों का उल्लेख मिलता है। जैसे—

सौंकारं पृथिवीबीजं पंकारं आपद्दुच्यते ।

भांकारं अग्निबीजं वा प्रत्यं सर्वदर्शनं ॥



स्वाकारं माहृतं ह्येह हकारं व्योमनिश्चयम् ।

टकारं वह्निबीजं च षो गजप्रशाङ्कुशे ॥

तीसरा प्रकरण मन्त्र व्याकरण है। इस प्रकरण में अकारादि में लेकर सकार-पर्यन्त प्रत्येक बीजाक्षर का लक्षण बतलाया गया है। बल्कि इसी प्रकरण का आरम्भिक कुछ अंश अन्तिम भाग के पहले मध्य भाग शीर्षक में दे दिया गया है। इसके आगे मन्त्रों के वर्ण, लिङ्ग, ध्वन्य, आकृषण आदि कार्यभेद तथा पारस्परिक बीजाक्षरों की मित्रता शत्रुता आदि का उल्लेख किया गया है। अन्तिम मन्त्रपरीक्षा प्रकरण में मास-फल, नक्षत्र-फल, राशिफल, पञ्चभूत-फल आदि की धर्चा कर कौन कौन बीजाक्षर किन किन कार्यों में व्यवहरणीय है पर उनकी क्या विधि है इत्यादि बातों पर संशोधन में विचार किया गया है। साथ ही इसमें यह भी बतलाया है कि शुद्ध मन्त्रोद्गम देने के पहले जिन्य की भले प्रकार से जाँच कर ले। अन्त में उच्चारणादि प्रत्येक कर्म की दिशा, काज मुद्रा, आसन, हृत्कण्ठ, माला, समिध् ( लकड़ी ) आदि आवश्यक बातों पर भी साधारण प्रकाश डाला गया है।

हिन्दू मन्त्रशास्त्र में भी मूल बीजाक्षरों पर काफी प्रकाश पड़ा है। जैसे—मन्त्रपूर्ण बीज, शूनी बीज, हयग्रीव बीज, नरहरि बीज, धीरिदा-बीज, श्मशानकालिका-बीज, पाण्डालिनी बीज, वर्णपिशाची बीज, भूविकारविषहर बीज, सुखयम्य बीज, निगाडबन्धन मोक्षण-बीज आदि।

अब रही बात इसके रचयिता के विषय में। किन्तु इस विषय के माधन के अर्थ स्तानात्र से इस बीज कोश के कौन रचयिता है यह नहीं कहा जा सकता।



(१५) ग्रन्थ नं० २२२  
ख

## प्रतिष्ठा-कल्पटिप्पणम् (जिनसंहिता)

कर्ता—कुमुदचन्द्र

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च

चौडाई ५॥ इञ्च

पत्रसंख्या ३६

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तत्रकवर्चितनूभवः  
 कुमुदेन्दुरहं वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम् ॥१॥  
 विज्ञानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।  
 नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥ २ ॥  
 प्रपञ्चयन्तु नः प्रज्ञां पञ्चापि परमेष्ठिनः ।  
 यद्वचोऽस्मृतक्षेकेन शीतीभूतमिदं जगत् ॥ ३ ॥  
 पदं जिनगुणस्तोत्ररुतमङ्गलसक्रियः ।  
 संग्रहीष्यामि भव्येभ्यो हिताय जिनसंहिताम् ॥ ४ ॥  
 शाल्वावतारसम्बन्धः प्रथमं प्रतिपाद्यते ।  
 श्रेयोऽर्थिनः समाधाय चेतः शृणुत धीधनाः ॥ ५ ॥  
 इत्यनुश्रूयते वीरश्चरमस्तीर्थनायकः ।  
 विपुलाद्रौ सर्वां दिव्यामप्युवास कदाचन ॥ ६ ॥  
 तत्रासीनं तमभ्येत्य वन्दित्वा मगधेश्वरः ।  
 उपेत्य गणभृज्ज्येष्ठमप्राज्ञीजिनसंहिताम् ॥ ७ ॥  
 चराचरजगद्गद्गुस्ततस्तां जिनसंहिताम् ।  
 भगवान्गौतम-स्वामी मागधं प्रत्यवृत्तुधत् ॥ ८ ॥  
 ततः प्रभक्त्यविन्दित्वात्सर्गार्णवतामृतम् ।  
 मय

मागधप्रश्नमुद्दिश्य गौतम प्रत्यवोचत ।

इतीदमनुसंधाय प्रबन्धोऽयं निबन्धते ॥ १० ॥

रुगत हितमेतस्या भव्यानामितिसहिता ।

जिनसम्बन्धिनी सेयं नाम्ना स्याज्जिनसहिता ॥ ११ ॥

हितार्थिनो ये जिनसहितामिमा पठन्तु ते ध्रुवत सहादरम् ।

प्रकाशिता शिवपदार्थदर्शिभिः प्रमाण्यमूतेर्धृषभैः कवीश्वरैः ॥ १२ ॥

पूज्य पूजार्हमर्हन्त प्राप्यपाद्यादिसम्पदम् ।

प्रण्वित्य प्ररक्ष्यामि पूजासार समुच्चयम् ॥ १३ ॥

पूज्यो जिनपति पूजा पुण्यहेतुर्जिनार्चना ।

फल स्वाभ्युदया मुक्ति भव्याऽमा पूजक स्मृत ॥ १४ ॥

×

×

×

×

मध्य भाग ( परपृष्ठ १४ पक्ति ३ )

ओं शक्ररुद्धियमनेन तिरार्थि रायुयज्ञेशोपशशिसञ्जकलेरुपाला ।

पूर्वादिक्कासु विमवन दिशासु वेद्यान्तिष्ठन्तु लम्बकुण्डुमादिकयज्ञभागा ॥

आ मन्त्रित सुरधरैरिति पञ्जरर्णमणिफ्यचूर्णरजसा परिकल्पितया ।

वेशा विद्विस्तु कुलिदान् विलिखत् सुरन्द्रो रुन्द्रश्रिया परिगतो परयज्ञचूर्ण ॥

अथैव वेदिकाविधान परिसमाप्य तत्त मालामन्त्रे पञ्चोपचारविधिना वेदिकायां  
लिखिततद्दलकोष्ठनिवासिदेवान् पञ्चगुरुमुख्यान् समाहूय सस्थाप्य सान्निधीहृत्य संपूज्य  
वेदिकामलङ्कृत्य वेदिकाविधान कर्त्तव्यम् ।

इति धीमाघनन्दिमुतधीवादिबुमुद्दचन्द्रपण्डितदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणे वेदिका  
विधानम् समाप्तम् ।

×

×

×

×

×

अन्तिम भाग—

इति धीमाघनन्दिमुतधीवादिबुमुद्दचन्द्रपण्डितदेवविरचिते प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणे यन्त्राचनविधि समाप्त ।

इसके रचयिता पण्डितदेव बुमुद्दचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती माघनन्दी के पुत्र हैं। यह  
ज्ञान मद्रूलाचरण के प्रथम श्लोकान्तगत “तनुमय” एव प्रशस्तिगत “सुत” शब्द से  
स्पष्ट प्रतीत होती है। परन्तु पण्डित माधुरामजा प्रेमी ने “माणिक्यचन्द्र दिगम्बर जिन  
प्रथमजा” में प्रकाशित “सिद्धान्तसारादिमंगल” के “प्रथमकाष्ठा का परिचय” में

'तनूमय' शब्द का उल्लेख करने हुए भी कोष्ठक में इन कुमुदचन्द्र को माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्त्ती का शिष्य लिखा है—यह बात विचारणीय है। संभव है कि कहीं कहीं शिष्य के अर्थ में पुत्र शब्द का प्रयोग देल कर प्रेमीजी ने यह लिख दिया हो। किन्तु यहाँ तो "तनूमय" शब्द है, जिसका अर्थ पक्रान्ततः शरीरजन्मा अर्थात् धात्मज होता है। बल्कि प्रेमीजी ने मद्रास की ओरियन्टल लायब्रेरी में संगृहीत "प्रतिष्ठाकल्पटिप्पण" या "जिनसंहिता" के प्रारम्भिक भाग और प्रशस्ति को उद्धृत करने हुए जिस कुमुदचन्द्र को उस "परिचय" में माघनन्दी का शिष्य इतलाया है उसी कुमुदचन्द्र को M. Rangacharya M.A., और S. Kuppaswami Shastri M.A., इन दोनों प्रख्यात पुरा-तत्त्ववेत्ताओं ने A Descriptive Catalogue of the Sanskrit manuscripts in the Government Oriental manuscript Library Madras नामक ग्रन्थतालिका में उक्त पुस्तक का उद्धरण कर सम्पादक की हैसियत से 6346 पृष्ठ में साफ साफ पुत्र लिखा है। संभव है कि सिद्धान्त-विपरीत समझ कर कोष्ठक में इन्हें प्रेमीजी ने शिष्य लिख दिया हो। परन्तु मैं यह समझता हूँ कि कुमुदचन्द्र जी ने वंश-परम्परागत पाण्डित्य-परिपाटी को प्रकटित करने के लिये ही गौरवरूप में विद्वद्गुरु माघ-नन्दी का अपने को पुत्र होना स्वीकार किया है।

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं प्रेमीजी के मन्तव्य का खण्डन कर रहा हूँ। इससे मेरा केवल यहाँ अभिप्राय है कि उल्लिखित 'तनूमय' शब्द का अर्थ पुत्र होना चाहिये। बल्कि अन्यान्य विद्वानों ने भी इसका यही अर्थ किया है और माना है। मैं समझता हूँ कि प्रेमीजी भी उक्त शब्दों का अर्थ पक्रान्ततः शिष्य नहीं मानते। अन्यथा इसे कोष्ठक में रखने की उन्हें जरूरत ही क्या थी? मैं ऊपर यह बात सप्रमाण लिख चुका हूँ कि कहीं कहीं पुत्र, सुत, अपत्य एवं स्रुत शब्द का प्रयोग शिष्य अर्थ में भी होता है। अतः इस विषय पर मेरा सर्वथा कदाग्रह नहीं है, पर हाँ विचारणीय अवश्य है।

अस्तु माघनन्दी नाम के कई आचार्य हो गये हैं। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी हैं। "कर्नाटक कविवरिणे" के मतानुसार एक माघनन्दी का समय सन् १२६० ( वि० सं० १३१७ ) है। इन्होंने शाख

\* "दे [जी] यात् श्रीधरदेवशिष्यतिलकः श्रीवासुपुत्रो मुनिः

शैविद्यस्तदपत्यनुत्पादयेन्दुत्यातसैद्धान्तिकः ।

तद्युक्तः कुमुदेन्दुयोगितिलकस्तत्पुत्रुर्युक्तः

सिद्धान्तार्थवचन्द्रमाः सुखपदं श्रीमाघनन्दी व्रती ॥"

(शाखसारसमुच्चय की कन्नड़ टीका पृष्ठ ३३१)

सारसमुच्चय की एक कन्नड टीका लिखी है एवं माघनन्दी ध्रुवकाचार के कर्ता तथा पदार्थसार के टीकाकार भी आप ही हैं। शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता भी माघनन्दी ही कहे जाते हैं ॥ शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार ने अपनी गुरु-परम्परा यों बतलायी है :—

× × × × ( १ ) श्रीधरदेव ( २ ) वासुपुत्र्य ( ३ ) उदयेन्दु ( ४ ) कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र ( ५ ) माघनन्दी। इससे सिद्ध होता है कि इस कन्नड टीकाकार माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र हैं। अगर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकल्प के कर्ता यही कुमुदचन्द्र टीकाकार माघनन्दी के गुरु हों तो इनका भी समय लगभग यही होना चाहिये। ध्रुवण वेङ्गोळ के शिलालेख नं० १२६ ( १३४ ) में भी एक कुमुदचन्द्र और माघनन्दी का उल्लेख मिलता है। इसमें कुमुदचन्द्र के माघनन्दी का गुरु लिखा है। इस शिलालेख का समय शक सम्बत् १२०५ ई० सन् १२५२ है। शिलालेख-गत कुमुदचन्द्र और माघनन्दी के प्रस्तावित कुमुदचन्द्र और माघनन्दी से अभिन्न मालूम होते हैं। बल्कि “कन्नड कविचरित” के सुयोग्य सम्पादक आर० नरसिंहाचार्य एम० ए० भी इन्हीं कुमुदचन्द्र के शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानते हैं। उपर्युक्त शास्त्र सारसमुच्चय के टीकाकार माघनन्दी की गुरु परम्परा में कुमुदचन्द्र के पहले इनके पिता या गुरु माघनन्दी का नाम न मिलकर उदयेन्दु का नाम उल्लेख होता है, अतः इसी कुमुदचन्द्र के टीकाकार माघनन्दी का गुरु मानने में कुछ खटकता है। मे पढ़ते ही कह चुका हूँ कि पता नहीं लगता कि कुमुदचन्द्र के पिता या गुरु कौन से माघनन्दी हैं। बल्कि मेरे मन में यह भी विचार उठ खड़ा होता है कि शास्त्र सारसमुच्चय के मूल रचयिता ध्रुव टीकाकार माघनन्दी एक ही हैं। अर्थात् कुमुदचन्द्र के शिष्य माघनन्दी ही शास्त्र सारसमुच्चय के कर्ता हैं और इन्हीं की रोगण्ड कन्नड टीका भी है। फिर भी हमें अभी सिद्धान्त-रूप में स्वीकार नहीं करता हूँ। इस विषय पर अभी रोज करने की ज़रूरत है। आश्चर्य नहीं कि

ॐ श्रीमाघनन्दी योगीन्द्र\* सिद्धातामोपिचद्रमा ।

अर्थात्त्रिचिन्तये शास्त्रसारसमुच्चयम् ॥

(सिद्धांतपारादि-संग्रह)

† नाम कुमुदचन्द्राव विद्याविशदपूर्ति ।

वत्स वारुचन्द्रिना भव्यकुमुदानन्दनिने ॥३॥

नमो नम्रजनार्दस्वन्दिने माघनन्दिने ।

जगत्प्रसिद्धिदास्तवेदिने ऽचिन्मोदिने ॥४॥

‡ भास्कर भाग २, किरण ४, पृष्ठ १२२ देखें ।

स्वगुरु कुमुदचन्द्र के समान गिन्य इस माघनन्दी ने स्व-रचित शास्त्र-सारसमुच्चय पर स्वयं कलाउ चूत्ति लिखी हो।

“कनाटक कविचरिते” के मुद्र लेखक आर० नरसिंहाचार्य एम० ए० उक्त ग्रंथ के भाग २ गृह ११ में एक वादिकुमुदचन्द्र का परिचय इस प्रकार देने हैं:— “इन्होंने जिनसंहिता नामक प्रतिष्ठा कव्य पर कलाउ व्याख्यान लिखा है। उसके प्रारम्भ में यह श्लोक है ” यों लिख कर प्रस्तुत प्रतिष्ठाकर ने उद्धृत उल्लिखित प्रारम्भिक श्लोक एवं प्रशस्ति को ही प्रमाण-रूप में आप प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर भी आपने मेरे पूर्व कथनानुसार कुमुदचन्द्र का माघनन्दी सिद्धान्त-चक्रवर्ती का गिन्य न लिख कर पुत्र ही लिखा है। चकि प्रेमो जी ने भी इसका अनुवाद करने हुए “अनेकान्त” वर्ष १ गृह ४६० में इन्हें पुत्र ही लिख कर मेरे मन्तव्य को और प्रशस्त कर दिया है। आर० नरसिंहाचार्य जिस वादिकुमुदचन्द्र को जिनसंहिता का कलाउ व्याख्याता बतलाते हैं वही कुमुदचन्द्र मेरी नमक में उक्तके मूल कर्ता भी हैं। क्योंकि टीकाकार के परिचय में आप ने जो प्रारम्भिक श्लोक और प्रशस्ति उद्धृत किये हैं वे उओं के लिये मूलग्रंथ के हैं। अतः जिनसंहिता के मूलकर्ता तथा कलाउ व्याख्याता एक ही कुमुदचन्द्र कहने में मुझे कोई द्विवकिचाहट नहीं मालूम पड़ती। ‘कवि-चरिते’ के समादाक आगे लिखते हैं कि “देवचंद्र के ‘रामकथावतार’ (ई० सन् १७१७) से मालूम होता है कि कुमुदचन्द्र ने एक रामायण भी लिखी है। इसका समय लगभग ई० ११०० होना चाहिये।” यहाँ विचारणीय बात यह उपस्थित होती है कि आप ही के लेखानुसार शास्त्र-सार-समुच्चय के टीकाकार माघनन्दी के समय (ई० सन् १२६०) से इस वादिकुमुदचंद्र (ई० सन् ११००) का समय बहुत पीछे पड़ जाता है, जिसे मैंने ऊपर जिनसंहिता के मूलकर्ता एवं इस माघनन्दी का गुरु बतलाया है। पता नहीं कि आप ने किस प्रमाण के आधार पर उल्लिखित वादिकुमुदचन्द्र का समय ग्यारहवीं शताब्दी बतलाया है। मालूम होता है कि आप की दृष्टि में माघनन्दी के गुरु कुमुदचन्द्र और यह वादि-कुमुदचन्द्र भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं।

इस जिनसंहिता में निम्नलिखित प्रकरण हैं:—

( १ ) पूज्य-पूजकपूजकाचार्य-पूजाफल-प्रतिपादन ( २ ) त्रैवर्णिकाचार-विधि ( ३ ) सकलीकरण-विधि ( ४ ) ध्यजोरुहण-विधि ( ५ ) अङ्कुरोपपण-विधि ( ६ ) चिमानशुद्धि ( ७ ) होमविधि ( ८ ) वेदिका-विधान ( ९ ) अग्निपेक-मण्डप-विधान\* । भवन की यह प्रति शुद्ध है तथा भाषा-शैली परिमार्जित है। किन्तु अन्तिम भाग देखने से घात होता है कि यह ग्रंथ अपूर्ण है।

(१६) मन्त्र नं०—२२३

## पञ्चनमस्कार-चक्र

वर्ण—

—————

पितृव—मन्त्राग्र

मातृव—संस्तुत

शंभुवार्ह—१४ इत्य

श्रीवार्ह—८ इत्य

पञ्चम्या ५६

प्राग्भिन्न भाग—

येनाभ्यामयमग्निष्यामादायुष्याय कथम् ।

एषो मन्त्रयिषिः प्रोक्तस्तस्मै × × × × × ॥

ॐ नमो अरुणायाम् । ॐ नमो सिद्धायाम् । ॐ नमो धारिणायाम् । ॐ नमो उग्रमा  
यायाम् । ॐ नमो ऐर सध्वसायाम् ।

शास्त्रिकपौष्टिकयज्ञीकरणाय अगमोद्देशनाद्याटनत्रिहो वयस्त्तपायनेकक्रियासाधनस्य चौरारि  
भारिष्टनोपरार्गविनाशनस्य सयभ्याधिविनाशनस्य व्याघ्रादिद्विपडाकिनीभूत राक्षसपिशाचादि  
भयापहारस्य गर्गशत्रुमद्रमद्रनस्य स्वर्गापयगासाधनस्य इह लोकेऽभ्युदयायहस्य पञ्च-  
नमस्कारचक्रस्य विधानं ब्याख्यास्याम ।

× × × × × × ×

मध्यभाग (पूर्व पृष्ठ १५ पृष्ठ १२)

साधननामगर्भं लक्ष्मादिषु बाह्येऽर्थोऽकारणं प्रच्छेद्य तद्बाह्ये सानुस्वारहकार  
लक्ष्मादिभ्यामावेभ्य तरसर्ष यमविद् एत्या बाह्येऽर्थोऽकारणं लेख्य कुकुमादिभिर्मर्जे  
लिलितया एतेषु तिस्र्यनेन वेद्ययित्वा अत्रे प्रक्षिपेत् । अग्निस्तं मनम् ।

साम्यवद्विज्ञनस्य एषा विद्या दातव्या । निःशाम्यानास्तिश्वयुक्तानां घर्महे विद्यां मिरया  
दशमपुष्टधर्माणांश्च न दातव्या । कदाचिदन्ते(१) सति (१) तदा महापातकं प्रयुक्तं भवति ।

एवं पञ्चनमस्कारचक्रं समाप्तमिति ।

यह पञ्चनमस्कारचक्रं मन्त्रशास्त्र-संग्रहणी ग्रन्थ है । मन्त्र ग्रन्था का मूल “विद्यानु  
यार” नाम का ग्रन्थपूर्व कहा जाता है । अतः मन्त्र साहित्य में “नमस्कार मन्त्रकल्प”

नाम का एक ग्रंथ है और इसके कर्त्ता सिंहनन्दी कहे जाते हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में कर्त्ता भी कर्त्ता का उल्लेख नहीं है। इसलिये पता नहीं कि उक्त कल्प ही यह है या इससे भिन्न। इसका निर्णय दोनों ग्रन्थों के मिलाने से ही हो सकेगा। 'कल्प' भवन में नहीं रखने से इसके रक्षयिता के विषय में इस समय अधिक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में शान्ति, पौष्टिक, उद्यादन, पशुकरण, स्तंभन एवं मोहनादि मंत्र-शास्त्र-सम्बन्धी भिन्न भिन्न अनेक विषयों का प्रतिपादित करने की प्रवृत्तियों ने प्रतिष्ठा की है। पश्चिम पृष्ठ के पूर्व-पृष्ठ में पृथ्वी के धरन्त, मर्याद के प्रीप्प, अरराह के प्रावृद्, प्रदेश के निशिर, अर्धरात्रि के शरद्, पशुप के हेमन्त क्लिप्त कर शरद् में शान्ति, हेमन्त में पौष्टिक, वसन्त में पशुप, फिर हेमन्त और शरद् में प्राकरण, प्रीप्प में विद्वेषण, प्रावृद् में उद्यादन एवं निशिर में मारण-विधान का संकेत किया गया है।

नवम पृष्ठ के पूर्व पृष्ठ में कौन से ग्रह शरीर के किस अङ्गोपाङ्ग में कौन सी बाधा पहुँचाते हैं—इसका यों खुलासा किया है :—

सूर्य शिरोवेदना, चंद्र मुखपीड़ा, शुकपृष्ठ-बोधा, भौम उदर-शूल, बुध हृदय-व्यथा, बृहस्पति कटिपीड़ा, शनि दोनों बगलों में दर्द, राहु जङ्घावेदना तथा केतु पीरों में पीड़ा पहुँचाते हैं। इसी पृष्ठ में यह विश्कर्षण कराया गया है कि सार्यकाल में राहु और शनि की शान्ति के लिये नेमिनाथ की, सूर्य और मङ्गल के शान्त्यर्थ वासुपृष्य की, केतु की शान्ति के निमित्त पार्ष्णिनाथ की, शुक तथा चन्द्रमा की शान्ति के हेतु चंद्रप्रभ की एवं शुक्र की शान्ति के हेतु शान्तिनाथ तीर्थङ्कर की पूजा करनी चाहिये।

फिर पृष्ठ इस में प्रदोषों के दुष्परिणाम यों लिखे गये हैं :—

चंद्र और शुक से शिरःपीड़ा, बुध और बृहस्पति से हृदयशूल, शनि और राहु से उदरवेदना, सूर्य और मंगल से हृदय-रूपन, पुनः चन्द्र और शुक से जल से समुत्पन्न मौक्तिक आदि रत्न एवं सुन्दर धान्य आदि द्रव्यों का क्षय, बुध और बृहस्पति से सुवर्ण, रजाम, रत्न और चावल आदि पदार्थों की क्षति, शनि और राहु से नीलादि रत्न, तिल, मूंग, उड़द, चना एवं केदों आदि अन्न का नाश तथा सूर्य और मंगल से सूर्यकांत, लालमणि, मूंगा वगैरह द्रव्यों का क्षय होता है।

अन्यान्य कतिपय मंत्र-शास्त्रों की तरह प्रस्तुत ग्रंथ में भी कपाल, कफन, कई पशुओं की हड्डियों, रोश्रों, नररक्त, श्मशान की आग आदि अपवित्र वस्तुओं का भी प्रयोग लिखा मिलता है। हाँ इसमें विशेषता सिर्फ यही है कि मारण आदि क्रूर कर्म का विधान नहीं पाया जाता है। यंत्र-मंत्र-रचना-विधि मंत्र-साधन विधि, प्रत्येक तीर्थङ्कर के यज्ञ-यक्तियों की मंत्र-सिद्धि भी संक्षेप में इसमें प्रतिपादित की गयी है।



अन्त में यह स्पष्ट लिखा है कि इस ग्रन्थ गत भद्र शास्त्र का मर्म सम्पत्ति को ही देना चाहिये न कि नास्तिक, धर्मद्वेषी, मिथ्यादृष्टि और अपने धर्म में अविश्वास करने वालों को ।

(१७) ग्रन्थ नं०  $\frac{२२४}{६}$

## कल्याणकारक

कृती—उप्रादित्याचार्य

विषय—वेद्यक

भाषा—संस्कृत

सम्पाद—१३। इन्च

चौडाई—८। इन्च

पत्रसंख्या १५५

प्रारम्भिक भाग—

धीमत्सु रासुरजरेन्द्रकिरीटकोटि नानिक्वरश्मिनिकराचितपादपोठ ।  
 तीर्थोद्विपुजितगुर्वृषभो बभूव सात्तत्कारणतगचिनयेकबन्धु ॥ १ ॥  
 त तीर्थनाथमधिगम्य विनम्य मूर्ध्ना सन्प्रातिहायविभवादिपरीतमूर्त्तिम् ।  
 सप्रध्यातिरुदणोक्तुतमशामा पररुत्तित्यमलिल भरतेश्वराद्या ॥ २ ॥  
 प्राग्भोगभूमिषु जना जनितातिरागा कल्पद्रुमार्षितसमस्तमहेषभोगाः ।  
 दिव्य सुख समनुभूय मनुष्यभाव रगो ययु पुनरुपाष्टमुख सुपुण्या ॥ ३ ॥  
 अत्रोपपादवरमोत्तमदेवधर्मा पुण्याधिकाम्ब्वनपयत्य महायुवस्त ।  
 अन्ये परायपरमाथय एव लोक तथा मद्भयमभूद्विद वापकोपात् ॥ ४ ॥  
 देव । स्वमेव शरण शरणागतानामस्माकिमाबुलधियामिद कमभूमौ ।  
 शीततिवातद्विमवृष्टिनिपाडिताना कालकृमात्केशरानाशनतत्परणाम् ॥ ५ ॥  
 नानाविधामयभयाद्विदु क्षितानामाहारनेपत्रनिफकिमजानतां न ।  
 तस्यस्थरक्षणविधानमिदगतुराणां का वा क्रिया कथयतामथ लोकनाथ ॥ ६ ॥  
 विद्यापदेवमिति त्रिभ्यजगद्वितार्थ नूर्णा स्थिता गणधरप्रमुखप्रधाना ।  
 तस्मिन्महासर्वांसि दिपनिनादपुला पाशा ससार सरसा वरदेवदेवी ॥ ७ ॥  
 सत्तादित पुत्रपत्न्यभामयानामर्थीरधान्यलिलहालविज्ञेयशुद्ध ।  
 सदैवत सदलक्ष्म्यनुवतुण्य सा ॥ ८ ॥ कथयाम्यकार ॥ ९ ॥

दिव्यध्वनिप्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तथा गणधरोऽधिजगे समस्तम् ।  
 पश्चाद् गणाधिपनिरूपितवाक्प्रपञ्चमिष्टार्थनिर्मलधियो मुनयोऽधिजग्मुः ॥ ६ ॥  
 एवं जनान्तरनिबन्धनसिद्धमार्गाद्यायातमायतमनाकुलमर्थगाढम् ।  
 स्वायम्भुवं सकलमैव सनातनं तत्साक्षात् श्रुतं श्रुतधरैः श्रुतकेवलिभ्यः ॥ १० ॥  
 प्रोद्यजिनप्रवचनामृतसागरान्तः प्रोद्यत्तरङ्गनिस्तुताल्पसुशीकरं वा ।  
 वक्ष्यामहे सकललोकाहितैकधाम कल्याणकारकमिति प्रथितार्थयुक्तम् ॥ ११ ॥  
 नवातिवाक्पटुतया न च काञ्च्यदर्पाहैवान्त्रशास्त्रमद्भंजनहेतुना वा ।  
 किन्तु स्वकीयतप इत्यवधार्य वर्धमाचार्यमार्गमधिगम्य विधास्यते तत् ॥ १२ ॥  
 स्वाध्यायमाहुरपरे तपसां हि मूलमन्ये च वैद्यवरवत्सलताप्रधानम् ।  
 तस्मात्तपश्चरणमेव मया प्रयात्नादारभ्यते स्वपरसौख्यविधायि सम्यक् ॥ १३ ॥  
 अत्रापि सन्ति बहवः कुटिलस्वभावा दुर्दृष्टयो द्विरसनाः कुमतिप्रयुक्ताः ।  
 द्विद्रामिलापनिरताः परवाधकाश्च घोरोरगौरुपमिनाः पुरुषार्थमास्ते ॥ १४ ॥  
 केचित्पुनः स्वगुरुमान्यगुणाः परेषां दुष्यन्त्यशेषविदुषां न हि तत्र दोषः ।  
 पापात्मनां प्रकृतिरेव परेष्वसूयापैशुन्यवाक्पुरुषलक्षणलक्षितान्ता ॥ १५ ॥  
 केचिद्विचाररहिताः प्रथितप्रतापाः साक्षात्पिशाचसदृशाः प्रचरन्ति लोके ।  
 तैः किं यथा प्रकृतमेव मया प्रयोज्यं मात्सर्यमार्थगुणवर्ष्यमितिप्रसिद्धम् ॥ १६ ॥  
 एवं विचार्य शिथिलीकृतमत्सरोऽहं शास्त्रं यथाधिकृतमेवमुदाहरिष्ये ।  
 सर्वज्ञवक्त्रनिस्तृतं गणदेवलज्यं पश्चात्प्रजापतिपरं परयावतीर्णम् ॥ १७ ॥  
 विद्योति सत्प्रकटकेवललोचनाख्या तस्यां यदेतदुपपन्नमुदारशास्त्रम् ।  
 दैद्यं वदन्ति पदशास्त्रविशेषणज्ञा एतद्विदन्त्यथ पठन्ति च तेषां वैद्याः ॥ १८ ॥  
 वेदोऽयमित्यपि च चोद्विचारलाभस्तत्रार्थसूचकवचः खलु धातुमेदात् ।  
 आयुश्च तेन सह पूर्वनिबद्धमुद्यच्छास्त्राभिधानमपरं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥  
 एवं विद्यस्य भुवनैकहिताधिकेद्यद्वेद्यस्य भाजनतया प्रविकल्पिता ये ।  
 तानत्र साधुगुणलक्षणसाम्यरूपान् वक्ष्यामहे जिनपतिप्रतिपन्नमार्गान् ॥ २० ॥

x x x x x

मध्यभाग (परपृष्ठ ५६ पंक्ति १६ श्लोक १ से)

जिनमनघमनन्तज्ञाननेत्राभिरामं त्रिभुवनसुखसम्पत्तिमत्पदरेण ।  
 प्रतिदिनमतिमत्तयानम्य वक्ष्याम्युदारध्वजगतमुपदेशख्यातशुद्धाभिधानम् ॥ १ ॥  
 वृषणविधिविबृद्धिपोकदोषकमेण प्रकटतरचिकित्सामेहोत्पन्नशोकी ।  
 द्वितरन्तु विधियुक्तां चोपदेशाभिधाने निखिलविषमशोकेष्वेवमेव प्रयोगः ॥ २ ॥

स भवति खलु शोभो द्विप्रकारो नराणामश्रयधनियनोऽन्य' सयंदेहाद्भयश्च ।  
 सकलतनुगतो या मध्यदेहाकुम्भदेहे श्वयथुरतिगुरुष्टक्रियुभेतराद् ॥३॥  
 श्वयथुरतिविशालो विद्राघ कुम्भरूपो मुखरहिततया तु मगध सप्रदिष्टा ।  
 गुणयुतपिडकाट्यां शोभ'काजानुष्णैरुपहननयिष्टोपैहसाधनैस्साधयेत्तम् ॥५॥  
 ज्वरयुतपरिदाहश्यासत्वृष्णातिसारप्रकृत्बलनिहीनारोचभेदाशरयुत् ।  
 यमसद्वनमवाप्नोत्यायु शून्याङ्गयष्टियंमपुशश्चदून दृष्टकामो मनुष्य' ॥२॥

X

X

X

+

प्रथिम भाग :—

धीरिष्णुपात्रपरमैश्वरमौलिमाला सलाहितादिधनुगल सकलागमह ।  
 आलापनीयगुणमुप्रतसन्मुनीन्द्र' धीनन्दिनन्दितगुरुगुं'कर्जिनोऽहम् ॥३१॥  
 तस्याश्चया विविधभेजदानसिद्धये सद्द्वैय' सलतप ररिपूरणार्थम् ।  
 शास्त्र दृत जिनमनोदुष्टमेतदुच्यन् कल्याणकारकमिति प्रथितं धरयाम् ॥३२॥  
 इत्येतदुत्तरमनुत्त'मुत्तमर्हं विस्तीर्णमस्तु युतमस्यसमस्यवेरा' ।  
 प्राग्भाषितं जिनपरैरधुना मुनीन्द्रोप्रादित्यपयिडतमहागुणमि प्रणीत' ॥३३॥  
 सर्वाधोधिकभागधोयत्रिलसद्भाषाविशेषोऽञ्चलन्  
 प्राणापायमहागमाद्यरितय सगृह्य रुत्तेपत' ।  
 उपादित्यगुरुगुं'गुं'गणणीकृद्भासि सौख्यास्पदम्

शास्त्र ससृष्टभाषया रचितयान् इत्येव भेदस्तयो ॥३४॥

सालंकार सजग्द् धराणसुखमयप्रार्थित स्वार्'विद्धि'

प्राणाद्यु' सन्वधीर्थं प्रकृत्बलकर प्राणिना स्वास्थ्येहेतु ।

विध्युद्भूत विचारममिति कुशला शास्त्रमेतद्यथावन्

कल्याणारूपं जिनेन्द्रे विरचितमधिगम्यायु सौख्य लभते ॥३५॥

अल्याद्दं द्विसहस्रकैरपि तथा शीतोत्तरेर्षुत्ते (१)

सचरितैरिक्षापिकमहावृत्तेजिनेन्द्रोदितै

प्रोक्तं शास्त्रमिद् प्रमाणनयनिक्षेपैर्विद्यार्याथर्वत ।

स्वेषाच्छरीरिचन्द्रतारकमलं सौख्यास्पदं प्राणिनाम् ॥३६॥

इति जिनब्रह्मनिर्गतसुगाह्यमहाभ्युनिधे' सकलपर्यार्यरिसृष्टततरंगकुलाकुलत ।

उभयमवाप्यसाधनत उद्भवमासुरतो निरुत्तमिदं हि शीकरनिभ जगदेकहितम् ॥ ३७॥

इत्युप्रादित्याचार्यहेतुकल्याणकौस्तुभे नानाविधकल्याणकल्याणसिद्धये कल्याणिकार पञ्चमो  
 ऽध्यायोऽप्यादित' पञ्चविंशपरिक्रमेद् ।

X

X

X

X

X

X

शालाक्यं पूज्यपाद्प्रकटितमधिकं शल्यतन्त्रं च पात्र-  
स्वामिप्रोकं विषोमप्रहशमनविधिः सिद्धसेनैः प्रसिद्धैः ।  
काये या सा चिकित्सा दशरथगुणभिर्मेघनादैः शिशूनाम्  
वेद्यं वृष्यञ्च दिव्यामृतमपि कथितं सिद्धनादैर्मुनीन्द्रैः ॥  
अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तमद्रेः प्रोकं स्वयिस्तरवचोविभवैर्विशोपात् ।  
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्या कल्याणकारकमशेषपर्ययुक्तम् ।  
वेङ्केशत्रिकलिङ्गदेशजननप्रस्तुत्यसानूकटः  
प्रोद्यद्ब्रह्मलतायिताननिरतैः सिद्धैश्च विद्यापरीः ।  
सर्वैर्मान्दरकन्दरोपमगुहाचैत्यालयालङ्कृते  
रभ्ये रामगिराविदं विरचितं शास्त्रं हितं प्राणिनाम् ॥४

इस वैद्यक ग्रन्थ कल्याणकारक के रचयिता आचार्य उग्रदित्य जी हैं। इस के प्रशस्तिगत ५१ वें श्लोक में इन्होंने ने अपने गुरु को श्रीनन्दि नाम से याद किया है। पता नहीं चलता कि यह श्रीनन्दि जी कौन हैं। हाँ श्रवणवेल्लोलस्य जिलालेख नं० ४६३ ( शक १०४७ ) में एक श्रीनन्दि का उल्लेख मिलता है अवश्य, मगर इनके शिष्य उग्रदित्य न होकर सिद्धनन्दि हैं। बल्कि इनकी शिष्यपरम्परा में उग्रदित्य का नाम कहीं उपलब्ध नहीं होता।

प्रायश्चित्तचूलिका एवं योगसार के कर्ता गुजरात के गुरु का नाम भी श्रीनन्दि है। किन्तु यहाँ भी मालूम नहीं होता कि उग्रदित्य के गुरु यही हैं या दूसरे। भास्कर भाग १ किरण ४ पृष्ठ ७८ में प्रकाशित नन्दिसंग्रह की पट्टाघली में भी एक श्रीनन्दि का नाम आया है इसमें इनका समय वि० सं० ७४६ अर्थात् ८ वीं शताब्दी बतलाया गया है। वहाँ इन्होंने उज्जैनी के पट्टाधीश लिखा है। इसी प्रकार श्रीचन्द्र के ( वि० सं० १०७० ) गुरु भी श्रीनन्दि कहे गये हैं। आचार्य वसुनन्दि ने अपने श्रावकाचार में एक श्रीनन्दि का उल्लेख किया है जो इनके प्रगुरु थे। अनुमानतः इनका समय १३ वीं शताब्दी होता है। क्योंकि इनके प्रशिष्य वसुनन्दि १२ वीं शताब्दी के हैं। आचार्य उग्रदित्यजी अपने गुरु श्रीनन्दि के नामोल्लेख के साथ साथ इनके गण गच्छादि की भी चर्चा कर गये होते तो आपके चारे में बहुत कुछ ऊहापोह करने की गुंजायश होती पर ऐसा नहीं होने से हमारे उग्रदित्य जी के श्रीनन्दि यों ही सन्देहास्पद बने रहते हैं। इन्हीं साधनों के अभाव से उग्रदित्य जी के विषय में भी कुछ नहीं लिखा जा सकता।

\* ये अन्तिम तीन श्लोक 'भवन' की प्रति में नहीं हैं।

स भवति एतु शोभो द्विप्रकारो नराणामवयवनिषयोऽप्य' सप्रदेहोऽथथ ॥  
 सकलतनुगतो वा मध्यदेहादुपदेहे श्वययुपतिस्तुष्टयष्टिष्टुष्टुभेतराङ्ग ॥३॥  
 श्वययुपतिग्गाले विद्राधि कुम्भरूपे मुखरहिततया तु प्रश्वय सम्प्रदिष्ट ॥  
 मुखयुतपिटकाख्या शोकात्तानुकरैर्यदहनविशेषैरसाधनैस्साधयेत्सम् ॥५॥  
 ज्वरयुतपरिदाहश्चासृष्णातिसारयकटबलविहीनारोवेणैकारयुत' ।  
 यमसद्नमवाप्नोत्याशु शून्याङ्ग्यष्टियंमनुत्तहृत्वनूनं दृष्टकामो मनुष्य' ॥४॥  
 × × × +

अन्तिम भाग —

धोरिष्णुराज्ञपरमेश्वरमौलिमाला सलालितादिप्रयुगल' सकलागमः ।  
 आलापनीयगुणानुग्रहसम्मुनीन्द्र' धीनन्दिनन्दितगुणुर्गुणुर्जिनोऽहम् ॥१॥  
 तस्याङ्गया विविधभेजज्ञानसिद्ध्यै सदैव्य'सलतप'परिपूरणार्थम् ।  
 शास्त्रं हृत जिनमनोदृष्टमैतदुद्यन् कल्याणकारकमिति प्रथित घरायम् ॥२॥  
 इत्येतदुत्तरमनुत्त'मुत्तमर्ष'विस्तीर्णमस्तु युतमस्वसमस्तदोरा' ।  
 प्राग्भाषित' जिनररैरधुना मुनीन्द्रोप्रादित्यपगिद्धनमहागुणमि' प्रणीत' ॥३॥  
 सर्गार्थाधिकभागधीयगिलसद्भाषाविशेषोऽप्यलत्  
 प्राणापायमहागमापरितय सगृथ रुचेरत' ।

उप्रादित्यगुणुर्गुणुर्गणैरुद्भासि सौख्यापदम्

शास्त्र ससृष्टभाषया रवितयान् इत्येव भेदस्तयो ॥४॥

सालंकार सशब्द' अणसुखमथपार्थित रगा' रिद्धि'

प्राणायु' सत्वशेधं प्रकटबलकर प्राणिना स्वास्थ्यहेतु ।

विध्युद्भूतं विचारसममिति कुजाला शास्त्रमेतद्यथायन्

कल्याणाल्य विनेन्द्रे विरचितमधिगम्याशु सौख्य' एमले ॥५॥

अलार्द्धं द्विसहस्रैरपि तथा शीतोत्तरैर्दृष्टै' (१)

सचरितैरिद्धाधिकप्रदावृत्तैर्जिनेन्द्रोदितै

प्रोक्तं शास्त्रमिदं प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचारार्थवत् ।

स्पेयाच्छीरविचन्द्रतारकमल सौख्यास्पद' प्राणिनाम् ॥६॥

इति जिनवक्त्रनिर्गतमुगाक्षमहाभ्युनिषे' सकलपदार्थविस्तृततरंगकुञ्जाकुण्डनः ।

उभयमवार्थसाधनत उद्भवमाशुरतो निवृत्तमिदं हि शंकरनिभ जगदेकहितम् ॥७॥

इत्युप्रादित्याचार्यवृत्तकल्याणकोत्तर' नानाविधकल्पकल्पनासिद्धये कत्याधिकारः पञ्चमो

ऽप्यायोऽप्यादित' पञ्चविंशपरिच्छेद' ।

× × × × × ×

धर्मावलम्बी होना एवं अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहना ये दोनों उग्रप्रदित्याचार्य के द्वारा कल्याणकारक में वर्णित विष्णुराज परमेश्वर के फलचूरि राजवंशीय सिद्ध करने में अवश्य सहायक हैं। हाँ, इस समय में सामने मध्यप्रान्त में शासन करनेवाले मिश्र भिद्र राजाओं की वंश-तालिका नहीं रहने के कारण विष्णुराज परमेश्वर को निश्चित रूप से फलचूरि राजवंशीय लिखने से विरत होना पड़ता है।

उग्रप्रदित्य जी ने अपने इस कल्याणकारक में निम्नलिखित आचार्यों के नाम लिये हैं :—

(१) पूज्यपाद (२) पात्रस्वामी संभवतः पात्रकेशरी) (३) सिद्धसेन (४) दशरथ गुरु\* (५) मेघनाद (६) सिंहनाद (७) समन्तभद्र। इनके अतिरिक्त अपने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयोगों में यज्ञ-तत्र निम्नलिखित आचार्यों के दृष्टान्तरूप से वैद्यक-सम्बन्धी मत दर्साया है :—

(१) श्रुतकीर्त्ति (२) कुमारसेन (३) घोरसेन (४) जटाचार्य। इन में पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तभद्र, श्रुतकीर्त्ति, कुमारसेन, घोरसेन, जटाचार्य ये प्रसिद्ध आचार्यों में हैं। पात्रस्वामी प्रायः प्रख्यात पात्रकेशरी हैं। अब रहे उल्लिखित मेघनाद एवं सिंहनाद। ये नाम तो मेरे लिये अपरिचित से ज्ञात होते हैं।

जैनवैद्यक शास्त्र बारहवें प्राणावायुपूर्व से प्रादुर्भूत माना जाता है। अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अन्यान्य वैद्यशास्त्र के मर्मज्ञ पूर्व जैनाचार्यों के वैद्यक-ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही प्रणीत हुआ है। वैदिक मतावलम्बी विद्वानों ने वैद्यशब्द की निष्पत्ति वेद से की है, पर उग्रप्रदित्य जी केवलज्ञानरूपी विद्या से मानते हैं यह एक विशेषता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम जो कल्याणकारक रखा है वह वैद्यक शास्त्र के लोककल्याणसम्पादक इस अनुत्तम ध्येय का विवेचन करके ही रखा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आप जैनवैद्यक शास्त्र की प्राचीनता, वैद्यकशास्त्र की व्युत्पत्ति, इसका उद्देश, चिकित्सा का प्रयोजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डालने से विरत नहीं हुए हैं। प्रशस्तिगत श्लोक से ज्ञात होता है कि आचार्य पूज्यपाद जी ने शालाक्य, शिरोभेदन आदि, पात्रस्वामी आचार्य ने शल्यतन्त्र, आचार्य सिद्धसेन जी ने विष एवं ग्रह-शान्ति-विधान, आचार्य दशरथ गुरुजी और मेघनाद जी ने शारीरिक चिकित्सा, सिंहनाद जी ने महारोग-शान्ति-विधान एवं आचार्य समन्तभद्र जी ने अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्रयायन किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त औषधकल्प, सिद्धान्त रसायनकल्प, भिषकप्रकाश, जगत्सुन्दरी, कनक दीपक, रससार, सिद्धनागार्जुनकल्प, रसतन्त्र तथा मेरुतन्त्र आदि कई संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों

\* सेनगण के आचार्य वीरसेन के दिव्य एक दशरथ हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण १,

उल्लिखित ५१ वें श्लोक से यह भी सिद्ध होता है कि उग्रदित्य के गुरु धीमन्दि ई  
का राजा विष्णुराज परमेश्वर बड़े सम्मान की दृष्टि में देखो थे। पर बात नहीं किय  
विष्णुराज कौन है।

उग्रदित्य जी ने “वेङ्गीगणिकलिङ्गदेशजननप्रमुत्पत्तानुक्त” इत्यादि श्लोक में  
यह बरसाया है कि त्रिकलिङ्ग देश में राम गिरि पर्वत के ऊपर त्रिनमन्दिर में समस्त  
प्राणियों के हितार्थ यह ग्रन्थ रचा गया। ‘हिन्दोविश्वकोष’ के विश्व सम्पादक के मत में  
“त्रिकलिङ्ग जनपद (देग) मद्राज के उत्तर पलिकट नामक स्थान से लेकर उत्तर गंजाम  
और पश्चिम में त्रिपदि, बेल्हारि, करनूड, चिन्न तथा चन्ना तक विलसित है”। परन्तु  
श्रीयुगल नन्दूलाल दे, एम० ए० बी० एल० ध्यानी “The Geographical Dictionary  
of Ancient and Mediaeval India” नामक कोष में मध्य भारत के त्रिकलिङ्ग  
मानते हैं। मुझे वे महोदय का मन ही व्यक्ति-युक्त जँवना है। इसका कारण यह कि  
विश्वकोष के सम्पादक श्रीयुगल नन्दूलाल दे वसु और उक्त भौगोलिक कोष के सम्पादक श्रीयुगल  
नन्दूलाल दे दोनों मद्राज में मध्य प्रांतीय नागपुर से २५ मील उत्तर विद्यमान रामदेक  
के ही प्रसिद्ध प्राचीन रामगिरि माना है। हाँ हिन्दी विश्वकोष में मैसूर राज्य के  
लूड जिन्दा में भी एक रामगिरि लिखा मिलता है अवश्य, मगर यह रामगिरि हिन्दी विश्व  
कोष के मध्य सम्पादक के द्वारा प्रतिपादित त्रिकलिङ्ग देग के अन्तर्गत नहीं आता। इस  
लिये इन उल्लिखित प्रमाणों के आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि कल्याण  
कारक के कर्ता उग्रदित्याचार्य के द्वारा निर्दिष्ट त्रिकलिङ्ग वर्तमान मध्य-प्रान्त एवं तदन्तर्गत  
रामगिरि, नागपुर से २५ मील उत्तर अवस्थित रामदेक ही है। आज भी यहाँ पर पहाड़ी  
के नीचे कुछ प्राचीन दिगम्बर जैनमन्दिर मौजूद हैं। दिगम्बर जैन प्राचीन काल से ही  
इस स्थान के एक पवित्र क्षेत्र मानते आ रहे हैं। बहुत कुछ संभव है कि उग्रदित्य जी  
ने इसी सुसिद्ध प्राचीन क्षेत्र को अपने ग्रन्थ प्रणयन का एक प्रशान्त एवं पुनीत निवासोप-  
युक्त स्थान समझा है।

कभी कभी यह बात भी ध्यान में आ जाती है कि उग्रदित्यजी के गुरु धीमन्दि के एत  
भक्त उपर्युक्त विष्णुराज परमेश्वर शायद कलचूरि राजवंश के हों। क्योंकि यह कलचूरि  
राजवंश मध्यप्रान्त का सबसे बड़ा राजवंश था और इसका प्राबल्य ८ वीं ६ मी शताब्दी  
में बहुत बड़ा बढ़ा था। एक समय यह साम्राज्य बंगाल से गुजरात एवं बनारस से  
कर्नाटक तक फैल गया था। किन्तु बहुत दिनों तक इसका अस्तित्व नहीं रह सका।  
कलचूरि नरेशों में बहुतेरे नरेश जैनधर्म के प्रशान्त पृथपोषक थे। साथ ही साथ कितने  
ही कलचूरि शासकों ने अपने को त्रिकलिङ्गाधिपति कहा है। कलचूरि नरेशों का जैन

धर्मावलम्बी होना एवं अपने को विकलिङ्गाधिपति कहना ये दोनों उपादित्याचार्य के द्वारा कल्याणकारक में वर्णित विष्णुराज परमेश्वर के कलचूरि राजवंशीय सिद्ध करने में अवश्य सहायक हैं। हाँ, इस समय में सामने मध्यप्रान्त में शासन करनेवाले मित्र मित्र राजाओं की वंश-तालिका नहीं रहने के कारण विष्णुराज परमेश्वर को निश्चित रूप से कलचूरि राजवंशीय लिखने से विरत होना पड़ता है।

उपादित्य जी ने अपने इस कल्याणकारक में निम्नलिखित आचार्यों के नाम लिये हैं :—

(१) पूज्यपाद (२) पात्रस्वामी संभवतः पात्रकेशरी) (३) सिद्धसेन (४) दशरथ गुरुः (५) मेघनाद (६) सिंहनाद (७) समन्तमद्र। इनके अतिरिक्त अपने इस ग्रन्थ के अन्तर्गत प्रयोगों में यत्र-तत्र निम्नलिखित आचार्यों के दृष्टान्तरूप से वैद्यक-सम्बन्धी मत दर्साया है :—

(१) श्रुतकीर्ति (२) कुमारसेन (३) वीरसेन (४) जटाचार्य। इन में पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तमद्र, श्रुतकीर्ति, कुमारसेन, वीरसेन, जटाचार्य ये प्रसिद्ध आचार्यों में हैं। पात्रस्वामी प्रायः प्रख्यात पात्रकेशरी हैं। अब रहे उल्लिखित मेघनाद एवं सिंहनाद। ये नाम तो मेरे लिये अपरिचित से ज्ञात होते हैं।

जैनवैद्यक शास्त्र बारहवें प्राणावायुपूर्व से प्रादुर्भूत माना जाता है। अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ अन्यान्य वैद्यशास्त्र के मर्मज्ञ पूर्व जैनाचार्यों के वैद्यक-ग्रन्थों का आश्रय लेकर ही प्रणीत हुआ है। वैदिक मतावलम्बी विद्वानों ने वैद्यशब्द की निष्पत्ति वेद से की है, पर उपादित्य जी केवलज्ञानरूपी विद्या से मानते हैं यह एक विशेषता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम जो कल्याणकारक रक्खा है वह वैद्यक शास्त्र के लोककल्याणसम्पादक इस अनुत्तम ध्येय का विवेचन करके ही रक्खा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में आप जैनवैद्यक शास्त्र की प्राचीनता, वैद्यकशास्त्र की व्युत्पत्ति, इसका उद्देश, चिकित्सा का प्रयोजन आदि विषयों पर भी प्रकाश डालने से विरत नहीं हुए हैं। प्रशस्तिगत श्लोक से ज्ञात होता है कि आचार्य पूज्यपाद जी ने शालाक्य, शिरोमेदन आदि, पात्रस्वामी आचार्य ने शल्यतन्त्र, आचार्य सिद्धसेन जी ने विष एवं ग्रह-शान्ति-विधान, आचार्य दशरथ गुरुजी और मेघनाद जी ने शारीरिक चिकित्सा, सिंहनाद जी ने महारोग-शान्ति-विधान एवं आचार्य समन्तमद्र जी ने अष्टाङ्ग आयुर्वेद का प्रणयन किया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त औषधरूप, सिद्धान्त रसायनकल्प, भिषकप्रकाश, जगत्सुन्दरी, कनक दीपक, रससार, सिद्धनागार्जुनकल्प, रसतन्त्र तथा मेरुतन्त्र आदि कई संस्कृत वैद्यक ग्रन्थों

\* सेनगण के आचार्य वीरसेन के शिष्य एक दशरथ हुए हैं। (भास्कर भाग १, किरण १,



का उल्लेख एवं कुछ ग्रन्थों का अंश यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। किन्तु खेद की बात है इन समुग्ज्वल जैनसाहित्य रत्नों की खोज एवं प्रकाशन की ओर अभी तक जैनसमाज का ध्यान नहीं गया है। कन्नड साहित्य में भी सोमनाथ के कल्याणकारक, पार्ष्णदेव की सुकरयोगरत्नावलि, चालुक्यवंशीय कीर्तिचर्मा के गोवैद्य, मंगराज के खगेन्द्रमणिवर्णन, अभिनवचन्द्र के हयशास्त्र, देवेन्द्र मुनि की बालप्रह-चिकित्सा, अमृतनन्दि मुनि का अक्षरादि वैद्यनिघण्टु एवं श्रीधरदेव के वैद्यामृत के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़े हर्ष से यह कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है कि उक्त इन ग्रन्थों में से आचार्य उप्रादित्य हृत यह कल्याणकारक सोलापुर के जिनवाणी के अनन्यमत्त सेठ रावजी सखाराम दोशी जी के सदुद्योग से एवं खगेन्द्रमणिवर्णन मद्रास के विश्वविद्यालय के ग्रन्थप्रकाशन विभाग से प्रकाशित हो रहे हैं।

साधनाभार से उप्रादित्य के समय का पता लगाना असम्भव सा हो रहा है। इनके गुरु श्रीनन्दि और विष्णुराज परमेश्वर के विषय में कुछ पता लगने में इनके समय निर्णय करने में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। हाँ, धृतकीर्ति और कुमार सेन का नाम जो आपने प्रशस्ति में लिया है सो उनका भी कुछ पता नहीं है—हर्ष! इनके गण-गच्छ पर गुरुवरम्परा की बात जरा भी श्रात हो जाती तो भी उप्रादित्य जी के समय सम्बन्धी प्रश्न के थोड़ा बहुत हल हो जाने की सम्भावना थी। क्योंकि एक नाम के अनेक जैनाचार्य हो गये हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि ये अमुक धृतकीर्ति आदि ही हैं। धरणवेल्लोपल के निम्न लिखित शिलालेखों में धृतकीर्ति के नाम कई जगह भ्रान्त हैं। जैसे ४०, १०५ और १०८ में। इनका समय क्रमशः शकसम्बन् १०८५, १३२० और १३११ है। इसी प्रकार कुमारसेन का नाम ५४ एवं ४२१ के शिलालेखों में आता है और इनका समय भी क्रमशः शकसम्बन् १०५० तथा १०४७ है। उल्लिखित और आचार्यों के १०वीं शताब्दी के पहले के होने के कारण उप्रादित्य के समयनिर्णायक समस्यामें उनका नाम नहीं लेकर हर्षों को बाद के आचार्यों का नाम लेना उचित नमकरा गया। उल्लिखित शिलालेखानुसृत कुमारसेन का काल क्रमशः ११८५ अर्थात् १२वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इसी प्रकार उपर्युक्त शिलालेखों के आधार से शकसम्बन् १०८५ में अश्विन प्रथम धृतकीर्ति का समय विश्रम सम्बन् १२२० अर्थात् १३वीं शताब्दी एवं शकसम्बन्

७ भारतभ्रमण १ विभाग ४ पृष्ठ १०८ में प्रकाशित काव्यालय की पहावली में भी दो कुमारसेन के नाम आये हैं; पर इनके समय का उल्लेख उद्योग नहीं है।

सैन्यालय की पहावली से ज्ञान होता है कि इन गुरु में भी एक कुमारसेन हुए हैं। (भास्कर भाग १, दिग्ग २-१ पृष्ठ ३१)

१३२० और १३५५ में उद्धृत द्वितीय श्रुतकीर्ति का समय विक्रम संम्वत् १४५५ तथा १४६० अर्थात् १५ वीं शताब्दी सिद्ध होता है। क्योंकि वि० सं० १२२० के श्रुतकीर्ति का अस्तित्व वि० सं० १४६० में कायम रहना असम्भव समझ कर ही प्रथम और द्वितीय दो श्रुतकीर्ति सिद्ध करने पड़े हैं। भास्कर भाग १ किरण ४, पृष्ठ ७२ में प्रकाशित नन्दी-संघ की पट्टावली में भी एक श्रुतकीर्तिका नाम आया है। साथ ही साथ इसमें इनका समय वि० सं० १०७२ अङ्कित है और यह श्रुतकीर्ति भेलसा (C. P.) के पट्टाधीश बतलाये गये हैं। तैर उप्रादित्यजी के समय-निर्णय के लिये जो जो साधन मेरुद्विगोचर हुए उन्हें पाठकों के समक्ष मैंने उपस्थित कर दिया ताकि इनके समय निर्धारित करने में विद्वानों को सहायता मिले। संभव है कि इस ग्रन्थ की आद्योपान्त आलोचना करने से कुछ साधन मिल जाय। क्योंकि ग्रन्थों के परिचय लिखने में मुझे प्रत्येक ग्रन्थ का ग्रामूलाग्र अथलोकन करने का अवकाश नहीं मिलता।

जहाँतक मैं देख पाया हूँ इस ग्रन्थ की माया एवं रचनाशैली मुझे परिष्कृत द्वात हुई है।

इस कल्याणकारक ग्रन्थ में निम्नलिखित प्रकरण हैं:—

- (१) स्वास्थ्य-संरक्षण (२) गर्भोत्पत्तिविचार (३) स्वास्थ्यरक्षाधिकार-सूत्रवर्णन  
 (४) धान्यादिगुणागुणविचार (५) अन्नपानविधि-वर्णन (६) रसायनविधि (७) व्याधिसमुद्देश  
 (८) वातव्याधि-चिकित्सा (९) पित्तव्याधि-चिकित्सा (१०) श्लेष्मव्याधिचिकित्सा  
 (११-१२) महाव्याधिचिकित्सा (१३-१४-१५-१६-१७) क्षुद्ररोग-चिकित्सा (१८) बालग्रह-  
 भूतमन्त्राधिकार (१९) सर्पविषचिकित्सा (२०) शास्त्रसंग्रह-तन्त्रयुक्ति (२१) कर्म-  
 चिकित्सा (२२) भैषज्यकर्मोपद्रवचिकित्सा (२३) सर्वोपधकर्मव्याप-चिकित्सा (२४)  
 रसरसायनसिद्धयधिकार (२५) नानाविधरुग्णाधिकार।

इस ग्रन्थ की श्लोक-संख्या पाँच हजार बतलायी जाती है।



(१८) ग्रन्थ नं० २२५  
ख

## जिनसंहिता

कथा—एकसंग्रह भ ररक

विषय—संहिता (प्रतिष्ठा)

भाषा—संस्कृत

सम्पाद—१४ इञ्च

चौडाई—८॥ इञ्च

पत्रसंख्या ८८

प्रारम्भिक-भाग—

मंगलं भगवानर्हमंगलं भगवान् जिनः ।  
 मंगलं प्रथमाचार्यो मंगलं वृषभेश्वरः ॥१॥  
 विद्वानं विमलं यस्य भासते विश्वगोचरम् ।  
 नमस्तस्मै जिनेन्द्राय सुरेन्द्राभ्यर्चिताम्प्रये ॥ ॥  
 यन्वित्वा च गण्णाधीश श्रुतस्कन्धमुपास्य च ।  
 संप्रदीष्यामि मन्त्रानां बोधाय जिनसंहिताम् ॥३॥  
 शास्त्रावतारसम्बन्धं तत्रादौ तावदुच्यते ।  
 श्रेयोऽर्थिनं समाधाय चेतः शृणुत धीधना ॥४॥  
 इत्यनुश्रूयते धीरः पुरा टीकत्रयीगुरु ।  
 विपुलाद्री सभां दिव्यामभ्युवास कदाचन ॥५॥  
 तत्रासोनं तमप्येत्य मगधेन्द्रः कृताञ्जलिः ।  
 त्रिपरीत्य समभ्यर्चयं स्तुत्वा नत्वा च पूजयम् ६॥  
 सत्तोऽप्येत्य गण्णाधीशं गौतमं मुनिपुंगवम् ।  
 नत्वा सप्रथय धीमान्प्राज्ञीजिनसंहिताम् ॥७॥  
 भगवान् गौतमस्वामी मागधं प्रत्यवबुधुपन् ॥८॥ (१)  
 ततः प्रभृत्यगिच्छिन्नगुरुदर्वकमागता ।  
 सेयं मयाधुना साधु संक्षेपेण प्रकाशयते ॥९॥  
 मागधप्रश्नमुद्दिश्य गौतम प्रत्यभाषत ।  
 इदानीमनुसन्धाय प्रबन्धोऽयं निरूप्यते ॥१०॥

अध्या-भाग ( पृष्ठ ३८ पंक्ति १ श्लोक १ )

अथ मर्त्येषु चक्ष्यामि शृणु तदुपामन्वत्तमम् ।  
 यन्पृष्टमधुनाधीते स्वयायमरस्येदिना ॥१॥  
 भस्मिन्नपस्तरे राजन् पृजादायादिचक्रिणा ।  
 प्रामभेदेषु कर्त्तव्यं त्रिनद्यामेतिभाषिते ॥२॥  
 कीदृशी लक्षणं तस्य प्रामस्येति युमुन्मुना ।  
 गृष्टः प्रसंगनोऽद्योन्वृणीन्द्रो प्रामन्वत्तमम् ॥३॥  
 तत्काग एष गृष्टं तद्भवनापि युमुन्मुना ।  
 ततस्तु लक्षणं तस्य मन्त्रेणैव निगद्यते ॥४॥  
 प्रामः स्वान्नद्यथा प्रामः पुरं गेष्ट्य कर्ष्यम् ॥५॥  
 संवाहः पत्तनं द्रोणं मठं घं (?) घोष इत्यपि ॥६॥  
 प्रामो वृष्टिः परितितिः कुलं मन्वात इत्यपि ।  
 स्यात्पुचितं.....तन् ॥६॥  
 तद्देशे राजधानी स्यात्पुत्रं मर्त्येष्वगोचरितम् ।  
 मध्ये जनपदं कलुष्या दुर्गमुत्तंगमोपुरम् ॥७॥  
 गिरिनद्यागतं मठं कर्ष्यं पर्वतागृतम् ।  
 मन्वाहनामधेयं स्यात्पुत्रं परिकल्पितः ॥८॥  
 पत्तनं तन्ममुद्रान्ते पत्रोभिस्य (?) तीर्थने ।  
 द्रोणानामवगन्तव्यो नदीयारिधिष्वेष्टितः ॥९॥  
 मठं घं (?) तद्वाचयेत्तु प्रामपंचतीवृताम् (?) ।  
 आश्रये घोषे आभीरजनानामभिलष्यते ॥१०॥  
 × × ×

अन्तिम-भाग :—

पादोत्सेधोष्टमात्रं स्यात्कुम्भमण्ड्यादिसंयुतः ।  
 पातिकान्ताधयः कल्पस्तेषां नाहः शरद्भुक्तः ॥११॥  
 उत्तरं त्रियवोत्सेधधायने यव उच्छ्रयः ।  
 मात्रा भर्तृ हता याः स्युः कपोताधय उच्छ्रयः ॥१६॥  
 यवो ह्यो निम्नउत्सेधप...टं त्रियवोच्छ्रयम् ।  
 प्रत्युत्सेधोद्धं मात्रः स्याद्द्वियवः पट्टिकोच्छ्रयः ॥१७॥

कम्पोयवद्वयोत्सेध उत्तराद्ये कदाचि ।  
 आसैराणिमि स्व विष्टमेतत्सुखं • येन् ॥७१॥  
 आयासाणिपु तेध्वन्नविस्तारोऽर्कयवो भवेन् ।  
 अणद्विद्वेतेदि भूसम्मिने ॥७२॥  
 कोणेष्वयसपट्टेध्र येत्सुद्वे यथा ।  
 भूमिरूपं स्त्रियोरूपं विलु भद्रान्तरे भवेन् ॥७३॥  
 उपरि फलकान्यस्य रथस्युर्गिरन्तरम् ।  
 समं बुभुवक येन घन पश्चादपि स्थलम् ॥७४॥  
 नाटकस्थलतुल्यस्तत्पार्श्वमित्यच्छयो भवेन् ।  
 तद्विस्तिस्थलमिच्छि व यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥७५॥  
 समद्रो वा कल्पोऽथ रथो भवेत् ।  
 वासोऽस्मिन्पञ्चताल स्यादुक्तं शशापितोच्छ्रये ॥७६॥

× × - ×

जिनसंहिता (पतिष्ठापाठ) की इस भवन की प्रति में प्रशस्ति न होने की वजह से इसके प्रयोक्ता भट्टारक एकसन्धि के सम्बन्ध में सर्वथा मौनधारण करना पड़ रहा है। इधर उधर टटोलने से भी किसी उल्लेखनीय बातों का पता लगाने में सफलता नहीं मिली।

आर्यप, अप्यार्य या अर्यपार्य नाम के विद्वान् के द्वारा शक सम्वत् १२४१\* अथवा रि० सम्वत् १३७६ में जिनेन्द्रकल्याणाम्बुदय नाम का एक ग्रन्थ रचा गया है। बल्कि इस ग्रन्थ का कुछ परिवर्ध "प्रशस्ति समग्र" पृष्ठ ८१२ में दिया भी जा चुका है। इस ग्रन्थ में लेखक ने यीराचार्य आदि के साथ 'एकसन्धि भट्टारक' का भी उल्लेख निम्न प्रकार से किया है —

"यीराचार्यसुपुत्रपादजिनसेनाधार्यसभापितो  
 य पूर्वं शुणमद्रसुरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्दुर्जित ।  
 यश्चाशाधरहस्तिमहकथितो यश्चैकसन्धिस्तत  
 तेभ्य स्वोद्वेसारमभ्यरथित स्याज्जनपूजाश्रम ॥"

बल्कि खेद के साथ लिखना पड़ना है कि "प्रशस्ति समग्र" में दिये गये ग्रन्थकर्ता के परिवर्ध

\*शाकाब्दे विपुवार्धिनेत्रदिमगी विद्यार्थसम्बन्धरे  
 भाषे भासि विशुद्धपद्मदशमीपुष्पर्वकारेऽद्विनि ।  
 ग्रन्थो रज्जुमारराजवनिष्ये जैनेन्द्रकल्याणमाक्  
 सगूर्णोऽभवदेकशौहनगरे श्रीपालवन्भूजित ॥

में प्रमाद एवं दृष्टि-दोष से एकसन्धि भट्टारक के नाम पर मेरा ध्यान ही नहीं गया था। फल-स्वरूप उपर्युक्त श्लोक में नौ प्रतिष्ठा-पाठ के प्रणेताओं का स्पष्ट उल्लेख होते हुए भी वीरान्वार्य आदि आठ ही प्रतिष्ठापाठ रचयिताओं का मैंने नाम निर्देश कर दिया है। वीर प्रमाद का लक्ष्य होना हम जैसे अल्पज्ञ मानवों का प्रकृत धर्म है।

जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय (विद्यानुवादाङ्ग) के उल्लिखित श्लोक से प्रकट है कि जिनसंहिता के कर्ता एकसन्धि भट्टारक विक्रमसम्बत १३७६ के पहले हो चुके हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि यह पाण्डित-प्रवर आशाधर जी के समकालीन १३ वीं शताब्दी में या इससे भी कुछ पाँचे हुए हों।

भवन की संगृहीत जिनसंहिता की यह पनि भाषण अगुद्विया से भरी पड़ी एवं अपूर्ण है। अतः किसी शास्त्र-संग्रहाता के संग्रह में यदि इस की पूर्ण प्रति हो तो उसका प्रशस्ति-मय अन्तिम भाग भेजकर भास्कर में प्रकाशित करा देने की कृपा करेंगे।

(१६) ग्रन्थ नं० २२७  
ख

## गीतगीतराग

कर्ता—पाण्डितान्वार्य चानकीर्त्ति

विषय—जिनस्तुति

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३॥ इञ्च

चौड़ाई ६॥ इञ्च

पत्रसंख्या ३३

प्रारम्भिक-भाग —

विद्याव्याप्तसमस्तवस्तुविसरो विश्वेर्गुणैर्भासुरो-  
द्वियश्रयवचःप्रतुष्टुसुरः सद्धानरत्नाकरः ।  
यः संसारविपाण्विपारसुनरो निर्वाणसौख्यादरः  
स श्रीमान् वृषभेश्वरो जिनवरो भक्त्यादरान् पातु नः ॥१॥  
पूर्वस्मिन्नयवर्मनामनृपति विद्याधराधीश्वरम्  
पश्चात्सल्ललिताङ्गदेवममलं श्रीवज्रजङ्घाधिपम् ।

आर्यं श्रीधरनिर्जरं च सुविधिं कल्याणतदेवेश्वरम्  
 चक्राधीश्वरवप्रनाभिजनपं सर्वार्यसिद्धीश्वरम् ॥२॥  
 साकेताधिपनाभिराजतनयं कल्याणपञ्चाञ्चितम्  
 प्रामानन्तचतुष्टयं जिनवरं सौवर्णदेहाश्रयम् ।  
 सौधर्मादिशतेन्द्रवृन्दविनतश्रीपादपद्मद्वयम् ।  
 यन्देऽहं वृषभेश्वरं गुणनिधिं सद्धर्मचक्राधिपम् ॥३॥  
 मेरो पश्चिमगन्धिने जनपदे रिधाधराणां पद-  
 स्याद्भेक्ष्यदक्षिणस्थिते सद्यत्कानाम्ना प्रतीते पुरे ।  
 राजा शस्तमहाबलस्तर्धराकैर्युक्तश्चतुर्भिस्सदा  
 राज्ञस्तं समुवाच धर्मसुफलं वृद्धस्वयंपूर्वकं ॥४॥

x

x

x

मध्य भाग (परपृष्ठ २५ पक्ति ६ से)

अष्टपदम्—सदृश्याकिसलयचरणयुगेन मृदुसरासिञ्जत्रयभूतसुभगेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥१॥  
 वतुलकान्तिमृदुहमेय्य चित्तज्ञराणघिवृत्तिधरेण ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥२॥  
 मन्मूलकान्तिमुपेयवयेन पुञ्जकान्तसुमध्यशुभेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥३॥  
 नलिनसुबिसनिभुञ्जयुगलेन दलितसुरतद्वरिदपचलनेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥४॥  
 विचलितहारविजासशिबेन कुचपुगविजसदुलविभवेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥५॥  
 शशधरद्विधरसुपमशुभेन विशद्वृमुद्वदनयनसन्वेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥६॥  
 धलितुल्लुङ्गन्तलमरनिटिलेन विलसितशशिदलसमपुटिलेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता सुविराजिता ॥७॥  
 वृशङ्गलमगिञ्जतधुनियमलेन खण्डितकुमतरचवनसुबलेन ।  
 सा धनिता सुविराजिता सुभगा धनिता ॥८॥

x

x

६२

प्रशस्ति-भाग—

गनिपर्वशास्त्रुधिपूर्णचन्द्रो यो देवराजोऽजनि राजपुत्रः ।  
 तन्मनुरोधेन च गीतर्वीतराग-प्रबन्धं मुनिपञ्चकार ॥१॥  
द्राविडदेशविनिष्टे सिद्धपुरे लब्धमस्तज्ञमोसी ।  
 घेन्द्रपोद्गागिदितशर्गक्षकार धीगृपमनाद्यवरचरितम् ॥२॥  
 स्वस्तिध्रीधेन्द्रगुण्टे दोषन्विजिननिफटे कन्दकन्दान्यये नोऽ-  
 भूःस्तुत्यः पुस्तकाद्भूतगुणतरलाः न्यातदेर्नागनायः ।  
 विस्तोर्णाग्नेपरीतिप्रमुणरमभृतं गीतगुग्ध्रीतगाम्  
 जग्नावीनामन्धं शुभ्रनुतमतनोत् पण्डितान्वायेदयः ॥

इति धीमद्रायराजगुरुभूमण्डलानार्ययर्मशयाद्यावृष्यरगयथाष्टिनामहसकन्दयिष्ठजन-  
 चक्रार्थिबह्वाङ्गायजीवरत्नावाल(१)श्रुत्याघनेकसिन्ध्यायिधिगजप्रार्थामहेन्द्रगोळ्मिन्दसिद्धारना-  
 धीम्यरधीमद्विभनय्याफर्कीस्तिवसिष्टनाचार्ययर्मप्रतीतगीतर्वीतरागाग्निधानाष्टपदी समाप्ता ।

यह गीतर्वीतराग जयदेव (१० ११५०) प्रणीत गीतगोविन्द के ढंग पर रचा गया है ।  
 जिस प्रकार गीतगोविन्द का अपर नाम अष्टपदी प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस गीतर्वीतराग  
 का भी दूसरा नाम अष्टपदी ही है । इस बात का पुन्यशा इसके रचयिता पण्डितान्वायं  
 चारुकीर्त्ति जो ने अपनी इस कृति में स्वर्य कर दिया है । गीतगोविन्द महाकाव्य में गिना  
 जाता है । इसके प्रणेता जयदेव यंग के लक्ष्मण सेन (१० १११६—११६६) के सभा-पण्डित  
 थे । इनके पिता का नाम भोजदेव एवं माता का राधादेवी था । यह किन्दुबिल्व के निवासी  
 थे । किन्दुबिल्व बंगदेश के धोरभूम जिले में है । यह जयदेव धीकृष्ण के अनन्यमत्त थे ।  
 भक्तिमाला में इनकी भक्ति की अनेक कथाएँ मिलती हैं । इनका विरचित एक हिन्दी ग्रन्थ  
 भी है, जो सिक्कों के आदि ग्रन्थों में सब से प्राचीन माना जाता है । संस्कृत में जयदेव-  
 विरचित संस्कृत का यह छेड़ा सा एक ही महाकाव्य होने पर भी इस कवि का यश इतना  
 प्रवृत्त हुआ है कि कवि के जन्म-स्थान पर इनकी पुण्यतिथि के उपलक्ष में अभी तक बड़ा  
 भारी उत्सव मनाया जाता है, जिसमें गीतगोविन्द के पद्य गाये जाते हैं । ई० १४६६ में उत्कल  
 के प्रताप रुद्रदेव ने सब वैष्णवनर्तक तथा गायकों को सर्व्व गीतगोविन्द के ही पद्य गाने  
 की आज्ञा दी थी । गेरे सदृश पाश्चात्य रसिक-शिरोमणियों ने कालियास के साथ इस कवि  
 की भूरि भूरि प्रशंसा की है । गीतगोविन्द १२ सर्गों का महाकाव्य है । इस में धीकृष्ण  
 और राधिका का प्रेम वर्णित है । प्रतिसर्ग के पद्य के पूर्व में राग ताल आदि दिये गये  
 हैं । इससे यह अनुमान होता है कि इसके रचयिता बड़े भारी गवंधा थे । इस में विमलंभ



धार्य श्रीधरनिर्जरं च सुविधि कल्पान्तदेवेश्वरम्  
 चनाधीश्वरवज्रनामिजनपं सर्वार्थसिद्धीश्वरम् ॥२॥  
 साकेताधिपनाभिराजतनय कल्याणपञ्चाङ्गितम्  
 प्रासान्तचतुष्टय त्रिनवरं सौरर्णदेहाग्रहम् ।  
 सौधमांदिशतेन्द्रवृन्दपिनतश्रीपादपद्मयम् ।  
 वन्देऽहं वृषभेश्वर गुणनिधि सद्धर्मचक्राधिपम् ॥३॥  
 मेतो पश्चिमगन्धिते जनपदे सिद्धाधराणां पद-  
 स्याद्देवतारक्षिस्थिते सदलकानाम्ना प्रतीते पुरे ।  
 राजा शस्तमहाबलस्सर्विकैर्युक्तश्चतुर्भिस्सदा  
 राजन्त समुगाच धर्मसुफलं बुद्धस्वयंपुर्वकं ॥४॥  
 × × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ २५ पक्ति ६ से)

अष्टपदम्—सदृश्याकिसलयचरणयुगेन मृदुसरसिजत्रयभृतसुभगेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥१॥  
 बतुलकान्तिमृदूकभरेण चित्तत्राणाधिबृत्तिधरेण ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥२॥  
 मञ्जुनकान्तिसुषेवचयेन पुञ्जतकान्तसुमन्यशुभेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥३॥  
 नलिनसुबिसनिमभुजयुगलेन दलितसुरतहरिदपचलनेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥४॥  
 विचलितहारिजासशिथेन कुचपुगविलसद्गुणविभवेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥५॥  
 शशधरकविधरसुधममुखेन विशदकुमुददलनयनसखेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥६॥  
 भलिकुलकुन्तलभरनिदिलेन विलासितशशिद्वसमकुदिलेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥७॥  
 कुम्भदलमार्पितधुनियमलेन स्वदिङ्गतकुम्भनयनसुखलेन ।  
 सा वनिता सुविराजिता सुभगा वनिता सुविराजिता ॥८॥  
 × × ×

इस की प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि गंगवंशज राजकुमार देवराज के अनुरोध से ही आपने इस "गीतवीतराग" का प्रणयन किया है। इस गंगवंश का राज्य मैसूर प्रान्त में लगभग ईसा की ४थी शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक रहा। आधुनिक मैसूर का अधिकांश भाग गंगवंश के राज्य के अन्तर्गत था जो गंगवाडि ६६००० कहलाता था। मैसूर में जो आजकल गङ्गडिकार (गंगवाडिकार) नामक किसानों की भारी जनसंख्या है वे गंगनरेशों की प्रजा के ही वंशज हैं।

गंगवंशीय राजाओं की प्राथमिक राजधानी 'कुवलाल' या 'कोलार' थी। यह पूर्वी मैसूर में पालार नदी के तट पर अवस्थित है। पीछे यह राजधानी कावेरी के तट पर 'तलकाड' नामक स्थान में आ गयी। आठवीं शताब्दी में श्रीपुरय नामक गंगनरेश सुविधा के लिये अपनी राजधानी का कार्य वेङ्गलूरु के समीपस्थ मण्णे या मान्यपुर से भी सञ्चालित करते थे। गंगवंश के अभ्युदय का यह मध्याह्न समय था। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब तलकाड चोलनरेशों के हस्तगत हुआ तभी से गंगराज्य की ईर्षति श्री हुई। शुरु से ही गंगराज का जैनधर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। श्रवणवेल्लगोल के शिलालेख नं० ५४ (६७) के उल्लेख से ज्ञात होता है कि गंगराज्य की नीव डालने में जैनाचार्य सिंहनन्दी जी का अधिक हाथ था। आचार्य सिंहनन्दी जी की इस सहायता की चर्चा गंगनरेशों के भिन्न भिन्न शिलालेखों में भी पायी जाती है।<sup>४३</sup> इसके अतिरिक्त गोम्मटसार की वृत्ति के प्रणेता अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्ती ने भी अपने ग्रन्थ की उत्थानिका में इस बात का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि आचार्य पूज्यपाद इसी वंश के सातवें नरेश दुर्विनीत के राजगुरु थे। गंगवंश के अन्यान्य प्रकाशित लेखों से भी जैनाचार्यों का सम्बन्ध सिद्ध होता है।

पर इस वंश में देवराज का कुछ पता नहीं लगता। पुरातत्त्व के सहृदय मर्मज्ञ मित्रवर गोविन्द पै का भी कहना है कि तलकाड के पश्चिम गंगवंश में देवराज नामक शासक का नाम मिलता नहीं है। हाँ, कलिङ्ग के पूर्व गंगवंश में देवेन्द्र धर्म नामक शासक ई० सन् १०७० में सिंहासनारूढ़ हुआ था अवश्य (Historical inscriptions of southern India page 358 & 346—348; 415—416)

किन्तु चाखकीर्त्ति जी के द्वारा "गीतवीतराग" में प्रतिपादित देवराज प्रायः यह नहीं हो सकता है। इसीलिये साधनाभाव से देवराज के सम्बन्ध में इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सका। अस्तु इस "गीतवीतराग" के प्रणेता भट्टारक चाखकीर्त्ति जी शक सम्वत् १३२१ के बाद के हैं।

और संभोग-शृङ्गार का बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है। इस काव्य की लोकप्रियता इसकी टीका की संख्या से भी सिद्ध होती है। इस काव्य पर ३० टीकायें उल्लेख्य होती हैं। इन टीकाकारों में उद्यनाचार्य और गङ्गुर मिथ सदृश बड़े बड़े नैयायिक और गायामट्ट सदृश भौमांसक भी हैं।<sup>७</sup>

इस गीतगीतराग में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव का चरित्र चित्रित है। इस में भी प्रत्येक पद्य के पूर्व में राग-ताल आदि दिये गये हैं। इससे त्रयदेव के समान इस गीतगीतराग के कर्ता पण्डिताचार्य चादकीर्ति जी भी संगीत के प्रमद विदित होते हैं। इन्होंने अपने गीतगीतराग में गीतगोविन्द का नृाक्षा लोके का प्रशुत प्रयास किया है। बल्कि इस विषय में इन्होंने सफलता भी प्राप्त की है। इसकी संस्कृत भाषा भी मज्जा हुई पद्य प्रशस्त है। संख्या की दृष्टि से इसमें ५७२ पद्य माने जाते हैं। गीतगीतराग के प्रणेता चादकीर्ति जी "दिगम्बर जैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ" के मतानुसार (१) पार्श्वाम्बुदय की टीका (२) चन्द्रप्रभ-काव्य की टीका (३) आदिपुराण (४) यशोधर-चरित (५) नेमिनिर्वाणकाव्य की टीका के भी कर्ता हैं। इनमें आदिपुराण, यशोधर चरित और नेमिनिर्वाण काव्य की टीका अभी तक मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुई हैं। बल्कि भवन में चादकीर्ति के रचित अर्थ-प्रकाशिका और प्रमेधरजमालालद्वारा नाम के तुपसिद्ध प्रमेधरजमाला नामक न्यायग्रन्थ के दो टीका ग्रन्थ भी संगृहीत हैं, जिनका परिचय यथावसर इसी प्रशस्ति-संग्रह में प्रकाशित किया जायगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उल्लिखित इन ग्रन्थों के रचयिता चादकीर्ति जी एक बहुवर्शीय एवं विविध विषयों के मर्मज्ञ उद्भट संस्कृत के विद्वान् थे।

इस गीतगीतराग के कर्ता चादकीर्ति जो ने द्वाविड (मद्रास) देशान्तर्गत सिंहपुर की अपना जन्मस्थान बतलाया है। यह सिंहपुर सम्भव है कि डिंडीयनम् तालुक के अन्तर्गत सिगवरम् हो। बाद आप लोक-विश्रुत धरण वेङ्गोळ मठ के अधीश बनाये गये। चादकीर्ति जी रायराजगुरु, भूमण्डलाचार्य, महावाक्वादीश्वर आदि अनेक उपाधियों के धारक थे। पर ये सभी उपाधियाँ पक्षपरम्परागत हैं। बल्कि इनकी 'बल्लाल जीवरत्न' जो एक विशिष्ट उपाधि है यह विष्णुब्रह्मन के बड़े भाई बल्लाल प्रथम (११००—११०६) को एक भयानक रोग से मुक्त करने के उपलक्ष में तत्कालीन धरण वेङ्गोळ के मठाधीश चादकीर्ति जी को प्राप्त हुई थी।<sup>८</sup>

<sup>७</sup> देखें—“संस्कृत-साहित्य का इतिहास-द्विभाग,” पृष्ठ १०१ से १०३।

<sup>८</sup> देखें—“प्रशस्ति संग्रह” पृष्ठ १—४।

<sup>९</sup> देखें—प्रवणवेङ्गोळ के शिवाश्रमणनं २२४ (१०२) सन् १२६८ तथा २६८ (१०८) सन् १४१२

धीमदित्यादि । अवगाहनमन्तःप्रवेशः । स च निगूढतत्त्वकलनरूपः । तात्पर्यविषयी-  
भूतार्थज्ञानसम्पादनमिति यावत् । पोटप्रायम् पोटसदृशम् तत्प्रतिपाद्यार्थिकदेशं  
प्रति सम्पादकमिति यावत् । तत्प्रकरणस्येति । सम्बन्धादिविषयकज्ञानरूपकारणाभावे  
प्रवृत्तिरूपकार्यं न स्यादिति भावः । अयमर्थ "स्तत्प्रकरणस्य" इत्यत्र पच्छर्यो विषयत्वम्  
प्रेक्षावतामिति पच्छर्यः सम्बन्धितत्वम् । तथा च इतत्प्रकरणविषयकप्रेक्षावत्सम्बन्धि-  
प्रवृत्तिर्न जन्यत इति शास्त्रविषयकप्रवृत्तित्वावच्छिन्नं प्रति सम्बन्धादिज्ञानानां कारणातायाः  
व्यवस्थापयिष्यमाणात् । प्रेक्षावन्तो ज्ञानिनः तत्र योऽनुयाद् इति । अनुवादो नाम अत्र न  
निष्प्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोगः । ननु पूर्वमुक्तस्य पुनरपि कथनं तस्य प्रकृतेर-  
संभवात् । संबन्धादीनां प्रमाणादिति श्लोकात् पूर्वं मूलकृतानुक्तैः । अतः सम्बन्धादित्रय-  
निष्ठं प्रकारताशालिबोधजनकशब्दप्रयोग एव अत्रानुवादशब्दार्थो प्राप्यः ।

x x x x x x

मध्य-भाग (परपृष्ठ ११८ पंक्ति ५)

प्राकट्यं फलजनकत्वावस्था । तथा च अन्यवहितोत्तरज्ञेयो फलजनकत्वरूपोद्बोधन-  
विशिष्टसंस्कारजन्या स्मृतिरित्यर्थः । एवं च संस्कारजन्यत्वं स्मृतेर्लक्षणम् इतरत्त्व-  
रूपकीर्तनमिति योज्यम् । "दर्शनस्मरणकारणकम्" इत्यादि । इदमिति प्रत्यक्षं तदिति  
स्मरणमेतदुभयजन्यं तद्विदमिति यज्ज्ञानं जायते तत्प्रत्यभिज्ञानम् । तत्र संकलनमिति  
स्वरूपकथनम् । तथा च प्रत्यक्षजन्यत्वे सति स्मरणजन्यत्वं प्रत्यभिज्ञानस्य लक्षणम् ।  
प्रत्यक्षजन्यत्वमात्रोक्तौ अवग्राह्यत्वात्प्रत्यक्षजन्येहात्मकप्रत्यक्षेतिव्याप्तिः । अतः स्मरण-  
जन्यत्वं स्मरणजन्यत्वमात्रोक्तौ स्मरणध्वंसेऽतिव्याप्तिः । अतः प्रत्यक्षजन्यत्वं तत्र  
दर्शनस्मरणकारणकत्वादिति सर्वत्र प्रत्यान्तरेषु शास्त्रान्तरेषु च । तदिदं सोऽयं देवदत्त  
इत्यादि तत्रोदन्तावप्राहिज्ञानस्यैव प्रत्यभिज्ञानत्वमुक्तम् । तद्देशतत्कालसंबन्धित्वं तत्र  
एतद्देश एतत्कालसम्बन्धित्वं इदं ता । तथा च कथमस्मिन्सूत्रे तत्सदृशं तद्विलक्षणमित्यादि-  
ज्ञानानामपिप्रत्यभिज्ञानत्वमुच्यते इति शंका । तत्र च दर्शनस्मरणकारणकं यज्ज्ञानं तत्सर्वं  
प्रत्यभिज्ञानमिति तावत्केषु च ग्रन्थेषु फण्डतः उक्तं केषुचिच्च सूचिता । तथा च तद्विद-  
मित्यादिज्ञानस्यैव तत्सदृशमित्यादिज्ञानस्यापि दर्शनस्मरणकारणकत्वाविशेषात् सूक्तमिति-  
सूत्राशयः ।

x x x x x

(२०) ग्रन्थ नं० ३३१  
ख

## अर्थप्रकाशिका (प्रमेयरत्नमाला की टीका)

कर्ता—पण्डिताचार्य चादकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इंच

चौड़ाई ६॥॥ इंच

पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक-भाग —

धूमश्रेमिजिनेन्द्रस्य वन्दित्वा पादपङ्कजम् ।  
 प्रमेयरत्नमालार्यः संक्षेपेण विविच्यते ॥१॥  
 प्रमेयरत्नमालायाः स्वरूपास्सन्ति सहस्रशः ।  
 तथापि पण्डिताचार्यकृतिप्रोद्घोष कोविद्- ॥२॥  
 मानौ देवीप्यमानेऽपि सर्वलोकप्रकाशके ।  
 न एहाते किं भुवने अनेन करवीपिका ॥३॥

प्रारिप्सितस्य प्रबन्धस्य निर्विप्रपरिसमाप्त्यर्थं स्वेष्टदेवतानमस्काररूपं मंगलमाचरन्  
 शिष्यशिष्यायै प्रन्यतो निबध्नाति ।

नतामेरति । अस्मिन् श्लोके वृत्त्यनुप्रासशब्दालंकारः । रेफादिवर्णानामवृत्तैरेक  
 द्वयादिवर्णानामावृत्तौ वृत्त्यनुप्रासस्य अभिहितत्वात् । तदुक्तं—“एकद्विप्रमुखा वर्णा व्यवधानेन  
 यत्न ई । आश्चर्यन्ते तदा तत्र वृत्त्यनुप्रास इत्यने ॥” कर्मारतीन् जयतीति जिनः । कर्मापति  
 जैवत्वमेव जिनपदशक्यतावच्छेदकम् । एतच्च दुर्वारमारपीरमद्विच्छेदे इत्यनेन समर्थित  
 मिति पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमर्थालङ्कारः । “हेतुर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्” इति  
 लक्षणम् । मनयोरशब्दार्थालङ्कारयोस्संख्येः तिलसङ्गुलन्यायेन उभयोर्मेलनात् । “तिल-  
 सङ्गुलन्यायेन मेलनं संख्ये” इतिलक्षणात् । मकलङ्क इति । अत्र रूपकालङ्कारः—वर्चस  
 अम्मोषित्वस्य रूपणात् । उपमानोपमानयोरमेवकथनं द्वि रूपकम् । तदुक्तम्—“विरय-  
 सिद्धताद्रूप्यत्वनं विषयस्य यत् रूपकं तत्” इति । व्यायविद्यामृतमित्यत्राप्यमेव रूपकालङ्कारो  
 बोध्यः । प्रमेनुवचनेनेति । प्रमेनुवचनोदारचन्द्रिकेत्यत्र निरुक्तमेव रूपकम् । ज्योति-  
 र्निष्कसन्निभा इत्यत्र उगमालङ्कारः । “उपमा यत्र स्तस्यलक्ष्मीरुत्पत्ति द्वयोः” इतिलक्षणात् ।

पृथ्वीमण्डलमण्डनायितमहाराजाधिराजोत्तम-  
 श्रीराजद्विमशीतलक्षितपतेगोष्ठिमते सौगतान् ।  
 वादायापततो-मदोद्धततया यो वाग्भर्त्सित्वचरैः  
 जित्वा श्लाघ्यतमोऽभवत्सपदि तं वन्देऽकलंकं मुनिम् ॥२॥  
 यत्सूत्रत्रयचन्द्रिकारसभरं नित्यं समास्वादयन्  
 भव्योत्तंसुधीचक्रोरनिकरस्सर्वोऽपि संमोदते ।  
 सोऽयं सार्वपदीनधीबुधमनस्सौधाग्रकेलीशुको  
 हर्षं वर्षन्तु सन्ततं हृदि गुह्यमाणिक्यनन्दो मम ॥३॥  
 जयतु प्रभेन्दुसूरिः प्रमेयकमलप्रकाण्डमार्त्तगण्डेन ।  
 यद्वदननिस्पृतेन प्रतिहतमखिलं तमो हि बुधवर्गाणाम् ॥४॥  
 श्रीचारुकीर्त्तिधुर्यस्सन्तनुते परिण्डतार्यमुनिवर्ष्यः ।  
 व्याख्यां प्रमेयरत्नालङ्काराख्यां मुनीन्द्रसूत्राणाम् ॥५॥  
 माणिक्यनन्दिरचितं कनुसूत्रवृन्दं

कालयीयसी मम मतिस्तु तदीयभक्त्या ।  
 तादृक्प्रभेन्दुवचसां परिशीलनेन  
 कुर्वे प्रभेन्दुमधुना बुधहर्षकन्दम् ॥६॥

“प्रमाणादर्शसंसिद्धिः तदाभासाद्विपर्ययः ।  
 इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्मसिद्धमल्यं लघीयसः ॥ ”

श्रीमन्त्यायमहार्णवस्याखिलप्रमेयरत्नगर्भस्यावगाहनमव्युत्पन्नप्रज्ञैः कर्तुमशक्यमिति मन्य-  
 मानैः न्यायशास्त्रप्रवर्तनशिरोमणिभिर्भट्टाकलङ्कमुनिभिस्तदवगाहनाय पोतप्राये निखिलवस्तु-  
 स्वरूपप्रकाशनप्रवण्ये प्रकरणप्रणीते तत्रापि मन्दमतानां दुरवगाहनामालोच्य कारुणिको  
 माणिक्यनन्द्याचार्यः सुस्पष्टं तदर्थं प्रतिपादयितुं परीक्षामुखनामकं सूत्रात्मकं प्रकरणमिदं  
 प्रणिनाय । तत्र सम्बन्धाभिधेयेष्टसाधनत्वकृतिसाध्यत्वानां प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यर्थं प्रवक्ष्यं  
 प्रतिपाद्यत्वात् तत्प्रतिपादकं सकलशास्त्रार्थसंप्राहकं श्लोकमादावचीकथत् ।

x x x x x x

मध्य-भाग (पूर्वपृष्ठ १३६, पंक्ति १०)

प्रहाद्वैतवादिनस्तु—सत्तारूपं ब्रह्मैव सर्वसाक्षात्कारि सर्वावच्छिन्नचैतन्याभक्षत्वात् ।  
 चैत्रस्य घटादिसाक्षात्कारित्वं हि घटावच्छिन्नचैतन्याभेद एव घटसाक्षात्कारकाले इन्द्रियद्वारा  
 स्तिर्घटादिविषयदेशगमनेन घटावच्छिन्नचैतन्यस्य रूपांतःकरणावच्छिन्नचैतन्येना-

अन्तिम-भाग — (पूर्वपृष्ठ १४८, पंक्ति ७)

इन्द्रशमपुरन्दरादिशब्दा इन्द्रशकनपूर्वाख्यादिपर्यायभेदेन मिन्नार्थबोधका इति ज्ञान ।  
समभिरुदनय । तादृशमाने पर्यायभेदशब्दाद्यो योऽर्थभेद इन्द्रादिरूपपर्यायभेदयोः  
इन्द्रशमपुरिपरार्थभेद सङ्गोपकल्पनिष्ठविशेषताशालिज्ञानन्वसत्याहृत्यसमन्वय । समभि  
रुदनयामासस्तु इन्द्रशमपुरन्दरादिशब्दा अभिप्रायबोधका इति ज्ञानादिति । इयम्  
तनयस्तु शकनत्रिगन्धः शकनत्रियास्थितिरूप एव शकनबोधक न पुत्रादिव्यति शकन  
सङ्गत्तयन्तु तत्त-पर्यायसमानकालीनार्थबोधकत्वनिष्ठप्रकारतानिकथितशब्दनिष्ठविशेष्यत  
शालिज्ञानन्वय सकनकाल एव शकनबोधक इति ज्ञाने शकनरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वनि  
प्रकारतानिकथितशब्दनिष्ठविशेष्यताशालिज्ञानत्वम् । शकनकाल एव शकनबोधक इति ज्ञाने शक  
नरूपपर्यायकालीनार्थबोधकत्वप्रकारस्य सत्याहृत्यसंगति । सर्वथा शकनपद शक  
नपर्यायबोधकमिति ज्ञानमित्यभूतनयामासमित्यत्र विस्तर ।

\*

\*

\*

(२१) ग्रन्थ नं० २२६  
छ

## प्रमेयरत्नमालालंकार

कक्ष—पण्डिताचार्य धारकीर्ति

विषय—न्याय

भाषा—संस्कृत

सम्पादक—८॥ इच्छ

चौडाई ६॥ इच्छ

पत्रसंख्या ३७६

प्रारम्भिक-भाग—

भक्त्युद्धे कनमत्सुखाधिपलसत्कीर्तीरकीर्तीलसन-

मायिक्याभ्युज्जबान्धवाशुनिकरस्मेराडिधपनेरुहम् ।

तत्तादृशगुणभुम्भुषान्तिरुवसथोगीन्द्रचित्ताभ्युज्ज

व्यूहानन्ददिवाकर इति सदा धीवर्धमानं भजे ॥१॥

तद्द्वाराख्यानमभूत्तमेन्दुवचनोदारार्थसंशोभनात्  
 किञ्च धीगुमटेश्वरस्य कृपया विन्याद्रिचूडामणोः ॥  
 धीमद्वेङ्गुळ्मभ्यभासुरमहाविन्याद्रिचिन्तामणिः  
 धीमद्वाहुवली करोतु कुशलं भव्यात्मनां सन्ततम् ।  
 पत्पादाम्बुगहं सुरेन्द्रमुहुटीमाणिक्यनीराजितम्  
 कल्पद्रुमकरायते शुभदशां पृजां सदा तन्वताम् ॥

बहुत कुछ संभव है कि गीतघीतराग, पाश्चात्त्युद्य की टीका, चन्द्रप्रभकाव्य की टीका, भाद्रिपुराण, यशोधरचरित और नैमिनिवाण काव्य की टीकाएँ इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति ही उल्लिखित अर्थप्रकाशिका एवं प्रमेयरत्नमालालङ्कार के प्रणेता हों। चारुकीर्ति यह ध्रुववेङ्गुळ्म के पद्याधीशों का परम्परागत नाम है। वहाँ के आधुनिक मठाधीश भी चारुकीर्ति के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इसीलिये विशेष प्रमाण के अभाव में स्पष्टनया लिखना बड़ा दुःख है कि अमुक चारुकीर्ति ही अमुक ग्रन्थ के रचयिता हैं। फिर भी इन ग्रन्थों के धाक्क-विन्यास की ओर ध्यान देने पर उल्लिखित मेरा अनुमान निराधार नहीं कहा जा सकता। साधनाभाव से इस समय इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका। मानूँ होता है कि ये दोनों ग्रन्थ “प्रमेयरत्नमाला” के अन्तर्गत जटिल गुत्थियों को सुलझाने के लिये ही प्रणीत हुए हैं। “प्रमेयरत्नमाला” दिगम्बर जैनदर्शन का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अपनी विशेषताओं के कारण कई प्रसिद्ध परीक्षा-संस्थाओं की पाठ्य-पुस्तकों में भी यह सन्निविष्ट है। क्या ही अचन्द्रा होता परीक्षामुल-सूत्र पर जितनी ये छेटी-मोटी टीकायें उपलब्ध होती हैं वे एकीकरण-रूप में प्रकाशित होतीं। तुलनात्मकदृष्टि से अध्ययन करनेवालों को इससे विशेष लाभ होता। साथ ही साथ प्रमेयरत्नमाला जो एक गम्भीर ग्रन्थ है इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता। विद्यालय के अध्यापकों को भी पढ़ाते समय इन सभी टीकाओं का उपयोग करना चाहिये। इससे ग्रन्थगत विशेषता अध्ययनावस्था में ही तुलनात्मक अध्ययन का विचार रखनेवाले विद्यार्थियों को ज्ञात हो जाती। बल्कि धीयुत एस० सी० बोर्ड, एम० ए० बी० एल० का जैनगजट में “Pareekshāmukham” नाम से जो इस सूत्र का धारावाहिक रूप से अंग्रेजी अनुवाद निकल रहा है उसमें उन्होंने “भवन” की “अर्थप्रकाशिका” एवं “न्यायमणिदीपिका” का जहाँ तहाँ उपयोग किया है। कारणवश उन दिनों मैं आपके पास “प्रमेयरत्नमालालङ्कार” नहीं भेज सका। अस्तु, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन ग्रन्थों के रचयिता चारुकीर्ति जो एक बहुदर्शी एवं संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे।

७ देखें—“दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ।”



भेदोत्पत्ते एकदेशस्योपाथो भेदकत्वायोगात् गृहावच्छिन्नाकारो घटावच्छिन्नाकार्य  
 घटावच्छिन्नाकार्यभेदवत् । मायावच्छिन्नचैतन्ये घटावच्छिन्नचैतन्याभिन्नरूपं सवसात्ता  
 रकारित्वं च घटस्सन् पटस्सन् इत्यादि प्रत्यक्षेण गृह्यते । घटस्सन्निति प्रतीतो घटसतो  
 तादात्म्यमानात् । तादात्म्यस्य च भिन्नत्वे सत्यभिन्नसत्ताकृत्वरूपत्वेन घटावच्छिन्न  
 सत्तारूपचैतन्याभेदस्य वन्नरूपे सति भावात् । न च घटादिरूपभेदस्य प्रत्यक्षगम्यत्वे भागन  
 स्याद्वैतबोधकत्व न सम्भवति प्रत्यक्षविरुद्धार्थे भागमस्य प्रामाण्यायोगादिति वाच्यम् ।  
 प्रत्यक्षं हि सविकल्पकं निर्विकल्पकं चेति द्विविधम् । तत्र चतुर्लमीजनानन्तर सत्तामात्र  
 विषयक निर्विकल्पक जायते तदेव प्रमाणभूत प्रत्यक्षम् । तत्र भेदो न भासते । अत्रमाण  
 भूतसविकल्पकप्रत्यक्षे च भेदो भासत इति न तेनागमस्य बाधः । तदुक्तं “अस्ति ह्यालोव  
 नाज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम् । बालभूताद्विज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम् ॥ आहुविधातुप्रत्यक्ष  
 न निषेदुष्टं विषयित । नैकत्वे भागमस्तेन प्रत्यक्षेण प्रबाध्यते ॥” प्रत्यक्षं विधातुविधायकं  
 सन्मात्रप्राहकमेवाहुः । न निषेदुष्टं न निषेधकं न बाधप्राहकम् । तेन कारणेन एकत्वे  
 प्रतिपादकतासम्भवेन विद्यमान आगमो न प्रत्यक्षेण बाध्यत इति श्लोकार्थः । तथा च  
 प्रत्यक्षस्यापि सन्मात्रप्राहित्वेन तद्विरोधाभावात् । ‘एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म’ इति श्रुत्याऽद्वैतं  
 ब्रह्म सिध्यति । ब्रह्मणोऽद्वैतत्व च सनातोपविज्ञातीयस्वगतभेदशून्यत्वम् । तदुक्तम्—  
 “वृक्षस्य स्वगतो भेदः” उक्तपुष्पफलादित । वृत्तान्तरात्सजातीयो विज्ञातीयशिलादित ।  
 एव भेदत्रय प्राप्तं श्रुत्वा ब्रह्मणि वायते । एकावधारणद्वैतप्रतिपक्षिभिः क्रमात्” इति ।

X

X

X

X

अंतिम भाग (पूर्व पृष्ठ ३७५, पक्ति ५)—

मादृशस्सविद् इति—अत्रापि हेयोपादेयतत्त्वयोरित्यनुपपद्यते । मादृशमन्वयस्य हेयो-  
 पादेयतत्त्वज्ञानार्थं शास्त्रकरणमित्यर्थः । नन्यत्रयज्ञस्य कथं महाशास्त्रकरणं तद्विषये वा  
 कथं अन्यत्रयज्ञत्व परस्परविरोधादिति चेन्न पुर्वावापिपेक्षया अन्यत्रयज्ञत्वस्य विवक्षितत्वात् ।  
 आत्मनः आदित्यपरिहाराय प्रयच्छता तयोक्तिसम्भवाच्च । यथा ‘मादृशो बाल’ इत्यत्र बाल  
 इति पदच्छेदः । एवञ्च शास्त्रकरण्यन अनन्यत्रयोऽहं शास्त्रार्थग्रहणं अनन्यत्रयस्य शिष्यस्य  
 हेयोपादेयज्ञानार्थमिदं शास्त्रं कृतघोनस्मोत्पर्यः ।

इति धीमहे दिगणाप्रगण्यस्य धीमहेऽङ्गुलपुरनिवासरसिकस्य चारुकात्तिपण्डिताचार्यस्य  
 कृतोपरीक्षामुखसूत्रव्याख्यानार्थं प्रमेयरत्नमालालङ्कारसमाख्यायां षष्ठे परिच्छेदे समाप्तः ।

मिथ्यावाद्गतमङ्गनादिनमण्यर्थाणि कथनन्दिनमो-

यच्छास्य विमल विद्ययितमहायुक्तिमजैर्मातुरम् ।

अन्तिम भाग—

श्रीशान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां पञ्चमः स्तवकः समाप्तः ।

प्रमेयकण्ठिका जीयात्प्रसिद्धानेकसङ्गुणा ।

लसन्मार्त्तण्डसाम्राज्ययौवराज्यस्यं कण्ठिका ॥

सनिष्कलङ्कं जनयन्तु तर्कं वा वाधितर्को मम तर्करत्ने ।

केनानिशं ब्रह्मकृतः कलङ्कुश्चन्द्रस्य किं भूषणकारणं न ॥

इस प्रमेयकण्ठिका के प्रणयन-द्वारा श्रीशान्तिवर्णी जी ने माणिक्यनन्दिकृत परीक्षामुख-सूत्र के आधार पर अन्यान्य सांख्य, सौगत, भाट्ट एवं प्रभोकरादि दार्शनिकों के प्रमाणलक्षण आदि सदोष सिद्ध किये हैं। गुरुपरम्परा एवं गण-गच्छादि की चर्चा इस ग्रन्थ में नहीं होने के कारण शान्तिवर्णी जी के विषय में अभी कुछ कहना असम्भव है। इसमें पाँच स्तवक हैं। प्रत्येक में अपने दार्शनिक सिद्धांत का मण्डन तथा अन्य मत का खण्डन है। रचना-शैली परिष्कृत है।

(२३) ग्रन्थ नं० ३३३ ख

## शृंगारार्णवचन्द्रिका

कर्ता—विजयवर्णी

विषय—अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

लत्ताई—८॥ इञ्च

चौड़ाई—७ इञ्च

पत्रसंख्या १०६

प्रारम्भिक भाग—

जयति संसिद्धकाव्यालापपद्माकरेयम् (?)

बहुगुणयुतजीवन्मुक्तिपंस..... ।

...रवाणीसारनिकाणरभ्यो—

जिनपतिकलहंसश्चाहसंजीति (?) वक्ष्ये ॥१॥

(२२) ग्रन्थ नं०—३३०

## प्रमेयकण्ठिका

कथा—शांतिपर्व

विवरण—अध्याय

भाष्य—संस्कृत

सम्पादन—८॥ इन्द्र

शोधक—७ इन्द्र

पृष्ठसंख्या ३८

प्रारम्भिक भाग—

अथ ह्यनुपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणतत्त्वम् ।

पर सामुख्यत्रयस्य प्रत्यक्षस्यैव प्रमाणमिति ॥१॥

अथ ह्यनुपूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणमिति प्रमाणतत्त्वम् । वाच्यार्थानि मान्यघुक्ति-  
कृतवाचिताः । अनु प्रागुत्पत्तिप्रसङ्गे यानि विशेष्यान्युपलक्षणानि तानि निरर्थक्येति चेन्न  
येन पर्यतिपादितानि तेषां सार्थक्येन तेषां सार्थक्येन । तथा हि किं तदुपलक्षणमिति  
कथं तद्विषयं "ज्ञानं प्रमाणम्" इत्युक्तेरिति विद्वत्प्रमाणमिति प्रमाणत्वं स्वार्थित्यापत्तौ नैव  
निष्प्रमाणकं ज्ञानानां तत्तत्प्रमाणपरकत्वेन तदवसायविशेषणस्य सार्थक्यम् । अथानिर्णय-  
विशेषणानां सार्थक्यं योजनीयम् ।

×

×

×

×

अध्याय (पर पृष्ठ १६, पृष्ठ ६) —

अविसर्वादिज्ञानं सौमत्रोद्यं प्रमाणं तदपि न पर्यतिपादितदृश्यात्मकसंगम् । तथा हि  
अविसर्वादित्वं ज्ञाने ह्य सत्काले ज्ञानानन्तरेणावाप्यर्थं तस्य कदाचिदुत्पत्तिरिति सम्भवात्तत्रापि  
प्रमाणत्वप्रसंगम् । किञ्चाविसर्वादिश्यामात्रं विसर्वादित्वं वाच्यम् । तथा सतो न  
सम्भवति स्थितिज्ञानस्यैव नद्वीकारम् । नाथसतो सम्भवात् । तथा चाप्रसिद्धस्य  
विसर्वादित्वस्यामात्रं कथं निरूपणायानि प्रसंगम् । ततो विसर्वादिज्ञानं प्रमाणमिति  
प्रमाणत्वमिति चारितरमणोपमेयम् ।

इति शान्तिपर्वणिविचितायां प्रमेयकण्ठिकायां द्वितीयः स्तवः ।

अन्तिम भाग—

श्रीशान्तिवर्णिविरचितायां प्रमेयकण्ठिकायां पञ्चमः स्तवकः समाप्तः ।

प्रमेयकण्ठिका जीयात्प्रसिद्धानेकसद्गुणा ।

लसन्मार्सगुडसाम्राज्ययौवराज्यस्य कण्ठिका ॥

सनिष्कलङ्कं जनयन्तु तर्कं वा बाधितर्को मम तर्करत्ने ।

केनानिशां ग्रहकृतः कलङ्कश्चन्द्रस्य किं भूषणकारणं न ॥

इस प्रमेयकण्ठिका के प्रणयन-द्वारा श्रीशान्तिवर्णी जी ने माणिक्यनन्दिकृत परीक्षामुख-  
श्लोक के आधार पर अन्यान्य सांख्य, सौगत, भाट्ट एवं प्रभोकरादि दार्शनिकों के  
समागलक्षण आदि सद्वेष सिद्ध किये हैं। गुरुपरम्परा एवं गण-गच्छादि की चर्चा इस  
ग्रन्थ में नहीं होने के कारण शान्तिवर्णी जी के विषय में अभी कुछ कहना असम्भव  
है। इसमें पाँच स्तवक हैं। प्रत्येक में अपने दार्शनिक सिद्धांत का मगडन तथा अन्य  
मत का खराडन है। रचना-शैली परिष्कृत है।

(२३) ग्रन्थ नं० ३३१  
ख

## शृंगारार्णवचन्द्रिका

कर्ता—विजयवर्णी

विषय—अलङ्कार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई—८॥ इञ्च

चौड़ाई—७ इञ्च

पत्रसंख्या १०६

प्रारम्भिक भाग—

जयति संसिद्धकाव्यालापपद्माकरेणम् (?)

बहुगुणयुतजीवन्मुक्तिर्पस..... ।

...खाणीसारमिकाणरभ्यो—

जिनपतिकलहंसश्चाहसंगीति (?) वक्ष्ये ॥१॥

भमन्दानन्दसन्दीहपीयूषस्दायिनीम् ।  
 स्तरीमि शारदां दिव्यां मञ्जानफलशालिनीम् ॥२॥  
 समन्तभद्रादिमहाकवीश्वरे कृतप्रबन्धोज्ज्वलसत्सरोदरे ।  
 लसद्रमालङ्कृतिनीरपकजे सरस्यता ब्रीडति भावबधुरे ॥३॥  
श्रीमद्विजयकीर्त्तान्वोस्तुतिसन्दीहकामुदी ।  
 मदीय चात्मसन्ताप हृत्वानन्द वृदा त्वरम् ॥४॥  
श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदांबुजम् ।  
 मदीयचित्तकासार स्थयात्सशुद्धधीजले ॥५॥  
 मलयानिलसकाशो गुणभोरभयर्द्धक ।  
 सन्तापहृजनानन्द मुमनो जायताधिष्णम् ॥६॥  
गुणयमादिक्रमांठकयानां भूक्तिसञ्चय ।  
 धार्णीप्रिलास सदयान् रसितानन्ददायिनम् ॥७॥  
 राजनीतिमहाशास्त्रनिष्पितफलप्रदाम् ।  
 नानानटोककामारनदानयिमृपिताम् ॥ ८ ॥  
 सं दे पुरस्कृतानानगरमासुराम् ।  
 जिनराजमहाधर्मधायकोत्तमराजिताम् ॥९॥  
 अष्टादशमहाधेयीभूयितां श्रीमतातराम (१) ।  
 पश्चिमाण्डपर्यन्ता वशां न्यस्तुखप्रदाम् ॥१०॥  
 श्रीमद्भरतराजेन्द्रनामचक्रधरोपम् ।  
श्रीश्रीरत्नसिंहाख्ययगभूमाश्वरो महान ॥११॥  
 पालयत्यमलां घग्वाडीपुरसमन्विताम् ।  
कावन्धवशजनितानेकभूमिशपालिताम् ॥१२॥  
 तस्यानुजो गुणा वा पादाख्यनरेश्वर ।  
 सत्येन रामच द्रोऽभूद्धर्मण भरतशर ॥१३॥  
 रत्नत्रयमहाधर्मरत्नको राजशखर ।  
 महाकविजनस्वरूपन् (१) मानसन्कीर्त्तनायक ॥१४॥  
 सोऽपि धीपादख्ययगोऽयं निनपादागिजयदपम् ।  
 अतुल्यमगतां भूमिं पूरालां रत्नतिस्म वै ॥१५॥  
 तस्य धीपादख्ययगस्य भागिनेयगुणार्थम् ।  
त्रिगम्या महान्देवी पुत्रो राजे द्रुपुजित ॥१६॥

श्रीकामरायवंगोऽभून्नाम्ना नृपतिकुञ्जरः ।  
 वैरिसन्दोहगन्धेभघटाकराठीरवोपमः ॥१७॥  
 क्रमागतामिमां भूमिं पश्चिमाम्भोधिभूपिताम् ।  
 श्रीकामिरायवंगेन्द्रः पालयत्यमलश्रियम् ॥१८॥  
 सराजकां...गोष्ठीषु सभाजनविभूपितः ।  
 अपृच्छद्वितीयं (?) नाम्ना कविताशक्तिभासुरम् ॥१९॥  
 काव्यस्य लक्षणं किम्वा वर्णाशुद्धिश्च कीदृशी ।  
 रसभावौ कथम्भूतौ ते नृभेदाश्च कीदृशाः ॥२०॥  
 कीदृश्यलंकृती रीतिः कीदृग्वृत्तिश्च कीदृशी ।  
 कीदृग्दोषो गुणो कीदृक् पृच्छतिस्मेति मां नृपः ॥२१॥  
 इत्थं नृप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः ।  
 क्रियते सूत्रिणा(?) नाम्ना शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ॥२२॥  
 × × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३६, पंक्ति २)

सुकुमारत्वमौदार्यः श्लेषः कान्तिः प्रसन्नता ।  
 समाधिरोजोमाधुर्यमर्थःशक्तिस्तु साम्यकम् ॥४॥  
 एते दशगुणाः प्रोक्ता दश प्राणाश्च भाषिताः ।  
 यथासंख्यं मया तेषां लक्षणं प्रतिपाद्यते ॥५॥  
 श्रुतिचेतोद्भयानन्दकारिणां कोमलात्मनाम् ।  
 वर्णानां रचना-न्यासः सौकुमार्यं निरूप्यते ॥६॥  
 श्रीरायवंगक्षितिनायकस्य कीर्त्तिर्विशाला धरचन्द्रिकेव ।  
 न चेत्त्रिलोकोजनचित्तजातं सन्ताप-जालं क्व निराकरोति ॥७॥  
 धर्मचारुत्वगमकं पदान्तरविराजितम् ।  
 पदानां यदुपादानं तदौदार्यं मतं यथा ॥८॥  
 शब्दानामभिधेयानां गुणोत्कर्षा यथाथवा ।  
 तदौदार्यं मतं लोके तदुदाहरणं यथा ॥९॥  
 कादम्बनाथस्य मदान्धशूरक्षीणधरोत्तुंगमहागजेन्द्रः ।  
 दिग्दन्तिनैरावतनामकेन स्पृधां विद्यत्ते जगद्ब्रुतोऽसौ ॥१०॥  
 परस्परं प्रयुक्तानि स्यूतानीव पदानि वै ।  
 निविडानि प्रवर्त्तन्ते यत्र स श्लेष उच्यते ॥११॥



के कारण इस समय कुछ भी नहीं लिखा जा सकता। दक्षिण कन्नड जिला में शासन करनेवाले जैनराज-वंशों में वंगवंश तुलु राज्य में सर्वमान्य सम्मान प्राप्त किये हुआ था। यह सम्मान आज भी इस वंश को पूर्ववत् प्राप्त है। शालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) के पहले का इस वंश का कोई विश्वस्त परिचय नहीं मिलता। वंगवंश के मूल चरित्र के सम्बन्ध में ऐतिहासिक विद्वानों में मतभेद है। इसीलिये शालिवाहन शक १०७९ (ई० सन् ११५७) से इस वंश का प्रामाणिक चरित्र वीरनरसिंह वंगराज से प्रारंभ होता है। बल्कि इस चरित्र में किसी को कोई आपत्ति भी नहीं है। मैसूर में जो गंगवंश निरकाल तक शासन कर चुका है वही यह वंगवंश माना जाता है। वास्तव में 'गंग' और 'वंग' इन नामों में अक्षर-साम्य स्पष्टतया प्रतीत होना ही इसके एकीकरण का समर्थन करता है।

इन्के वंशज पहले मैसूर प्रांतान्तर्गत गंगवाडि नामक स्थान में दीर्घकालतक राज्यशासन करते रहे। पीछे होयिसळ राजा विष्णुवर्द्धन के द्वारा युद्ध में इन वीरनरसिंह के पूज्यपिता चन्द्रशेखर के मारे जाने पर वहाँ का राज्यशासन-सूत्र विष्णुवर्द्धन के हस्तगत हुआ। इनके बाद स्वर्गीय चन्द्रशेखर के शुभ-चिन्तक मन्त्री पुरोहित आदि इनके पुत्र वीरनरसिंह को लेकर कुछ कालतक मलेनाडु में छिप-छुक कर जीवन बिताते रहे। पश्चात् विष्णुवर्द्धन के लोकान्तरित होने पर ये निर्भीक होकर पश्चिम-घाटी से उतर कर वंगवाडि (दक्षिण कन्नड ज़िला) में आकर रहने लगे। ज्ञात होता है कि 'गंग' 'वंग' के नामानुकूल ही क्रमशः इनकी राजधानी का नाम गंगवाडि एवं वंगवाडि रक्खा गया था। वास्तव में बाद की यह वंगवाडि उनकी पूर्वराजधानी गंगवाडि की याद दिला रही है।

अस्तु, एक समय विष्णुवर्द्धन के पुत्र त्रिभुवनमल्ल अपनी प्रजाओं की देख-रेख करने के निमित्त जब दक्षिण कन्नड ज़िला में आये तब वह वंगवाडि भी गये। इस सुभ्रवसर को पाकर मन्त्री पुरोहित आदियों ने राजकुमार को उक्त त्रिभुवनमल्ल के समक्ष उपस्थित कर दिया। इन्होंने इस राजकुमार को होनहार देख एवं प्रसन्न हो इन्हें उस प्रांत का शासक बनाकर अपने ही नामानुसार इनका नाम भी वीरनरसिंह रक्खा। इनका भी पूरा नाम त्रिभुवनमल्ल वीरनरसिंह ही था। यह बात वंगचरित्र आदि पुस्तकों में विस्तृतरूप से प्रतिपादित है।

शालिवाहन शक ११३० (ई० सन् १२०८) में इन वीरनरसिंह का पुत्र चन्द्रशेखर वंग सिंहासनारूढ़ हुए। इनके बाद शालिवाहन शक ११४७ (ई० सन् १२२४) में इनके छोटे भाई पाराङ्क्य वंग शासक हुए। इनके बाद शालिवाहन शक ११६२ (ई० सन् १२३९) में इनकी बहन विट्टलादेवी राज्यशासन की सञ्चालिका नियत हुई। तत्पश्चात् शालिवाहन



यस्योत्तुङ्गविनालकीर्तिविमलं दृष्ट्या नगमोदते  
 सीराग्निर्दिगिभो(?) महाधयन्निमा स्योमायगा वधुग ।  
 नानाकारवित्रिगगावमहामेगय गोप्रोदमन्-  
 फल्यजाचलभूरिभारमिति वा मन्वा(?) नगजनमितम् ॥१२॥

×                      ×                      ×                      ×

अन्तिम भाग ।—

निर्दिग्गुणो कान्ये साग्दुरे रमान्यते ।  
 रायचगमहीनाथ तर कीर्ति प्रयततम् ॥१३॥  
 स्वाहाधर्मपरमासूतदस्यिण मरंपकारिजिनतापयज्ञभृ ग ।  
 कजम्बजगनरागिगुधानयूत धीरापयगनुयतिंगनोद जीयान् ॥१४॥  
 गराकडरिपसदस्ययस्मधनादुनाइभ्यर  
 मन्त्रोद्वानिधोरनोधमहामन्दोहकंमरानि ।  
 प्रोचद्गानुमयूरनारिपिनयातानराज्यास्मदु-  
 द्दयोद्गामुत्पीरिपिमगुल्लने रायचगोद्वय ॥१५॥  
 कान्तिले विमग सदा वरगुणा धार्मी जयध्रूपर  
 लक्ष्मी मरहिता सुख सुखसुख दान विधान महन् ।  
 धार्तं धानमिद पगकमगुणम्नुद्गो नय कोमल  
 रूप कान्तर जयतमिर(?) भो धीरायभूमद्वर ॥१६॥

इति परमनिन्द्यरत्नरन्त्रिगविनिर्गतम्याहादचन्द्रिकाचकोरिचयकीर्तिमूनोद्वरणाप्य-  
 चक्षराकविचयर्गिरिचिने श्रीरांजनरमिहकामिरायनेन्द्रशरदि तुमानिभर्कासिदवागक  
 श्रद्धारार्थरचन्द्रिकानामि अद्दुरस्तप्रेडे दोयगुणनिर्णयो नाम दशम परिच्छेद समाप्त ।

सुप्रसिद्ध भारतीय अद्दुराग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' की तरह इस में भी भिन्न भिन्न नाम  
 के निम्नलिखित दश परिच्छेद हैं पर है यह स्वतन्त्र पर मूल अद्दुराग्रन्थ —

(१) वर्य-गण-फल-निर्णय (२) कायगत श्रद्धार्थ-निर्णय (३) रस-भाव-निर्णय (४)  
 नायक-भेद-निर्णय (५) दश-गुण-निर्णय (६) रीति-निर्णय (७) कृति निर्णय (८) शय्या-भाग-  
 निर्णय (९) अद्दुरा-निर्णय (१०) दोय-गुण-निर्णय ।

महाकाव्य के पाँचवें अङ्क में ज्ञात होता है कि इस 'श्रद्धारार्थरचन्द्रिका' के प्रयोक्ता  
 विजयकीर्ति के निष्पद्य हैं । किन्तु इन विजयकीर्ति के सम्बन्ध में साधनाभाय

संसृजो मेव च्यामी शंस्रत्तापमिन्नमभः ।  
 विशिष्टान्ययतोऽप्यरमं भेषणेऽथमसंभृतः ॥२८॥  
 धनसृजा सुभूमिषा महि नान्यत्रुजये ।  
 सुयसुनिर्मिताहो मन्त्रान्नुन्नरीत्यमे ॥२९॥  
 शंस्रत्तां त्रिभुजात् ततोहि परमं त्रयः ।  
 गतो दुष्कृतिनाजः श्रावतो हि परमं गुणम् ॥३०॥  
 सुखं प्राप्नुवन्नि मयैऽपि जीया दुग्धं न जातुगिष्य ।  
 तन्मन्त्रसुरैपिगो शंजाः संस्कारायाभिन्नमनाः ॥३१॥  
 शौचमात्राग्यान्पि संस्कार इति भाषितः ।  
 अमादेय यद्विदुःशिरुदिता गृहचारिणाम् ॥३२॥  
 अतश्चुक्तिस्तु जीयानां भवेत्कालाद्विद्विभ्रता ।  
 एषा मुर्यापि संस्कारे याहासुसिखेदये ॥३३॥  
 शंस्रत्तादुन्नरीत्यस्तु विद्यमानापि पृथगे ।  
 सुभूमिलेपातोयादियातोऽनुत्पेदये ॥३४॥  
 देहहारविशुद्धिश्च म्नानमाचमनादिकम् ।  
 मृतकायुपशुद्धिश्च शौचमित्यत्र भाषितम् ॥३५॥  
 आचारो यद्गृहा प्रोक्तो गमांप्रानादिभेदतः ।  
 यद्व्यनेप्सादिदानान्तु शौचम्वर विधिगत्त्यने ॥३६॥  
 × × ×

ग.य भाग (पूर्व पृष्ठ २२, पंक्ति ४) —

अथ नत्या त्रिनाश्यामनघं विश्वेद्येदिनम् ।  
 ब्राह्मणाद्विद्विद्यर्णानामघभेदोऽभिधीयते ॥  
 इज्यादि कर्म घटने नाम्निश्रिति निरुच्यते ।  
 अघमाशौचशब्देनाप्येनदंवाभिलष्यते ॥  
 चतुर्विधं भवेदेतद्वार्तयादिविभेदतः ।  
 आर्तघं सांत्तिकं धानं तत्संस्पर्जमित्यपि ॥  
 धानघं पुणरजनि अतुष्ट्वेत्यभिधीयते ।  
 प्रहृतं विहृतं चेति स्त्रीणां तद् द्विविधं भवेत् ॥  
 मासे मासे समुद्भूतं प्रायः प्रहृतमुच्यते ।  
 द्रव्यरोगादिभिर्जातमकाले विहृतं रजः ।

शक ११६६ (ई० सन् १२६४) में इनका पुत्र प्रथम कामरायवंग राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इन्हीं की प्रेरणा एवं प्रार्थना से श्रीमान् कविवर विनयवर्णी जी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। उल्लिखित ये ऐतिहासिक बातें इनकी प्रतिपादित राजपरम्परा-वर्णन से भी अक्षर्या मिलती हैं। इस अलंकार-ग्रन्थ में गुण, राति, दोष एवं अलङ्कारादि के लक्षणों के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सभी अपने प्रेरक कामराय वंग के प्रसास-परक पत्रमय हैं। कवि के "श्रीवीर-नरसिंह-कामरायवंगनोन्द्रनरदि दुसभिमकीर्त्तिकामके शृङ्गारार्थ चन्द्रिकानामि अलङ्कारसंग्रह" इस अन्तिम वाक्य में भी उन राजा का प्रसास-परक काव्य लिखना ही सिद्ध होना है। कवि वर्णी जी प्रारम्भिक सात पत्र में सुप्रसिद्ध कन्नड कवि गुणवर्मा का भी स्मरण करना नहीं भूले हैं। इसी के प्रारम्भिक अ ग्रन्थ कई पत्रों से षण्वाडि की प्राचीन समृद्धि स्पष्ट भल्कती है। चारहव पत्र से कम्बराजवंग भी इस प्रांत का नामक रह चुका है—यह बात पुष्ट होती है। चारहव से १७व तक के पत्रों में वीरसिंह पांड्यवंग एवं कामराय की विशेष रूप से प्रसास की गयी है। वर्णी जी ने इस ग्रन्थ के कई पत्रों में छन्दोमंगल न हो इस लिहाज से 'श्रीराय' 'रायराट्' आदि सज्जित सकेतों के द्वारा ही अपने आश्रयभूत कामराय का उल्लेख किया है। १९व के पत्रगत "कादम्बवशा-जल्पगिसुधामयूख" इस कथन में तो यह वंगवंग 'गग' वंग न होकर 'कदम्ब' सा झल होता है—यह बात अक्षर विचारण्य है।

(२४) ग्रन्थ नं० २३४  
ख

## त्रैवर्णिकाचार

कथा—श्रीमद्भूमि

विषय—श्रीवकाचार

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १७ इंच

चौड़ाई ७ इंच

पत्रसंख्या ४६

प्रारम्भिक भाग—

अयोच्यते त्रिवर्णानां शौचाचारविधिष्वम् ।

शौचाचारविधिशास्त्रो देह संस्कर्तुमर्हसि ॥१॥

मधुगिरि तालुक में अङ्गुडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम शशकपुर रहा। यहाँ पर सल्ल नाम के सामन्त ने व्याघ्र से एक जैन मुनि की रक्षा करने के कारण पौयिसल्ल (होयिसल्ल) नाम प्राप्त किया। विद्वानों का कहना है कि प्रारंभ में यह वंश पहाड़ी था, पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी बल्लाल ने अपनी राजधानी शशकपुर से वेल्डूर में हटा ली। द्वारसमुद्र (हल्लेवीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय में होयिसल्ल नरेशों का प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य भी सब उनके अधीन हो गया था और उन्होंने कई प्रदेशों को विजय-द्वारा हस्तगत कर लिया था। प्रारंभ में विष्णुवर्द्धन जैन रहा, किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। पर फिर भी इनकी तथा इनके परिवार-वर्ग की जैनधर्म ने सदा सच्ची सल्लानुभूति रही। होयिसल्ल राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था, बाद नरसिंह के पुत्र श्रीरवल्लाल के समय में यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। यह वंश सदा से जैनियों का प्रधान पृष्ठ-पौषक रहा।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्ता ब्रह्मसूरी जी ने 'इत्र-त्रयपुरी' लिखा है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वंश की राजधानी सिर्फ तीन स्थानों में ही सिद्ध होती है; जिनके नाम क्रमशः (१) शशकपुर (२) वेल्डूर (३) और द्वारसमुद्र या हल्लेवीडु हैं। पता नहीं कि सूरी जी द्वारा निर्दिष्ट इत्रत्रयपुरी कहाँ थी और कब इस राज्य के अन्तर्भूत हुई। संभव है कि द्वारसमुद्र को ही इन्होंने इत्रत्रयपुरी लिखा हो। क्योंकि एक जमाने में यह द्वार-समुद्र जैनियों का केन्द्र सा बन गया था। बल्कि कहा जाता है कि उन दिनों वहाँ साढ़े सात सौ भव्य जिनमन्दिर थे और वैष्णव धर्म स्वीकार करने के बाद विष्णुवर्द्धन ने ही इन भव्य मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया। वहाँ के जिनमन्दिरों के ध्वंसावशेष से भी यह पता चलता है कि उल्लिखित घटना वास्तविक है। अब हल्लेवीडु में केवल आदिनाथ, शान्तिनाथ एवं पार्ष्वनाथ तीर्थङ्कर के तीन ही मनोत्र मन्दिर रह गये हैं, जो भारतीय शिल्पकला के आदर्शभूत बने हुए हैं। कवियर हस्तिमल्ल जी के सुपुत्र निर्दिष्ट पार्ष्वपरिडित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल (होन्नूह) में जा बसे। अवशिष्ट दो भाई भी अन्यान्य स्थानों में जाकर बस गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के सुपुत्र इस त्रैवर्णिकाचार ग्रन्थ के प्रणेता परिडित ब्रह्मसूरी जी हैं।

सूरी जी ने पूर्वोक्त प्रतिष्ठाग्रन्थगत अपनी वंश-प्रशस्ति में अपने पूर्वजों का निवास-स्थान पाराज्य देशान्तर्गत 'गुडिपत्तन द्वीप' बतलाया है। वर्तमान तंजौर जिलान्तर्गत 'नगुडि' का ही यह प्राचीन 'गुडिपत्तन द्वीप' होना बहुत कुछ सम्भव है। मालूम होता है कि

पालजे श्यहमानौचं तद्रजोर्दनात्परम् ।  
 अर्धरात्रान्परं तच्चेन्द्रमातापयमिष्यते ॥  
 × × ×

अन्तिम भाग —

प्रसवारो गृह्म्यथ याणम्यथ भित्तुः ।  
 इत्याधमास्तु चन्वारो जैनानामागमोदिता ॥

तत्रोपनयनारम्भ समायर्तनपर्यन्तमुपनयनप्रसारी। छत्रोमेयां कुशाणो जुगुप्सया शुष्ममले  
 तन्निवृत्त आत्म्यनप्रसवारी। रिवाहदुरंके निपुरनरिवशात्प्रमादिनिवाशृत्तो। गृह्म्य ।  
 परिप्रहानुमरयुधिःशनिवृत्ता याणमस्या। धैरावशक्तिनो महामती भित्तु। इत्याधम-  
 क्षणम्।

भार्याचारवार्धितुद्ध मभ्यष्टुष्टुप्रमताभिराम (१)  
 मय सेव्यो धर्मिर्भिर्यमान यादश्यतो (१) प्रहमौरुशस्पद तन् ॥

इति प्रसृष्टि विरचिते जिनसंहितासारोद्गारे प्रतिष्ठा (१) तिलकनामिने प्रैयणिकाचारग्रन्थे  
 (संप्रदे) गर्माधानादिविवाहपर्यन्तकर्मणां मन्त्रप्रयोगो नाम पञ्चमं पर्वं समाप्तम् ।

इस प्रैयणिकाचार के कलां धर्मप्रसृष्टि हैं। इनमें इन का कोई आत्मपरिचय नहीं है,  
 किन्तु इहाँ के प्रयोग 'प्रतिष्ठासारोद्गार' नामक प्रतिष्ठा-ग्रन्थ में जो इनका परिचय उपलब्ध  
 होता है—यह इस प्रकार है—

पायड्य देश में गुडिपत्तन नामका एक द्वीप था। वहाँ का शासक पायड्य नरेन्द्र  
 था। यह वहा ही धर्मात्मा, शूरवीर, कला-कुशल और पवित्रतसेयो रहा। वहाँ वृषभ  
 तीर्थद्वार का एक मनोह रज पत्र सुर्यप्रदित मन्दिर था; उसमें विशालनन्दी आदि अनेक  
 परम विद्वान् मुनिगण निवास करते थे। इसके बाद यह भागे सुयसिद्ध पुण्य-प्रणेता  
 जिनसेनाचार्य की आचार्य-परम्परागत गोरिन्दमठ को ही अपना पूर्वपुरुष व्यवकर निम्न-  
 रीति से अपनी वंशपरम्परा का उल्लेख करते हैं—

उक्त गोरिन्दमठ के श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देववल्लभ उदयभूषण, हस्तिमल्ल और  
 वर्द्धमान नाम के छ लडके थे। प्रख्यात कवि हस्तिमल्ल का पुत्र पवित्रत पार्व जी थे।  
 यह अपने पिता के समान ही यशस्वी, धर्मात्मा पत्र ग्राह्यमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे यह  
 पार्व पवित्रत पशिष्ठ वाश्यपादि गोत्रज अपने वन्युवाच्यरो के साथ होयिस्सल देश में  
 जाकर रहने लगे। यह होयिस्सल राजराज पथिमी घाटी की पहाडिओ में कडू जिले के

मधुगिरि तालुक में अङ्गडि नामक स्थान से प्रादुर्भूत हुआ था। इसीका प्राचीन नाम प्रशकपुर रहा। यहाँ पर सल नाम के सामन्त ने व्याघ्र से एक जैन मुनि की रक्षा करने के कारण पोयिसल (होयिसल) नाम प्राप्त किया। विद्वानों का कहना है कि प्रारंभ में यह वंश पहाड़ी था, पीछे विनयादित्य के उत्तराधिकारी बल्लाल ने अपनी राजधानी प्रशकपुर से बेलूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हल्लेवीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय में होयिसल नरेशों का प्रभाव बहुत ही बढ़ गया था। इसी समय गंगवाडि का पुराना राज्य भी सब उनके अधीन हो गया था और उन्होंने कई प्रदेशों को विजय-द्वारा हस्तगत कर लिया था। प्रारंभ में विष्णुवर्द्धन जैन रहा, किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। पर फिर भी इनकी तथा इनके परिवार-वर्ग की जैनधर्म से सदा सच्ची सहानुभूति रही। होयिसल राज्य पहले चालुक्य साम्राज्य के अन्तर्गत था, बाद नरसिंह के पुत्र श्रीवल्लाल के समय में यह राज्य स्वतन्त्र हो गया। यह वंश सदा से जैनियों का प्रधान पृष्ठ-पौषक रहा।

उल्लिखित राज्य की राजधानी ग्रन्थकर्त्ता ब्रह्मसुरि जी ने 'कन्न-वयपुरी' लिखा है। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से इस वंश की राजधानी सिर्फ तीन स्थानों में ही सिद्ध होती है; जिनके नाम क्रमशः (१) प्रशकपुर (२) बेलूर (३) और द्वारसमुद्र या हल्लेवीडु हैं। पता नहीं कि सुरि जी द्वारा निर्दिष्ट कन्नवयपुरी कहाँ थी और कब इन राज्य के अन्तर्भूक्त हुई। संभव है कि द्वारसमुद्र को ही इन्होंने कन्नवयपुरी लिखा हो। क्योंकि एक जमाने में यह द्वार-समुद्र जैनियों का केन्द्र सा बन गया था। बल्कि कहा जाता है कि उन दिनों यहाँ साढ़े सात सौ भव्य जिनमन्दिर थे और वैष्णव धर्म स्वीकार करने के बाद विष्णुवर्द्धन ने ही इन भव्य मन्दिरों को तहस-नहस कर दिया। वहाँ के जिनमन्दिरों के ध्वंसावशेष से भी यह पता चलता है कि उल्लिखित घटना वास्तविक है। अब हल्लेवीडु में केवल आदिनाथ, ज्ञान्तिनाथ एवं पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के तीन ही मनोह मन्दिर रह गये हैं, जो भारतीय शिल्पकला के आदर्शभूत बने हुए हैं। कविवर हस्तिमल्ल जी के सुपुत्र निर्दिष्ट पार्श्वपरिडत के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ और इनके परिवार पीछे हेमाचल (होन्नूर) में जा बसे। अवशिष्ट दो भाई भी अन्यान्य स्थानों में जाकर बस गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और इन्हीं के सुपुत्र इस त्रैवर्णिकाचार ग्रन्थ के प्रणेता परिडत ब्रह्मसुरि जी हैं।

सुरि जी ने पूर्वोक्त प्रतिष्ठाग्रन्थगत अपनी वंश-प्रशस्ति में अपने पूर्वजों का निवास-स्थान पाराज्य देशान्तर्गत 'गुडिपत्तन द्वीप' बतलाया है। वर्तमान तंजौर जिलान्तर्गत 'दीपनगुडि' का ही यह प्राचीन 'गुडिपत्तन द्वीप' होना बहुत कुछ सम्भव है। मालूम होता है कि

लेखक की दृष्टा से ही 'दीपन' का 'दीप' लिखा गया है। क्योंकि वहाँ पर दीप का होना किसी तरह से सिद्ध नहीं होता। इस स्थान में जैनियों का प्रभाव अच्छा रहा है।

जैन समाज के कुछ विद्वान् इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानने के लिये सहमत नहीं हैं। क्योंकि उनका कहना है कि जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल धाद, तर्पण, गो-दान आदि का वातें इस में विधिरूप में पायी जाती हैं। उन विद्वाना का कहना है कि प्रद्वसूरि जी के मूल पूर्वज हिन्दू धर्मावलम्बी थे—इससे इनके रचे ग्रन्थ पर हिन्दुत्व की छाप पड गयी है। कुछ विद्वान इस आक्षेप का उत्तर यह देते हैं—प्रत्येक धर्म पर देश, काल आदि का विप्रभाव पडे नहीं रह सकता, इसलिये इस अनिवाय्य नियमानुसार बहुत कुछ समझ है कि बहुसंख्यक हिन्दू समाज में अपनी सत्ता कायम रखने और हिन्दुओं से सहानुभूति प्राप्त करने के लिये तात्कालिक कुछ जैनग्रन्थ-कर्त्ताओं को कुछ आचार ग्रन्थों में आपडम के रूप में उनका उर्देश जैनधर्मके अनुकूल बता कर स्थान देना पडा होगा।

(२५) ग्रन्थ नं० ३२०  
ख

## रत्नमञ्जूषा

कर्त्ता— X

विषय— छन्द

भाषा— संस्कृत

सम्पाई ८। इ०

चौडाई ६।।। इ०

५लसल्या ६५

प्रारम्भिक भाग—

यो भूतभ प्रभउर्ध्वयधर्चवेर्दा देवास्तुरन्द्रमुकुटाचिंतपाद्पन्न ।

विद्यानदीप्रभवपरित पर पव त क्षीणकपयगण प्रणमामि वीरम् ॥

मायाका—मायाका इत्यस्य सर्गगुणिकस्य भाकार रुक्षा भवति ककारो य स्वरोन्त्यस्तदन्तस्य यवन् चेतियवनान् । सूत्रिमुलिया इत्याकारस्य भद्रगिराह्यिकि इति ककारस्य । अथैव माया इति गुणद्वयस्य यकार रुक्षा भवति यवन्नञ्च तदन्तस्येति यवनान्प्रेमापिष्टनिति । पुनश्च यवैज सा इति गुणत्रयस्य मकार रुक्षा भवति । यवन्नञ्च

तदन्तस्येति वचनादेव । म इति अक्षरे एकस्मिन्नप्याद्यन्तवद्भावात् । संयोगे नपिमिति ।  
अत्राह—नत्याकारादथस्तेपामेवाक्षराणां संज्ञा यथा वृद्धिरादौजिति वृद्धिसंज्ञा तेषामेवाक्षराणां  
इति न तद्रूपसंज्ञाकरणे प्रयोजनाभावात्तन्मात्राणाम् । यान्यत्र तेषु त्रिकेष्वक्षराण्युपदिष्टानि  
तेषां संज्ञाकरणानि प्रयोजनमितितन्मात्राणां सर्वासां संज्ञास्ताः प्रत्ययगन्तव्याः । अथवा  
शालिनि मालयेदित्यत्र छेदवचनं ज्ञापकमन्येषां इति तन्मात्राणां संज्ञा इति । यदि तेषामेव  
संज्ञा मायाका इति छेदवचनमनर्थकं भवति तस्मात्समावाकरणमेव ।

×

×

×

×

मध्य भाग (पृष्ठ ४६ पंक्ति ३०)

उपेन्द्रवज्रा ङे—यदि ङे इति न्यासो भवति, भवति उपेन्द्रवज्रा नाम ।

उपेन्द्रवज्रायुतपाण्डवेषु स्थितेष्वपि ख्यातपराक्रमेषु ।

पुराभिमन्युं यदि चेज्जयेनां जयद्रथो रक्षति कङ्कमन्यः ॥

इन्द्रमाला द्वयम्—यदीन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रे सदैकस्मिन् श्लोके भवतः, भवति इन्द्रमाला नाम ।

अम्लानमाला सुरसुन्दरीभिः वृत्तेन्द्रमाला च्यवते दिवश्चेत् ।

कालेन नार्या इव भुक्तमाला मर्त्या वयं किं जलबुद्बुदाभाः ॥

दोधकं लुपे—यदि लुपे इति न्यासो भवति, भवति दोधकं नाम ।

कालविधावित्र नाटकवृत्तं दर्शयितुं भुवि सर्वजनेभ्यः ।

अम्बररंगमसौ गिरिकूटात् सूर्यनटः प्रविशन्नत्रिभ भाति ॥

रथोद्धता तिलौ—यदि तिलाविति न्यासो भवति, भवति रथोद्धता नाम ।

सर्वभावविधितत्वदर्शिनः सर्वसत्त्वहितधर्मदेशिनः ।

अर्हतोऽहमघराशिनाशिनः संस्तुवे त्रिभुवनप्रकाशिनः ॥

स्वागता तिले—यदि तिले इति न्यासो भवति, भवति स्वागता नाम ।

∴ धर्मतीर्थकरमुख्य नमस्ते नाथ नष्टभववोज नमस्ते ।

वद्धसर्वजनवृत्त नमस्ते हेमनाभजिनमान नमस्ते ॥

×

×

×

×

अन्तिम भाग :—

एकद्वयादिलगक्रियांकसमसंख्यानेषु कोष्ठान्तरे-

ष्वेकाद्वान्दिगुणानथो विरचयेत्तांश्वोर्ध्वमेकौनकान् ।

इत्यन्तावधिमेरुरेप महितः स्याद्धर्ममानाह्वयः

छन्दःस्वेकलगादिवृत्तजननस्थानं त्विह क्षायते ॥१॥



एक इन्द्रादिलग्नियात्तगणनामानप्रमाणालये-  
 मंरुद्र-माधरवद्विरुच्य खटिकोत्कार्णैरथाद्यालये ।  
 वृत्त म्यस्य तदादिम द्विगुण्यस्तस्याप्यध' स्थापये-  
 देकोनेन तद्वोपरि परिलिखेदेवं हि मेरुविद्या ॥१०॥

खण्डमेरुप्रस्तारो यथा—

सैकामेकगणोज्ज्वलामभिमतच्छन्दोऽन्तरागारिका-  
 मेकां धीणिमुपक्षिपप्रधरतोऽन्वेषकहीनाश्च ता ।  
 ऊर्ध्वं द्विद्विगुण्यस्तमेहनमधोध स्थानकेष्वालिखे-  
 देकच्छन्दसि खण्डमेरुमल' पुनागचन्द्रोदित ॥११॥

एतत्प्रोक्तमेष प्रस्तारे कृते विवक्षितद्वन्द्वम लग्नियया सह तत् पूर्वस्थितसकल-  
 छन्दसा लग्नियया समां समायान्तीत्यर्थे ॥

इनके नीचे प्रस्तार के तीन कोष्ठक भी हैं।

दिगम्बर जैन-साहित्य-भाष्यकार म छन्दोप्रथ-सम्बन्ध। अतिनसेन के छन्दशास्त्र  
 वृत्तशास्त्र एवं छन्दप्रकाश, आशाधर के वृत्तप्रकाश, वद्वर्णीति के छन्दकोष (प्राकृत) एवं  
 धाम्पद के प्राकृतपिड्डल सूत्र ये ही नाम मिलते हैं। परन्तु इन म अभी तक कोई ग्रन्थ  
 मुद्रित नहीं हुआ है। अब रही प्रस्तुत पुस्तक 'रत्न-मञ्जूषा' की बात। प० नाथूराम जी  
 प्रेमी के द्वारा सङ्गृहीत 'दिगम्बर जैनग्रन्थकत्ता' और उनके ग्रन्थ 'इस ग्रन्थतात्परिका म  
 इसके कर्ता हेमचन्द्र कवि बतलाये गये हैं। परन्तु इस छन्दोप्रथके अन्तिम भाग के अन्तिम  
 श्लोकान्तर्गत 'पुनागचन्द्रोदित' इस वाक्य से तो ज्ञात होता है कि पुनागचन्द्र या  
 नागचन्द्र ही इसके प्रणेता हैं। प्रेमी जी के कथनानुसार अगर इस 'रत्नमञ्जूषा' के रचयिता  
 हेमचन्द्र कवि होते तो 'पुनागचन्द्रोदित' के स्थान पर बड़ी आसानी से 'धीहिमचन्द्रोदित'  
 लिख देते। क्योंकि ऐसा करने से छन्दोभंग का उर्ध्वं जरा भी भय नहीं रह जाता था।  
 भाष्यनाम्न से इस समय इसके कर्ता के बारे में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका।  
 यदि थोड़ी देर के लिये अर्थात् प्रेमी जी ने किस आधार पर इस वा कर्ता हेमचन्द्र कवि  
 लिखा है—यह बात जब तक स्पष्ट नहीं होती तब तक के लिये नागचन्द्र को ही इसका  
 प्रणेता माना जाय तो महाकवि धनञ्जय-रत्न विद्यापदार-स्तोत्र के संस्कृत टीकाकार कवि  
 नागचन्द्र० की ओर मेरी दृष्टि कुछ कुछ आवृष्ट हो जाती है। पर यह एक अनुमान

मात्र है। जब तक इस सम्बन्ध में कोई सबल प्रमाण नहीं मिलता है तबतक इसे कोई मानने को तैयार क्योंकर हो सकता है ?

अब रहा इस छन्दोग्रन्थ का विषय। यह ग्रन्थ छेपे छेपे आठ अध्यायों में विभक्त है। इस प्रति की मैसूर राजकीय 'प्राच्यपुस्तकागार' से मैंने ही कन्नड लिपि से नागराक्षर में प्रतिलिपि कराई थी। इसके अष्टम अध्याय का कुछ अंश लुप्त सा ज्ञात होता है। इस लुप्तांश के बाद ही तीन पृष्ठों में मैसूरसम्बन्धी प्रस्तार के पद्यबद्ध लक्षण सकोष्टक दिये गये हैं। कवि ने इस ग्रन्थ में प्रायः प्रत्येक छन्द पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसके छन्दो-लक्षण पिंगलसूत्र के समान सूत्रमय है जो नितांत स्वतन्त्र है। छन्दों के दिये गये दृष्टांतों में यत्र-तत्र जैनत्व की छाप सुस्पष्ट प्रतिभासित होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस के कर्ता काव्यशास्त्र के एक उद्भट्ट मर्मज्ञ थे। इसकी अन्यान्य प्रतियाँ जहाँ तहाँ से अन्वेषण एवं मिलान कर इस रत्नभूत 'रत्नमंजूषा' के प्रकाशन से दिग्भ्रमर जैनसाहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति हो जायगी। अन्यान्य पुस्तक-प्रकाशन-संस्थाओं और जैन परीक्षालयों को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। क्योंकि आजतक सभी जैन परीक्षालयों के पाठ्य ग्रन्थों में जैनेतर छन्दोग्रन्थ ही समाविष्ट होते आ रहे हैं।

(२६) ग्रन्थ नं० २३७  
ख

## सरस्वतीकल्प

कर्ता—मलयकीर्ति

विषय—मंत्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६॥ इञ्च

चौड़ाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या ७

प्रारम्भिक भाग—

वारहअंगं गिज्जा दंसणनिलया चरित्तवट्टहरा ।

चउदसपुव्वाहरणा ठवे दग्गाय सुददेवी ॥

आचारशिरसं सूत्रकृतवक्त्रां ( सरस्वतीं ) सकण्ठिकाम् ।

स्थानेन समयोद्भव ( स्थानांगसमयांघ्रि तां ) व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ॥

धाम्देवतां शान्तकपोपासकाभ्ययनस्तनीम् ।  
 अन्तर्दृशसन्नामिमनुत्तरवगांगताम् ॥  
 सुनितम्बां सुजघनां प्रश्रव्याकरणाधिताम् ।  
 विपाकसूत्रदृष्टयचरणां चरणाभ्यराम् ॥  
 सम्यक्तयतिलकां पृथ्वचतुर्दशविभूषणाम् ।  
 तावत्प्रकीर्णकोत्रीर्णाचारुपत्राङ्कुरधियम् ॥

x                      x                      x

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ३, पंक्ति ७) —

स्याद्वादकल्पतममूलविराजमानां रत्नत्रयाम्युज्जसरोवररत्नहंसीम् ।  
 अद्भुतकीर्णकचतुर्दशपूर्यकायामास्रायवाद्भयधूमहमाङ्गशामि ॥

शारदाभिमुखीकरणम् —

अविरलगन्महौघा प्रक्षालितसकलभूतलकलद्वा ।  
 मुनिभिरुपामिततीर्था सरस्यती हरतु मो दुरितम् ॥  
 ॐ ह्रीं धीं मन्त्ररूपे विदुषजननुते देवि देवेन्द्रवन्द्ये  
 चञ्चन्द्रावदाने क्षपितकलिमठे हारनीहारगौरि ।  
 भीमे भीमादृहासे भगभ्यहरणे भौरवि भीरु धीरे  
 ह्रीं ह्रीं हूं कारनादे मम मनसि सदा शारदे तिष्ठ देवि ॥

x                      x                      x                      x

अन्तिम भाग —

परमहंसहिमाचलनिर्गता सकलपातरुपंकविश्रिता ।  
 अमितबोधपथपरिपूरिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्यती ॥  
 परममुक्तिनियाससमुग्ध्वलं कमलयासृतवासमनुत्तमम् ।  
 वहति या यदनाम्युहं सदा दिशतु मेऽभिमतानि सरस्यती ॥  
 सकलवाद्भयमूर्तिधरा परा सकलसत्वहितैकपरायणा ।  
 .....शारदनुशुभ्रुक्षेत्रिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्यती ॥  
 मलयबन्धनचन्द्ररजकणा प्रकरशुभ्रदुकूलपद्मावृता ।  
 दिशद्दहमकहारविभूषिता दिशतु मेऽभिमतानि सरस्यती ॥  
 मलयकीर्तिहृतामितिर्हस्तुति (पठति यो) सततं मतिमाश्रुतः ।  
 विजयकीर्तिगुहृतमादपात् स मनिक्वल्पताफलमश्नुते ॥

इस 'सरस्वतीकल्प' के अन्तिम पद्य से इसके रचयिता मलयकीर्त्ति ज्ञात होते हैं। साथ ही साथ इसी पद्य से यह भी विदित होता है कि यह मलयकीर्त्ति प्रायः विजयकीर्त्ति-गुरु के शिष्य हैं। पर "विजयकीर्त्तिगुरुहनमादरात्" इस चतुर्थ चरण का सम्बन्ध किसके साथ है—यह अभी ठीक नहीं समझ पड़ता। बहुत कुछ संभव है कि इस श्लोक की प्रतिलिपि करने में लेखक ने भूल की हो। इसलिये जबतक इसकी शुद्ध प्रति नहीं मिलती तबतक सन्देह-निवृत्ति होती नहीं दीख पड़ती।

अस्तु, 'पपिप्राफिका कर्नाटिका' जिह्व ८ के शिलालेख नं० १०४ में एक विजयकीर्त्ति-गुरु का उल्लेख मिलता है। मन्त्रकीर्त्ति के द्वारा प्रतिपादित विजयकीर्त्तिगुरु यदि यहीं हों तो उक्त शिलालेख के ही आधार से इनका समय सन् १३५४ अर्थात् १४ वीं शताब्दी सिद्ध होता है।\* अतः इस सरस्वतीकल्प के रचयिता मलयकीर्त्ति का समय भी लगभग यही होना चाहिये। अस्तु, अर्हदास-रचित भी एक 'सरस्वतीकल्प' सुना जाता है। वह इससे भिन्न होना चाहिये। इस कृति के आदि और अन्त में 'सरस्वतीकल्प' लिखा मिलता है। मन्त्रशास्त्र में कल्प का लक्षण यों बतलाया है—जिन ग्रन्थों में मन्त्र-विधान, यन्त्र-विधान, मन्त्र-यन्त्रोद्धार, बलिदान, दीपदान, आह्वान, पृजन, विसर्जन और साधनादि बातों का वर्णन किया गया हो वे ग्रन्थ 'कल्प' कहलाते हैं।† प्रधानतया इस प्रस्तुत कृति को एक मंत्र-स्तोत्र ही कहना चाहिये। फिर भी यन्त्रोद्धार, जाप्य एवं होममन्त्र आदि का इसमें उल्लेख पाया जाता है—इसी से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता ने कल्पनाम को सार्थकता समझी होगी। मंत्रशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये इसके निम्नलिखित कतिपय श्लोक उपयोगी हैं :—

“जाप्यकाले नमःशब्दं मन्त्रस्थान्ते नियोजयेत् ।  
 तदन्ते होमकाले तु स्वाहा शब्दं नियोजयेत् ॥  
 सवृन्तकं समादाय प्रसूनं ज्ञानमुद्रया ।  
 मन्त्रमुच्चार्य सन्मन्त्री मुञ्चेदुच्छ्वासेरचनात् ॥  
 महिषाक्षगुग्गुलेन प्रविर्निर्मितचणकमात्रवदिकार्णा ।  
 मधुरद्वययुक्तानां होमैर्वाग्नीश्वरी वरदा ॥  
 दिक्कालमुद्रासनपङ्क्तानां भेदं परिच्छेद्य जपेत् स्त्र. शुक्री ।  
 न चान्यथा सिष्यति तस्य मन्त्रः कुर्वन् सदा तिष्ठतु जाप्यहोमम् ॥

\* देखें—'मद्रास व मैसूर प्रांत के प्राचीन जैन स्मारक' पृष्ठ ३११

† मन्त्रशास्त्र के विषय में विशेष बात जानने के इच्छुक विद्वान् भास्कर भाग १, किरण ३ में प्रकाशित 'जैतमन्त्र-शास्त्र' शीर्षक लेख देखें।

छाद्गसहस्रजाप्यैर्दग्नाद्गोमेन सिद्धिमुपयाति ।  
 मन्त्री गुग्गुलुमात्रात् शतशस्त्रिभुवने सार ॥  
 अकारोऽनन्तर्वायात्मा रेफो विश्वाय शौरुक् ।  
 हकारः परमो बौधो त्रिन्दु स्यादुत्तम सुखम् ॥  
 नादो विश्वात्मक प्रोक्तो त्रिन्दु स्यादुत्तम पदम् ।  
 कलापीयूषनि रयन्दीत्याहुर्ध्वं जिनोत्तमा ॥”

इसकी रचना साधारणतया अच्छी है ।

(२७) ग्रन्थ नं० २४१

## वज्रपंजराधना-विधान

कर्ता— \*

विषय— धाराधना

भाषा— संस्कृत

लन्वाई ६॥ इन्च

चौडाई ६ इन्च

पत्रसंख्या ६

प्रारम्भिक भाग —

स श्रुत्याभुधिव इ ध-शर्क चन्द्रकान्तसकाशम् ।

चन्द्रमज्जिनमवे कुन्देन्दुस्कारकीर्तिशान्तोज्ञानम् ॥

ॐ ह्रीं चन्द्रमज्जिनदेवाय नमः—

तीयाधनीतैर्धनमारजितै पानप्रपायै सुसृणापुषेने ।

चन्द्रमभाभास्करदिग्देह महामि चन्द्रमभलाधनायम् ॥

ओ ह्रीं चन्द्रमज्जिनदेवाय नमः निर्गामातिश्वाहा ।

सुगन्धसारैर्धनगन्धसारै निताम्रभाटै रितधामगौरै ।

चन्द्रमभाभास्करदिग्देह महामि चन्द्रमभनीर्धनायम् ॥ गन्धम्

शास्त्रयज्ञतैरसतमोक्षान्धमीषदास्यिनेपयत्सकतै ॥

चन्द्रमभाभास्करदिग्देह महामि चन्द्रमभनीर्धनायम् ॥ अक्षतान

मध्य भाग (परपृष्ठ ३, पंक्ति ३)

इत्थं श्रीपद्मनन्दिप्रवचनवदि (?) भिर्यन्त्रराजप्रवृत्तौ  
 वृद्धाराराधितं यो विधिवद्विह सदा पूजयन्त्यादरेण ।  
 तैर्भव्यैर्धर्मनिष्ठैरमृतपदसुखं प्राप्नुमिच्छद्भिरारात्  
 ध्यानं निःश्रेयसात् त्रिभुवनमहिता प्राप्यते मोक्षलक्ष्मीः ॥

× × × ×

श्रुतिम भाग :—

यस्यार्थं क्रियते पूजा सुप्रीतो नित्यमस्तु ते ।

ॐ ह्रीं रं रं रं रं ज्वालामालिनि हां आं क्रौं क्षीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ब्रूं द्रां द्रीं ह्यलवरयूं हां ह्रीं हं ह्रीं हः  
 ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल धग धग धूं धूं धूर्ध्राधकारिणि शीघ्रं यन्त्राधिपतये देवदत्तस्य  
 सर्वप्रदोद्याटनं कुरु कुरु हूं फट् नमः स्वाहा । मन्त्रपुष्पम् ।

इस आराधना-विषयक दृष्टकलेवर पुस्तिका में सर्वप्रथम चन्द्रप्रभ प्रतिविम्ब का अभि-  
 पेक, भूमिशुद्धि, पंच-गुरुपूजा, चत्वारि अर्घ्य का विधान बतलाया गया है । इसके बाद  
 चन्द्रप्रभ तीर्थङ्कर की पूजा उनकी स्तुति, श्याम यज्ञ, ज्वालामालिनी यज्ञी की पूजा एवं पंच-  
 परमेष्ठी की पूजा दी गई हैं । आगे वज्रपंजरयन्त्र का फल, यन्त्र या यन्त्र की अधि-  
 ष्ठात्री देवी ज्वालामालिनी और अष्टमातृका की पूजा निर्दिष्ट है । फिर यन्त्रस्थ प्रत्येक  
 पिण्डान्तर्गत बीजाक्षरोंका आवाहन, स्थापन एवं अर्घ्यादि वर्णित है । अनन्तर ब्रह्म यज्ञ,  
 पद्मावती यज्ञी की पूजा तथा अन्त में मन्त्रपुष्प का मन्त्र दिया गया है । यन्त्रका फल  
 ग्रह, रोग, महामारी, चौरादि की शान्ति बतलायी गयी है ।

इस में ग्रन्थकर्ता का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है । किन्तु मध्य भाग-गत श्लोक से ज्ञात  
 होता है कि इसके रचयिता श्री पद्मनन्दी हैं । मगर पता नहीं कि यह पद्मनन्दी कौन हैं ।  
 क्योंकि इस नाम के अनेक ग्रन्थकार हुए हैं । 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ'  
 नामक ग्रन्थ तालिका में एक पद्मनन्दी ( भट्टारक ) वि० सं० १३६२ का उल्लेख मिलता  
 है, साथ ही साथ उनकी कृतियों में 'आराधनासंग्रह' नामक एक आराधनाग्रन्थ का जिक्र  
 भी उपलब्ध होता है । बहुत कुछ संभव है कि यही पद्मनन्दी भट्टारक इस 'वज्रपंजरा-  
 राधनविधान' के रचयिता हों । मल्लिपेण और इन्द्रनन्दि के नाम से भी 'वज्रपंजराधना  
 पूजा' प्राप्त होती है ।

(२८) ग्रन्थ नं०  $\frac{२४२}{६}$ 

## मृत्युंजयाराधना-विधान

कृत्वा— ×

विषय—आराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च

चौडाई ६ इञ्च

पत्रसख्या ।

प्रारम्भिक भाग—

चन्द्रनाथध्रुतगणधरमृत्युञ्जययन्त्रमित्येतेषामभिषेकं कृत्वा भूमिशुद्धिचत्वार्यर्घ्यानन्तं  
चन्द्रप्रभपूजा ।

चन्द्रपुराम्बुधिचन्द्र चन्द्रार्क चन्द्रकान्तसकाशम् ।

चन्द्रप्रभजिनमचे बुन्देन्दुस्कारकोर्तिकान्ताशान्तम् ॥

नानामखिपचयभासुरकण्ठपीठभृ गारजालकलितामलविःपतौथै ।

ससारतापविनिवारणहेतुभूत श्रीचन्द्रनाथपदपद्मयुग यजेऽहम् ॥ (जलं निः)

नाकाङ्गनाकरसरोरुहमध्यप्रतिकपूरकुङ्कुमविमिश्रितदिव्यगन्धै ।

मुक्तोपमानवरगन्धरमासमेत श्रीचन्द्रनाथपदपद्मयुग यजेऽहम् ॥ (गन्धं निः)

×

×

×

मध्य भाग (परपृष्ठ ३, पंक्ति ७)---

यस्यार्थं क्रियते पूजा सुप्रीतो विन्यमस्तु ते ।

चन्द्रोञ्जली चक्रशपासिपाशां धामत्रिशूलेषु ऋपासिहस्ता ।

धीज्यालिनीं सार्धं धनुश्शतौघजिनानतां कोणगतां यजामि ॥

×

×

×

अन्तिम भाग—

अत्यन्तमर्चयानतदेवचन्द्रसूर्याभिवन्द्याप्रजिनेन्द्रमवा ।

ब्रह्माणिकाद्या 'उररीकृताभ्यां' सर्वापमृत्यु विनिवारयन्त्य' ॥

ॐ ह्रीं क्रीं अष्टमातृकाभ्यं पूर्णाभ्यं निर्यपामि स्याहा ।

अग्निमादिगुणैरन्वशांलिन्येत्यष्टमातर ।

यामकानां सुशान्त्येष सुप्रसन्ता सञ्जन्तु साः ॥

इष्टप्रार्थनाय पुष्पाञ्जलिः । ॐ नमो भगवते :देवाधिदेवाय सर्वोपद्रवविनाशनाय सर्वा-  
पमृत्युञ्जयकारणाय सर्वमन्त्रसिद्धिकराय ह्रीं द्रीं क्रीं अस्य देवत्तस्य सर्वापमृत्युं घातय घातय  
आयुष्यं वर्द्धय वर्द्धय मां वं हः पः हः भर्षीं धर्षीं हं सः असिआउस्ता अर्हन्मः स्वाहा । १०८  
मन्त्रपुष्पावर्चनम् ।

इस 'मृत्युञ्जयाराधना' के प्रारंभ में चन्द्रनाथ, श्रुत, गणधर एवं मृत्युञ्जय यन्त्र का  
अभियेकपूर्वक भूमिशुद्धि, चत्वारि अर्घ्य तथा चन्द्रग्रह स्वामी की पूजा अङ्कित की गयी है ।  
वाद् श्यामयन्त्र, ज्वालामालिनी यन्त्रों की पूजा दी गयी है । इसके पश्चात् मृत्युञ्जय यन्त्र  
में लिखे जानेवाले बीजाक्षरोंके क्रमादि वतलाये गये हैं । साथ ही साथ इस यन्त्र की पूजा  
विधि भी निर्दिष्ट है । सर्वान्त में अष्टमातृका की पूजा देकर यह कृति समाप्त की  
गयी है ।

जैनसमाज में एक ऐसा भी पक्ष है जो आराधना ग्रन्थों को उपेक्षा-दृष्टि से देखता है ।  
इसका कहना है कि ये जो आराधनायें हैं वे जैनियों के मौलिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं  
और कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुयायी जैनी इन आराधनाओं को मानने को तैयार नहीं  
हो सकते । साथ ही इसका यह भी कहना है कि ये आराधनायें जैनेतर आराधनाओं के  
अनुकरण हैं । किन्तु दूसरे पक्ष का यह कहना है कि एक गृहस्थ जैनी अपने परिवार में  
आये हुए आगन्तुक उपद्रवों की शान्ति के लिये अगर इन आराधनाओं से लाभ उठाता है तो  
अनुचित नहीं है । अन्यथा कर्मसिद्धान्त के एकान्त अनुसरण का परिणाम यही होगा कि  
कच्चे दिखवाले जैनी अपने ऊपर आई हुई असाताजन्य दुर्घटनाओं को दूर करने के लिये  
आर्त्तावस्था में अन्यान्य तामसिक देव-देवियों की आराधना आरंभ कर देंगे और यों करते-  
करते अन्ततः विषयगामी होने का उन्हें अवसर मिल जायगा । आज भी ऐसे अनेकों दृष्टान्त  
हम लोगों की नजरों से गुजरते रहते हैं । बहुत कुछ संभव है कि तमःप्रकृतिक देव-  
देवियों की और लौकिक सिद्धि के लिये दौड़ पड़ने और चंचलचित्त वाले जैनियों को  
स्वधर्म में स्थिर रखने की दूर दृष्टिता से ही कुछ ग्रन्थकर्त्ताओं ने आराधनाओं की सृष्टि  
की होगी । जब वे अपने धर्म का सैद्धान्तिक मर्म समझने लगेंगे तब तो आप ही आप ये  
आराधनायें इनसे दूर भाग खड़ी होंगी । व्यवहारिक दृष्टि से यह नीति लचर नहीं फही  
जा सकती क्योंकि पीने में सुविधाजनक होनेके लिये ही वैद्य कड़वी दवा में शक्कर मिला देते  
हैं । अस्तु अभी इसके कर्त्ता का पता आदि नहीं लग सका ।



(२६) ग्रन्थ नं० ३४३  
स

## सहस्रनामाराधना

कत— X

विव—अराधना

भाग—सस्कृत

सम्बार्ह ६। इष्व

शीडार्ह ६। इष्व

पत्रमस्या ६

प्रारम्भिक भाग—

सुखामपूजितं पूज्यं शुद्धं सिद्धं निरंजनम्  
 नमदाहरिनाशाय नमोमि शारद्व्यसिद्धये ॥ १ ॥  
 तद्वज्रज्ञां नमस्तुभ्ये शारदां विद्वत्सारदाम् ।  
 शौतमात्रिगुणन् सन्दकदशनज्ञानमधिदत्तान् ॥ २ ॥  
 प्लेर्गां सुप्रभादेन रचयामि प्रयूननम् ।  
 सहस्रनामपुनरथ जिनेन्द्रस्य गुणान्पुघे ॥ ३ ॥

X

X

X

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ३५, पक्ति ७)

घृतकमलपरागैः सङ्गलैः स्त्रीर्षयानैः कनककन्दारालैः तापमन्तापनार्दौ ।  
 सुपनिकरमुमेकस्नापितान्तैः पथाद्यैः सकलजिमलबोध धीनिनं पूजयामि ॥  
 ॐ ह्रीं च लं निर्वपामीनिस्वाहा ।  
 मलयगिरिसुजातैः सद्द्रवैः कुङ्कुमाद्यैः रघिङ्कुलकलितोद्युगुनितैरिदुपुलैः ।  
 सहस्रमुपमिदेहं मुक्तिकान्ताष्टनाम सकलजिमलबोध धीजिनं पूजयामि ॥ (मध्यम  
 घृतलाङ्कपुनैर्मञ्जुलैः पुण्यपुञ्जैरिव हृतवनतोपैर्मुक्तमालिन्यद्रोपैः ।  
 क्षयरहितपदेरां(?) वृत्तमव्योपदेरां  
 कमलवकुलजाताकतकीचम्पकाद्यैः  
 कलितकुसुमघण्टा  
 वधिहृतसहितान्तैः

तुहिनजगृहरत्नैः निर्जितामर्त्यरत्नैः सकलसदृशपीतैः वातघातैरधृतैः  
 विद्रितसकललोकं दिव्यमानं विलोकं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (दीपम्)  
 अगवजवरधूपैर्धूपिताशामुखार्भैः अमरनिकरनायानिष्टधूमैर्मनोह्रैः ।  
 वसुविधदुरितान्धदाहकं दाहमुक्तं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (धूपम्)  
 वकुलजलवलीश ( ? ) दाडिमस्वादुकाप्रक्रमुकसुफलपूराद्यै रनिन्द्यैः फलौघैः ।  
 शिवसुखफललब्धिं सर्वतत्त्वेद्भवुद्धिं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (फलम्)  
 अमलकमलगन्वाञ्जुगणतगडु(?)लपुष्पैश्चकृगृहमणिर्दीपैः धूपहृत्सत्फलार्प्यैः ।  
 शतमखनुत्तमेदारुपरत्नत्रयाढ्यं सकलविमलबोधं श्रीजिनं पूजयामि ॥ (अर्घ्यम्)

X X X X

अन्तिम भाग :—

विशालकीर्तिर्वरपुण्यमूर्तिः शतेन्द्रसंचर्तिपादपद्मः ।  
 श्रीमज्जिनेन्द्रः सुसहस्रनामा जिनेश्वरः पातु स भव्यलोकान् ॥  
 पद्मपट्टिसूत्रोक्तपद्ममार्गां त्र्यष्टयाधिकं चात्र सहस्रयुक्तम् ।  
 मद्मे द्विरष्टौ ( ? ) च पदानिलुता ( ? ) पद्मं च कृत्वाष्टदलाष्टकं वै ॥  
 इत्थं पुरोत्थं पुरुदेवयन्त्रं सम्माल्य मध्ये जिनमर्चयामि ।  
 सिद्धादिधर्मादिजिनालयान्तं पत्रेषु नामाङ्किततत्पदेषु ॥

इस 'सहस्रनामाराधना' में जिनसेनकृत सहस्रनामान्तर्गत प्रत्येक नाम के लिये प्रत्येक अर्घ का विधान पद्यमय अङ्कित है । यह ग्रन्थ दश परिधियों (मराडलों) में विभक्त है । प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ में जिनेन्द्र का प्रत्येक अष्टक (पूजा) निर्दिष्ट है । साथ ही साथ प्रत्येक परिधि की समाप्ति में जयमाला भी अन्तर्मुक्त की गयी है । अर्थात् प्रत्येक परिधि के प्रारम्भ में जिनेन्द्र भगवान् की पूजा, (अष्टक) उस परिधि के अन्तर्गत नामों के लिये अर्घ्य एवं अन्त में पूर्णार्घ्य और जयमाला है । इस हिसाब से दस अष्टक साधिकासहस्र अर्घ्य और दस जयमालायें हैं । इस में ग्रन्थकर्ता के विषय में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । परन्तु १म और ९म को छोड़ कर प्रत्येक परिधि के अन्त में कुछ हेर-फेर करके दिये गये निम्नाङ्कित पद्य अवश्य विचारणीय हैं:—

“मुनीन्द्रदेवेन्द्रसुकीर्त्तये तत् श्रीधर्मचन्द्रः कृतधर्मभूयः ।  
 सुरेन्द्रकीर्त्तिवरधर्ममूर्त्तिः वभुजिनेन्द्रा वरसंघशाल्यै ॥”

(द्वितीय परिधि का अन्तिम श्लोक)

(२६) ग्रन्थ नं० २४३  
ख

## सहस्रनामाराधना

कर्त्ता— X

विषय—माताधना

भाषा—संस्कृत

सम्पादक ई. इ. इ. इ.

पौडार्क ई. इ. इ.

पत्रमत्स्या ६०

प्रारम्भिक भाग—

सुत्रामपूजितं पुत्र्यं शुद्धं सिद्धं निरंजनम्  
 नमदाहृदिनाशाय नमि प्रारब्धसिद्धये ॥ १ ॥  
 तद्वज्रा नमस्तुभ्ये मातृदां विश्वमारक्षाम् ।  
 गौतमाविगुरुन् सप्रशकदर्शनज्ञानमविदितान् ॥ २ ॥  
 पत्न्यां सुप्रसादेन रक्षयामि प्रपूजनम् ।  
 सहस्रनामपुत्रस्य जितेन्द्रस्य गुणाम्बुधे ॥ ३ ॥

X X X

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ ३५, पंक्ति ७)

घृतकमलपत्रागैः सगजैस्तीर्थजानैः कनककल्पाशस्तैः तापसन्तापनारो ।  
 सुपनिकरसुमेधस्नापितान्तैः पयाधैः सकलविमलबोध धीजिन पूजयामि ॥  
 ॐ ह्रीं जठं त्रिर्बोधात्मिन्याहा ।  
 मलयगिरिसुजातैः सद्द्रव्यैः बुद्धमाद्यैः रघिबुलकलितोत्पद्गुजिनैरिन्दुयुक्तैः ।  
 सहजसुरभिर्गैर्ह मुक्तिकान्ताहृताम सकलविमलबोध धीजिन पूजयामि ॥ (गध्यम्)  
 धर्मलशकपुत्रैर्मन्त्रैः पुण्यपुञ्जैरिषि वृत्तजनतोपैमुक्तमालिन्यदोषैः ।  
 क्षयरहितपदेशं(१) दत्तमन्त्रोपदेशं सकलविमलबोध धीजिन पूजयामि ॥ (भक्तताम्)  
 कमलचक्रुलजातीकेतकीचम्पकाद्यैः सुरभिगुणसुदेशानन्दकैः सुमन्त्रैः ।  
 दलितकुमुदमन्त्राद्यैः सर्वविद्याप्रमाणां सकलविमलबोध धीजिन पूजयामि ॥ (पुष्पम्)  
 द्विधृतसहितान्तैः शकटापायसान्तैः प्रचुरव्यक्तवद्वैर्व्यज्जनैः सन्निवेशैः ।  
 सकलविमलबोधं धीजिन पूजयामि ॥ (धर्मम्)

(३०) ग्रन्थ नं० २४४  
ख

## कलिकुण्डाराधनाविधान

कर्त्ता— X

विषय—धाराधना

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च

चौड़ाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या १३

प्रारम्भिक भाग—

सत्पुष्पधाम्ना(?)प्रविराजितेन पुष्पेण पुर्योनं सुपल्लवेन ।

सन्मङ्गलार्थं कलिकुण्डदेवमुपाप्रभूमौ समलङ्करोमि ॥

(कलशस्थापनम्)

शुद्धेन शुद्धहृदकूपवापीगङ्गातटाकादिसमावृतेन ।

शीतेन तोयेन सुगन्धिनाहं भक्त्याभिपिञ्चे कलिकुण्डयन्त्रम् ।

(तीर्थोदकामिषेकः)

नोरैः सुगन्धैः कलमात्ततौघैः पुष्पैर्हविभिर्वरधूपधूमैः ।

भास्वत्फलार्थैः कलिकुण्डयन्त्रं संपूजयाम्यष्टतया सुभरत्या ॥

X

X

X

X

मध्य भाग ( पूर्वपृष्ठ ६, पंक्ति ७ )—

प्रणम्य देवेन्द्रचतुर्तं जिनेन्द्र सर्वश्रमज्ञप्रतिबोधसंज्ञम् ।

स्तोत्रे सदाहं कलिकुण्डयन्त्रं सार्वं च विघ्नौघविनाशदक्षम् ॥

नित्यं स्मरन्तोऽपि हितो (?) पि भक्त्या सदास्तुवन्तोऽपि जपं सुमन्त्रम् ।

पूजां प्रकुर्वन् हृदये ददाति सत्त्वैप्सितं यच्छतु यन्त्रराजम् ॥

प्रहांगणे कल्पतरुप्रसूनं चिन्तामणिरिचिन्तितदानदाने ।

गावश्च तुल्यार्च हि कामधेनुर्यस्यास्ति भक्ति कलिकुण्डयन्त्रे ॥

नमामि नित्यं कलिकुण्डयन्त्रम् सदा पवित्रं कृतरक्षणपात्रं ।

रक्षत्रययाराधनभावलभ्यम् सरासरैर्वन्दितमादय मीमा.....

“इत्य स्तुतो निनरतो जगदा विहतां” ... भगव्यसु नृणां पत्रा (१) मुक्तां ।  
सद्धर्मचन्द्र इह धर्ममुभूयणाया देवेन्द्रकीर्तितयया ह्यरतां सर्तां स ॥

(३५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“इति धरनुतिपुत्रो देवदेवेन्द्रवृन्दैर्दिगतसकललोको ज्ञानरूपो जिनेन्द्र ।  
प्रथयतु शुभाश्रमीं धर्मचन्द्रो मुनीन्द्रस्तुतपदकमलोऽसौधर्मभूयस्तु नृणाम् ॥”

(४४ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“धौधर्मचन्द्र धृतसिन्धुचन्द्रो विमुक्तदोषारधर्मभूय ।  
मुनीन्द्रदेवे द्रयशय्यरूप न पातु शत्रुजिनसौख्यरूप ॥”

(५५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“इतिस्तुतोऽभूत्तितनयैकभूयणास्तुधर्मचन्द्राश्रितधर्मभूयण ।  
मुनीन्द्रदेवेन्द्रयशय्यरूप न पातु शत्रुजिनसौख्यरूप ॥”

(६४ परिधि का अन्तिम श्लोक)

‘धुधर्मचन्द्रो निनरतभूयो देवेन्द्रभक्तकीर्तितपादपम् ।  
सुन्दरनागेन्द्रनेन्द्रपुत्राय पायात् स व ध्यानिय पवित्र ॥’

(७५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

“ससारमुक्तो जिनधर्मचन्द्र सद्धर्मभूयो धरधर्ममूर्ति ।  
देवेन्द्रकीर्तिं हृतदेवकीर्तिं पायाजिनो धो नरनायकभूय ॥”

(८५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

विगालकीर्तिर्वरपुण्यमूर्तिं शनेन्द्रसुखचितपादपम् ।

धौधर्मचिनेन्द्र सुसहस्रनामा निनेररत् पातु स भाग्यगेकान् ॥”

(१०५ परिधि का अन्तिम श्लोक)

परिधियों के उल्लिखित इन अन्तिम श्लोकों की धोर ध्यान देने से यह पता लगता है कि इसके कर्ता देवेन्द्रकीर्ति हैं और इन्होंने जिनेन्द्र भगवान् के विशेषरूप में धरना, अपने गुरु का पद प्रगुरु का कर्मण—धर्मचन्द्र, धर्मभूयण देवेन्द्रकीर्ति इन नामों से उल्लेख किया है। देवेन्द्रकीर्ति के नामसे बड़े व्यक्ति हुए हैं, इसलिये नहीं कहा जा सकता कि समुक्त देवेन्द्रकीर्ति ही इसके प्रणेता हैं।

अरहन्तारणं, ओं ह्रीं अर्हं णमो सिद्धारणं, ओं ह्रीं अर्हं णमो आदरियाणं, ओं ह्रीं अर्हं णमो  
उचज्जायाणं अं ह्रीं अर्हं णमो साहणं इति पञ्चपदैर्वेष्टयेत् । ततः पट्कोणयन्त्रं लिखेत् ।  
अग्रे स्वस्तिकं लान्छितं ततः पट्कोणेषु सव्यक्रमेण ध्रुवप्रतिचक्रं फट् इति मन्त्रावयवस्यैक-  
कोणेषुऽप्येकैकाक्षरं दद्यात् ।

×                      ×                      ×                      ×

मध्यभाग (परपृष्ठ ५, पंक्ति ४) —

मध्ये पट्कोणचक्रं लिखितजिनपतेः (१) क्ष्माधरं पीडबंधम्  
चामे ह्रीं दक्षिणे भूर्वी त्रियमधरतले तेषु सव्यापसग्रम् ।  
कोष्ठेष्वप्रतिचक्रं फडिति सविचक्राय होमान्तमन्त्रम्  
देवीनां चैव पश्याणं वहिरपि विलिखेन्मन्त्रमग्रे च कोणे ॥

×                      ×                      ×

अन्तिम भाग —

अन्तश्चन्द्रावृतं हंस इति युतमतो विल्लु पं वं विदिल्लु  
नालाग्रे भूर्वी तदादावमृतमतिसितं सप्तपत्रं द्विपञ्चम् ।  
लं पीताम्भोजपत्रे मुखकमलदले वं घटीरूपयन्त्रम्  
र्कं क्षमं हः ङः पोहोम्रे गतमुदवपुः संज्ञामैतत्प्रशस्तम् ॥

यन्त्रमध्ये लं वं र्कं वं क्षमं हः ङः पः हः भूर्वीं र्चीं हंसः देवदत्तस्य शीतोष्णज्वरहरं कुम्भ  
कुम्भ स्वाहा । इति संलिख्य ततो भूर्वीं र्चीं हंसः इत्येतैर्वहिरावेष्टय वाह्ये फलशाकारं  
संवेष्टय तस्य नालाग्रे भूर्वीं नालादौ र्चीं पीठगतसप्तपत्रेषु प्रतिपत्रं लं । मुखगतसप्तदलानां  
मध्ये वं तदग्रेषु र्कं वं क्षमं हः ङः पः हः इत्येकैकमक्षरमग्रं प्रति संलिखेत् ॥

इस 'कल्प' में सर्वप्रथम यन्त्र लिखने का क्रम, मूलमन्त्र, इन मूलमन्त्रों के वश्यादि  
प्रत्येक कार्य में जपने की विधि एवं आगे गणधरयन्त्र का उल्लेख किया गया है । इसी यन्त्र-  
प्रकरणा में अग्नि, कुक्षि, कर्ण एवं शिरोरोग आदि के लिये प्रत्येक मन्त्र का जप निर्दिष्ट है ।  
इसके अतिरिक्त ज्ञानवृद्धि, आयुःपरिज्ञानादि के लिये भी जाप्य मंत्र दिये गये हैं । बाद  
यन्त्र की पूजा, नवग्रह पूजा के साथ विस्तार से चतलायी गयी है । इसमें किस  
किस वृक्ष की लकड़ी एवं कुण्ड की किस दिशा में किन किन की  
भी दिग्दर्शन कराया गया है । आगे "जंघया मध्यभागे तु संश्लेषो  
प्रोक्तं तदासनविचक्षणः ॥ तत्र पञ्चासनं पादौ जंघाभ्यां श्रयतो  
॥" इत्यादि रूप से आसनों का लक्षण कहा  
, शान्ति आदि होम में "सर्वधान्यकृतैर्लाजैस्तद्रजोभिर्गुडान्वितैः ।

सिंहेभसपांग्रिजलाग्न्यचौरैर्विभाद्योऽन्ये च समूहरिप्राः ।

ध्याभ्याद्यो राजकुलोद्भवं भयं नश्यत्यदर्शं कलिकुटाडपूजया ॥

× × × ×

प्रथम भाग—

कलिलह्नवर्त योगियोगोपलेत्तम्

द्वाविकुलकलिकुटाडो द्यद्विपार्दप्रचयडम् ।

शिवसुखमभवद्वा दासरहीवसन्तम्

प्रतिदिनमहमोडे वर्धमानस्य सिद्धये ॥

इस 'कलिकुटाडापघना' के भादि में कलिकुटाडयन्त्र एव धीपार्धनाथ की प्रतिमा का समिक, भूमिशुद्धि, पञ्चगुरुजा और चत्वारि अर्घ्य निर्दिष्ट हैं। वाद पार्धनाथ पूजा अर्घ्य इन्हीं की मन्त्रस्तुति, धरपौष्ट्र यज्ञ और पद्मावती यज्ञी की पूजा तथा इनके मन्त्र-स्तोत्र दिये गये हैं। इसके उपरान्त मंत्र लिखने की विधि और फल इत्यादि का निर्देश करते हुए प्रस्तुत यंत्र की पूजा बतलायी गयी है। अन्त में यन्त्राय मंत्र की स्तुति, यंत्रस्थ पियडात्तरों-का अर्घ्य, अष्टमातृका की पूजा, मन्त्रपुत्र और जयमाला लिखी गयी है। इसके कर्त्ता भी अज्ञात ही हैं।

(३१) ग्रन्थ नं० २४१  
ख

## गणाधरवलयकल्प

कता— ×

विषय—मन्त्रशास्त्र

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इंच

चौड़ाई ६ इंच

पत्र संख्या १०

प्रारम्भिक म ग—

देवदत्तस्य नामाहंकारिण वेद्येत् ।

ततोऽनाहतेन तस्यापः कर्मक्षयार्थं अर्घ्यप्राप्त्यर्थं पद्मासनम् । शान्तिकपौष्टिकसारस्वताथ श्रीकापसनम् । शत्रुविनाशार्थं भूष्पाणिवरपार्थं च इकापसनम् । ततः ओं ह्रीं अह यमो

देहिनः सुखानुखावाप्तिपरिहाररूपपुरुषार्थद्वयविगानकारणं सद्धर्मं शर्मकामाः समाराधयन्तु  
भवन्तः । तथाथ पुरातनैर्निरूपितम्—

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वेजनसुप्रसिद्धमिदम् ।

तस्माद्विहाय पापं भवतु सुकीर्त्तिः सदा धर्मः ॥

× × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ २६, पंक्ति ७)

अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासंभवद्वाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवदिति ।

न चेदं साधनमसिद्धं प्रत्यक्षादिनामन्यतमस्यापि प्रमाणस्य सर्वज्ञवाधकस्यासंभवात्तदुक्तम् ।

सर्वज्ञत्वं न चासिद्धं कस्यचिद्वाधकात्ययात् ।

सर्वत्र वाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः ॥

न तस्य वाधकं तावत्प्रत्यक्षमुपपद्यते ।

तस्याक्षजत्वादत्यक्षे न विधिर्न निषेधनम् ॥

न चानुमानोपमानं च युक्तमिष्टविघाततः ।

तथा हि खचरादीनां न स्यात् खगमनादिकम् ॥

तस्मान्नरविशेषेऽसौ यस्य सा सकलज्ञता ।

तथा खरविशेषश्चेदिष्टा तस्यापि शृंगिता ॥

न चार्थापत्तिरप्यस्ति सर्वज्ञाभावसाधनी ।

कोहार्थो संभवी तेन विना यस्तं प्रकल्पयेत् ॥

नाप्यागमेन सर्वज्ञः कृतकेनेतरेण वा ।

वाध्यते कर्तृहीनस्य तस्यात्यन्तमसंभवात् ॥

कर्तुरस्मरणादिभ्यः कर्त्रभावो न सिध्यति ।

अज्ञातकर्तृकैर्वाक्यैर्व्यभिचारस्य संभवात् ॥

न च कश्चिद्विशेषोऽस्ति पौरुषेयप्यसंभवी ।

अतीन्द्रियार्थसंवादः सर्वज्ञोक्तेऽपि संभवेत् ॥

त्रिवाद्विपयापन्नं ततः शास्त्रं सकर्तृकम् ।

दृष्टकर्तृकतुल्यत्वादकलङ्कादिशास्त्रवत् ॥

तस्मादकर्तृकं शास्त्रं नास्ति सर्वज्ञवाधकम् ।

कृतकञ्च द्विधा भिन्नं सर्वज्ञेतरहेतुकम् ॥

असर्वज्ञत्वतं तावन्नप्रमाणमतीन्द्रिये ।

सकलज्ञप्रणीतं तु तस्य प्रत्युत साधनम् ॥



चन्द्रनागदक्षपूर्यमुलान्नघृतादिभिः ॥ पायसान्नाद्वर्तमिधैर्घृतैश्चोद्गादिभिः । सा  
घामिश्चरद्भाम प्रतिशान्नातिर्पाण्डिके ॥” इस विधि से हवनद्रव्य का उल्लेख कर पाँच  
कार्य के लिये “वन्द्यावृष्टिम्नभननिरेधद्वेषचलनशान्तिकपुणं । कुर्यात् सोमधमामरुणा  
मरुदग्निर्मुत्तद्विन्दन ॥” इस प्रकार अलग अलग दिशाएँ घतलायी गयी है ।  
में प्रत्येक कार्य के लिये समय, आसन, मुद्रा, धीनातर आदि का विचार विवेचन कि  
गया है । धर्याकरण कार्य में त्रिकोण, चतुष्कोण आदि मिश्र-मिश्र बुद्ध तथा मि  
मिश्र धरुं घाटे पुष्पों की उपयोगिता खिती गयी गयी है । किस किस कर्म के लिये कि  
किस अनुली में जप करना विशेष है, इस बात को “मोक्षशान्त्योर्यशकपैस्तम्भर्षपापसख  
अद्गुभयमानामितजंनभिर्मर्षि चरेत् ।” यो अट्टित किया है । अन्त में षोडशोपचार  
द्रव्यां को गिना कर अग्निमण्डलो का लक्षण दिया गया है । अस्तु, इसके का  
अज्ञात हैं, पर निम्न लिखित तान रिडान गण-रखलय पुजा के कर्त्ता अथ तर्क प्रमि  
है —(१) महारज धर्मकारि (२) शुभचन्द्र (३) हस्तिमल्ल ।

(३४) ग्रन्थ नं० २४६  
ख

## प्रवचनपरीक्षा

कला—नेमिचन्द्र

विषय—खगडनमण्डन

भाषा—संस्कृत

सम्बाई ई। ई०

चौडाई ई। ई०

पत्रसंख्या १८

प्रारम्भिक भाग—

विलोकीतिलकापार्हत्पुराय नमो नमः ।

वाचामगोचराचिन्त्यबहिरभ्यन्तरधिये ॥

अथ निखिल चतुर्वेदसमन्वयकारिजनिजातुभाषपरकमानुषोपनतसकलभोगसाधनसंसिद्ध  
समिद्धामिमान्नीकसुखसुधाम्भोनिधिनिमज्जद्राजाधिराचमहारजाधर्ममण्डलीकमहामण्डलीकधर्म  
चक्रवर्तिसकलचक्रवर्तीन्द्रादिपदलक्षणभ्युदयलक्ष्मीलाभाय पुरुषार्थपराकाष्ठागतनित्यनिरुपन  
निर्वाणपरमात्मन्दिरेनिधेयससमाधिमाय चतुर्विधदुरन्तदुःखैकनिवन्धनाहसंहापय ॥१॥

हिनः सुखामुखावाप्तिपरिहाररूपपुरुषार्थद्वयविगानकारणं सद्धर्मं शर्मकामाः समाराधयन्तु  
व्रन्तः । तथाय पुरातनैर्निरूपितम्—

पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम् ।

तस्माद्धिहाय पापं भवतु सुकौंतिः सदा धर्मः ॥

X X X

तथ भाग (११पृष्ठ २६, पंक्ति ७)

अस्ति सर्वज्ञः मुनिश्चितासंभवद्वाधकप्रमाणत्वात् सुखादिविधिः ।

न चेदं साधनमसिद्धं प्रत्यक्षादिनामन्यतमस्यापि प्रमाणस्य सर्वप्रवाधकस्यासंभवात्तदुक्तम् ।

सर्वशत्रुं न चासिद्धं कस्यचिद्वाधकात्प्रयात् ।

सर्वत्र वाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः ॥

न तस्य वाधकं तावत्प्रत्यक्षमुपपद्यते ।

तस्यात्तज्जत्वात्प्रत्यक्षे न विधिर्न निषेधनम् ॥

न चानुमानोपमानं च युक्तमिष्टविधाततः ।

तथा हि खचरादीनां न स्यात् खगमनादिकम् ॥

तस्मान्नखचरेणैः सा सा सकलप्रता ।

तथा खचरेणैः श्वेदिश्र तस्यापि श्रृंगिता ॥

न चार्थापत्तिरप्यस्ति सर्वज्ञाभावसाधनो ।

कोह्यर्था संभवां तेन विना यस्तं प्रकल्पयेत् ॥

नाप्यागमेन सर्वज्ञः कृतकेनेतरेण वा ।

वाच्यते कर्तृहीनस्य तस्यात्यन्तमसम्भवात् ॥

कर्तुरस्मरणादिभ्यः कर्मभावो न सिध्यति ।

अज्ञातकर्तृकैर्वाक्यैर्व्यभिचारस्य संभवात् ॥

न च कश्चिद्द्विजोऽस्ति पौरुषेयत्वसंभवी ।

अतीन्द्रियार्थसंवादः सर्वजोक्तेऽपि संभवेत् ॥

विवाद्द्विषययापन्नं ततः शास्त्रं सकर्तृकम् ।

दृष्टकर्तृकतुल्यत्वादकलङ्कादिशास्त्रवत् ॥

तस्मात्कर्तृकं शास्त्रं नास्ति सर्वज्ञवाधकम् ।

कृतकञ्च द्विधा भिन्नं सर्वज्ञेतरहेतुकम् ॥

असर्वज्ञत्वतं तावन्नप्रमाणमतीन्द्रिये ।

सकलप्रणीतं तु तस्य प्रत्युत साधनम् ॥

प्रस्तुतस्यानुमानस्य साधकत्वेन समग्रात् ।  
 प्रमाणपञ्चकामायोऽप्यतिलङ्घे न धाच्यते ॥  
 तस्माद्देशेनित्करिचदस्तीत्यागमसमया ।  
 प्रमाण धाचकामावाद्गुदिरस्ताद्विदुक्षियत् ॥

तदेव प्रमाणाप्रलादज्ञानादिदोषरहितं सामान्यतो यं सिद्धं स चार्हन्नेव सर्वत्र पुं  
 शास्त्राविक्रमवाच्यतात् ।

×

×

×

×

अंतिम भागः—

इदमलमनल्पस्याप्तमीमांसितादे प्रचननिकरस्याशय धोघाय सारम् ।  
 रचितमुचिनाथाग्निर्दिकावैदिकानां प्रकटयितुमशकं भेदमस्माद्दृशानाम् ॥  
 इति प्रचननस्येह परास्ता ग्रहिता मया । अन्ययोग्यव्यवहारेदादुभेदानां प्रतिपत्तय  
 स्वल्लितमिह विहायान्यल्पद् किञ्चिदार्थं प्रभवति वद्दु मन्तु बालकस्यादरात्ने ।

×

×

×

एतद्व्यतननिर्मितं कथं स्यात्प्रमाणमिति मास्म मन्यया ।  
 अर्धतस्त्विदं शृणींश्चमाचितं मापर किमपि कल्पितं मया ॥  
 परमाभूतज्ञानेन प्रीणयद्विदुधान् पर ।  
 शरणं भक्तिमन्नेमिचन्द्रबजिनशासनम् ॥

इस 'प्रचननपरीक्ष' के कर्ता करि नेमिचन्द्र हैं । 'दिगम्बर जैनग्रन्थकर्ता और उन  
 ग्रन्थ' इस तालिका में निम्नलिखित ग्रन्थ भी इन्हीं नेमिचन्द्र के द्वारा प्रणीत कहे गये हैं—

(१) द्विसन्धानकाव्य की टीका (२) द्विसन्धान काव्य द्वितीय (श्लोक सं० ३००  
 (३) उत्सवपद्धति (४) गतिष्टातिलक (श्लोक सं० ६०००) (५) त्रैवर्णिकाचार (श्लोक सं  
 ३०००) । इनमें द्विसन्धान काव्य (द्वितीय) एवं उत्सवपद्धति ये दो ग्रन्थ मेरे देखने में  
 भाये हैं । हाँ, शेष ग्रन्थों को मैंने देखा है । त्रैवर्णिकाचार और प्रस्तुत प्रचननपरीक्ष  
 इनमें नाम, निर्देश के सिवा भवन की प्रतियों में करि नेमिचन्द्र का कुछ भी परिचय न  
 मिलता है । द्विसन्धान काव्य की टीका में निम्नलिखित दो श्लोक मिलते हैं अथवा—

“जीयान्मुनेन्द्रो धिनयेन्दुनामा सवित्सवाराजितकण्ठपीठ ।  
 प्रतीववादीमकपोलमिति प्रसात्तरै स्वैर्नखरैर्विदाय ॥  
 तस्याय शिष्योऽजनि देवनन्दी सद्गुणस्यार्थमतदेवनन्दी ।  
 पद्माम्बुजद्वन्द्वमनिन्यमच्य तस्योत्तमाङ्गेन ममस्करोमि ॥

इन श्लोकों से सिद्ध होता है कि कवि नेमिचन्द्र के प्रगुरु विनयचन्द्र एवं गुरु देववन्द्यी थे। वलिक निर्णयसागर प्रेस बंबई से प्रकाशित इसी द्विसन्धान काव्य के नवीन टीकाकार पं० बदरीनाथजी ने इस नेमिचन्द्र को विनयचन्द्र का शिष्य लिखा है; यह इस नवीन टीकाकार की भूल है। क्योंकि विनयचन्द्र नेमिचन्द्र के गुरु नहीं थे किन्तु प्रगुरु। अब लीजिये 'प्रतिष्ठातिलक' को। 'सखाराम नेमिचंद्र जैन ग्रन्थमाला' सोलापुर से मुद्रित इस ग्रन्थ के इस संस्करण में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। पर 'जैनहितोपी' भाग १२, पृष्ठ १६५ में श्रवणवेलोल-निवासी स्वर्गीय पं० बौर्बली शास्त्री के गृहग्रन्थालयस्य इस प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ की एक ताड़पत्राङ्कित प्रति पर से ली गई 'शाखावतार' नामक ४५ पद्यों की एक लम्बी चौड़ी प्रशस्ति प्रकाशित हुई है। इस प्रशस्ति में इस कवि का पूर्ण परिचय मिल जाता है। इसमें ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र ने अपने वंश आदि का स्पष्ट परिचय दिया है। प्रशस्ति में ब्राह्मणकुल की प्राचीनता को दिखलाते हुए उन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान में अकलङ्क, इन्द्रवन्द्यी, अनन्तवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसेन, वादिराज और हस्ति-मह्य आदि अनेक विद्वानों का जन्म (?) लेने का कथन इन्होंने किया है और इन विद्वानों की वंशपरम्परा में अपने कुटुम्ब का क्रम विस्तार से बतलाया है। विस्तारभय से इस परम्परा को मैं उद्धृत नहीं कर सका। कवि नेमिचन्द्र ने अपने वंश को चोल राजवंश के द्वारा सम्मानित एवं अन्यान्य शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वानों से अलङ्कृत लिखा है। जैसे—समयनाथ को तार्किक, राजमल्ल को कवि, चिन्तामणि को वादी और चाग्मी, अनन्तवीर्य को घटवाद्-विशारद, पार्श्वनाथ को गीत और आगमशास्त्र का ज्ञाता (बहुत कुछ संभव है कि यही संगीत-समयसार के कर्ता हों), आदिनाथ को आयुर्वेद में निपुण, कोदण्डराम को धनुर्वेद का वेत्ता, ब्रह्मदेव को बड़ा बुद्धिमान् तथा पट्कर्मकर्मठ और देवेन्द्र को संहिताशास्त्र में निष्णात एवं राजमान्यतादि गुणों से सम्पन्न लिखा है। चन्द्रपार्य, ब्रह्मसूरि और पार्श्वनाथ इन तीन को कवि ने अपना मानुल बतलाया है। यह ब्रह्मसूरि वही हैं जिन्होंने प्रतिष्ठापाठ, त्रैविणिकाचारादि ग्रन्थों की रचना की है। नेमिचन्द्र के पिता देवेन्द्र और माता आर्यदेवी थीं। इन्हें आदिनाथ, नेमिचन्द्र और विजयप्प नाम के तीन पुत्र हुए। नेमिचन्द्र नाम का पुत्र ही प्रस्तुत कवि नेमिचन्द्र हैं। आपने अपने तीन भाइयों के सुपुत्रों का नाम-निर्देश करते हुए इन्हें भी विद्वान् लिखा है। नेमिचन्द्र जी ने इस ग्रन्थ में अपने को अमयचन्द्र का शिष्य स्पष्ट बतलाया है। इससे मालूम होता है कि द्विसन्धान काव्य के टीकाकार देववन्द्यी का शिष्य नेमिचन्द्र इनसे भिन्न है।

इस प्रशस्ति में इन्होंने अपने को 'सत्यशासन-परीक्षा' आदि ग्रन्थों का प्रणेता बतलाया है। वह सत्यशासनपरीक्षा प्रस्तुत प्रवचनपरीक्षा ही मालूम होती है। राजसम्मानित

यह कवि नेमिचन्द्र सियक्कदम्ब नामक नगर में रहने थे। पता नहीं है कि यह स्थिरवस्त्र किस स्थान का प्राचीन नाम है। कर्णाटक प्रांत में ही कहीं इसे होना चाहिये। साथ ही साथ इनके सम्बन्ध में यह कह देना भी आवश्यक है कि यह कवि नेमिचन्द्र जी गृहस्थ थे और लगभग १६वीं शताब्दी में मौजूद थे। इसमें कोई शक नहीं है कि यह एक प्रौढ़ कवि थे। इस प्रवचनपरिष्ठा की श्लोक संख्या १००० मानी गयी है। इसकी भाषा विशुद्ध पर प्रसादादिगुणों से सम्पन्न है। किन्तु भजन की यह प्रति यत्र-तत्र अशुद्ध है।

इस प्रवचनपरिष्ठा में प्रथमकृता ने निम्नलिखित शिष्यों पर प्रकाश डाला है —

(१) अहिंसाधर्म की प्रधानता पर जैनधर्म में ही इसकी परिपूर्णता (२) वेद की समालोचना एवं मीमांसक, सांख्य आदि दर्शनों की वेद-बाधना तथा इनमें भी अहिंसा की मान्यता (३) “अध्वविभर्षे” आदि वाक्यों में अर्हन्त का और “न हिंस्यात् सर्वभूतानि” आदि वाक्यों में अहिंसा का वेद में उल्लेख (४) वेद-प्रतिपादित कई बात अर्थात्कर्मिक हैं यदि ये धर्मवाह्य नहीं हैं तो मीमांसक आदि ने ईश्वर के अस्तित्व का जो खराब किया है, वह भी धर्मवाह्य नहीं होना चाहिये आदि (५) वेद-प्रतिपादित अर्हन् आदि शब्दों का अर्थ अर्हन् न करके इन्द्रादिक करना युक्तियुक्त नहीं है (६) वेद प्रतिपादित अहिंसादि धर्मों को माननवाले जैन वेदवाह्य नहीं कहला सकते हैं (७) वेद का समीचीन बोध नहीं होने से यदि जैनो वेदवाह्य है तब बहुसंख्यक वैदिक मतावलम्बी भी वेदवाह्य ठहरेंगे, अन्यथा आपस में वेदोक्त बातों पर इतना मतभेद क्या उठ खड़ा हुआ? (८) वैदिकों के वेद उनके प्रतिपादक, उनमें वेदनाम एवं सत्या की साधकता (९) अर्हन् की सर्वज्ञता तथा उनकी वेदप्रतिपादकता (१०) धर्म का भेद एवं गृहस्थ धर्म का वर्णन (११) प्रकेन्द्रिय जीवों के हिंसक गृहस्थ पञ्चेन्द्रिय जीवों के हिंसक नहीं कहला सकते (पञ्चाक्षरीचरं यद्व्यति पञ्चनकारत । तद्व्यतिज्ञानमाताय न पञ्चैकाक्षघातत ) (१२) मांस जीव का शरीर है अशुद्ध, पर जीव शरीर मांस ही भी सकता है और नहीं भी (मांस जीवशरीरं जीवशरीर भवेत्त वा मांसम् । यद्वा निम्बो वृत्तो वृत्तस्तु भवेत्त वा निम्ब ॥) (१३) जैनों के धारण भद्र पूर्वापर अविच्छेद है और वे कथञ्चिन् पौण्ड्र्य-रूप है (१४) भयौघोपता ही प्रमाण की मूलभूति नहीं है पर ध्वन न पमानता गुणविशिष्ट ध्वन के ऊपर निर्भर है। (१५) प्रणय (अं) एवं यज्ञादिकर्म भी जैनधर्मों में निर्दिष्ट है (१६) भास का अर्थ अर्थ रूप (१७) धारण भद्रों का विस्तृत वर्णन (१८) जैनों में मन्थारयन्त मन्थारयन्त भाषणी (अन्वयितमन्थ), तपण, धारण भी कथञ्चिन् उपाय है (१९) निरूपण विषयों का वर्णन (२०) द्वित का उत्पन्न एवं वर्णन।

इस ग्रन्थ को धामुगण देरने में पता लगता है कि वेद तपण, धारण, सत्या एवं

गायत्री आदि को कथञ्चित् जैनागमानुकूल सिद्ध करना ही ग्रन्थकर्त्ता का लक्ष्य रहा है। हाँ, इसमें यह विशेषता है कि इन शब्दों का अर्थ और प्रतिपादित विषय जैन आगम के अविरोध ही बतलाया गया है। मालूम होता है कि एक जमाने में इन चीजों का बड़ा बोलबाला था। इसी से जैनधर्म में भी यह सब कुछ है इस बात का परिदर्शन कराते हुए धर्म की रक्षा एवं सर्वमान्यता सिद्ध करने के लिये जैनग्रन्थकर्त्ताओं को भी इन चीजों की शरण लेनी पड़ी थी। धर्म पर कालदेशादि का प्रभाव पड़ना सर्वथा स्वाभाविक है। इस प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता। धर्म की रक्षा ही इन ग्रन्थकर्त्ताओं का मूल लक्ष्य रहा होगा इसलिये इनको यह कार्य सामयिक एवं उपादेय कहा जा सकता है। इसके लिये एक वर्तमान दृष्टान्त को ही लीजिये—मेरे जानते राष्ट्रीय ध्वजाभियन्तन एक कट्टर जैनी के लिये धर्मसंगत नहीं हो सकता; फिर भी आजकल प्रायः प्रत्येक कार्य में इसे अपनाया जाता है। अगर इस समय इसका कोई विरोध कर्गा तो वह अलौकिक ही नहीं प्रत्युत देशद्रोही करार दिया जायगा। इसी दृष्टान्त को विचारशील एक कट्टर जैनी को अपने सामने रख कर उल्लिखित ग्रन्थयुक्त बातों पर विचार करना चाहिये। अस्तु, इसमें अपनी बातों को पुष्ट करने के लिये ग्रन्थकर्त्ता ने आनपरोक्षा, गोभट्टसार, आदिपुराण, सागारधर्माश्रित आदि ग्रन्थों के हवाले दिये हैं।

(३५) ग्रन्थ नं०  $\frac{२४७}{९}$

## प्रतिष्ठाविधान

कर्त्ता—हस्तिमल्ल

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ६। इञ्च

चौड़ाई ६ इञ्च

पत्रसंख्या १६

प्रारम्भिक भाग—

नमेऽर्हते सदा भूयादरिघातार्थजोऽर्हते ।  
रहस्यभावतो लोकत्रयपूजार्हभावतः ॥

नम्रेन्द्रनन्दिकुट्टीरुसरप्रतिष्ठाप्राग्भावित्यमजित जिनद्विव्यमूर्ते ।  
तौयैर्भुव शुभनमैरभितो विशोभ्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोभयित्वा ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ १०, पंक्ति ६) —

इन्द्र वज्रधर शुचि शिखिकर धैर्यस्यत दण्डिनम्  
। रत्नोमुद्गरभृत्सुपाशमुशलि वृक्षायुध मारुतम् ।  
यत्त शक्तिभृत त्रिशूलकुण्डल रत्नाभूत स्वस्तिकम्  
शेष सभृतकुन्दमिन्दुमपि तान्यस्यापि दिक्पालकान् ॥

× × × ×

अन्तिम भाग —

स्वस्तिश्रीमुखसिद्धिभृद्विभ्रम प्रख्यातव पुण्यता  
कीर्ति क्षेममगण्यपुण्यमहिमा दीर्घायुरारोग्यवन् ।  
सौभाग्य धनधान्यसम्पदभय भद्र शुभ महलम्  
भूयाद्भव्यजनस्य भास्यति जिनापीठे प्रतिष्ठापिते ॥

इति हस्तिमल्ल प्रतिष्ठाविधान समाप्तम् ।

यह 'हस्तिमल्ल-प्रतिष्ठा विधान' मूडविट्टी से प्रतिलिपि कर कर आया है। इसमें कहीं भी ग्रन्थकर्ता का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ग्रन्थ के अन्तिम और अन्त में 'हस्तिमल्लकृत' लिखा मिलता है अर्थात् इसी में इस प्रतिष्ठाग्रन्थ का कर्ता हस्तिमल्ल माना गया है। अन्त्यपर्य-रुत 'जिनेन्द्रकल्पयात्राभ्युदय' में निम्नलिखित यह श्लोक उल्लेख होता है —

“धीराचार्यसुपुण्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो-  
यं पूर्वं गुणभद्रसूर्यसुनन्दीन्द्रादिनन्दुजित ।  
यथाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसन्धीरित-  
स्तेभ्यस्स्वाहृतमारमार्यरचितः स्याज्जैनपूजाभम ॥”

इस श्लोक में यह बात सिद्ध हो जाती है कि हस्तिमल्ल ने भी एक प्रतिष्ठा-पाठ रचा है। अतः यह ग्रन्थ उन्हीं का प्रणीत कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है। यदि यह प्रतिष्ठा-विधान विज्ञान्तकौरव परं मैथिलीकन्याण भादि नाटकों का प्रणेता प्रसिद्ध हस्तिमल्ल कवि का ही माना जाय तो इनका कुछ विशेष परिचय 'भाग्यक्यचन्द्र-ग्रन्थमाला' में प्रकाशित उक्त नाटकग्रन्थों की भूमिका में मिलता है। इस भूमिका के लेखक

नाथूराम जी प्रेमी हैं। इस पाणिडल्यपूर्ण भूमिका में प्रतिपादित दो-एक बातों पर जो मेरा मतभेद है—यहाँ पर सिर्फ उसी का खुलासा कर देना मेरा ध्येय है।

(१) प्रेमी जी ने इस भूमिका में लिखा है कि कवि ने अपने पूज्य पिता के नाम के आगे 'स्वामी' तथा 'भट्टार' पद को जोड़ा है, इसमें घात होता है कि इनके पिता साधु अथवा भट्टारक रहे होंगे। पर मुझे यह बात अखरती है। क्योंकि अगर इनके पिता गोविन्द भट्ट साधु या भट्टारक होते तो कवि उनके दीक्षानाम का उल्लेख अवश्य करता। बल्कि वह अपने पूज्य पिता के उस दीक्षानाम का ही उद्धरण सर्ग्व करता। किन्तु हस्तिमल अपनी कृतियों में "भट्टारगोविन्दस्वामिसुनुना" इतना ही लिखकर चुप हो बैठते हैं। गोविन्द स्वामी या गोविन्द भट्ट यह नाम बहुधा दक्षिणात्य जैनेतर ब्राह्मणों में आज भी प्रचलित है। इस बात को प्रेमी जी भी मानते हैं कि गोविन्द भट्ट जैन होने के पहले वत्सगोत्रीय हिन्दू ब्राह्मण थे। अब रहा 'भट्टार' शब्द। यह शब्द पूज्य अर्थ में प्रयुक्त होता कोशों में बहुलता से पाया जाता है। कवि हस्तिमल के लिये अपने श्रेष्ठ पिता के नाम के आदि में ऐसे आदरसूचक शब्द का प्रयोग करना सर्वथा स्वाभाविक है। प्रेमी जी ने अपने उक्त पद को प्रमाणित करने के लिये एक और प्रमाण उपस्थित किया है। आप का कहना है कि विकांतकौरवीय प्रशस्ति में वीरसेन, जिनसेन, गुणभट्ट आदि आचार्यपरम्परा में गोविन्द भट्ट का उल्लेख मिलता है। मगर प्रेमी जी के इस प्रमाण के उत्तर में भी मेरी पहली बूली ही काफी मालूम पड़ती है। क्योंकि यहाँ भी उनका पूर्व नाम अर्थात् जैन होने के पहले का गोविन्द भट्ट नाम ही दिया गया है, न कि जैन आगमानुसार परिवर्तित दीक्षानाम। हाँ, यहाँ पर यह प्रश्न उठ खड़ा हो सकता है कि गुणभट्टांत उक्त गुरुपरम्परा में गोविन्द भट्ट का उल्लेख कैसे हुआ? मैं जानते इसमें कोई विशेष विचित्रता नहीं है। क्योंकि एक गृहस्थ जैनी भी किसी गुरुपरम्परा का अपने को अनुयायी बतला सकता है। इसके लिये कोई बकाबट नहीं है। इस सम्बन्ध में एक नहीं, अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते हैं। उन दिनों दक्षिण प्रांत में सेनगणोय आचार्यों की बड़ी प्रतिष्ठा थी। अतः गृहस्थ गोविन्द भट्ट ने भी इस आदर्शभूत गुरुपरम्परा को ही अपनी गुरुपरम्परा मान लिया। अब यह भी एक शंका उठ सकती है कि जैनी होने के बाद गोविन्द भट्ट ने अपना नाम क्यों नहीं बदल लिया। पर यह कोई नई बात नहीं है। क्योंकि आज भी जैनियों में बहुत से लोग कट्टर जैनी होते हुए भी हिन्दू नाम ही धारण किये हुए हैं। इतना ही नहीं, खास कर दक्षिण में आज भी बहुत से जैनवंशों में वत्स, वशिष्ठादि हिन्दू गोत्र-सूत्र ही चले आ रहे हैं। जैनधर्म में दीक्षित होने के बाद भी उन्होंने अपने पूर्व गोत्र-सूत्रों का परित्याग नहीं



नघ्रेन्द्रनन्दिमुक्त्रोऽसत्प्रतिष्ठाप्राग्भाषिरुत्थमजितं जिनविज्यमूर्ते ।  
तोयैर्भुष्य शुभतमैरमितो विशोष्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोषयित्वा ॥

× × × ×

मध्य भाग (पूर्वपृष्ठ १०, पंक्ति ६) —

इन्द्र यज्ञधर शुचिं निखिलकर वैरस्यत इषिडनम्  
रत्नामुदुगारभृत्सुपाशमुर्गलिं घृत्तापुध माफ्तम् ।  
यत्सं शक्तिभृत् त्रिगुलकुञ्जलं वृद्धाघृतं स्वस्तिकम्  
शेष सभृतकुन्दमिन्दुमपि तान्यस्यापि दिक्पालकान् ॥

× × × ×

प्रशस्ति भाग —

स्वस्तिश्रोसुखमिद्धिःश्रद्धिभिन्न प्रख्यातयः पूज्यता  
कीर्तिः क्षेममगणयपुण्यमहिमा शीघ्रांगुरारोम्यन् ।  
सौभाग्य धनधान्यसम्पदभय भद्र शुभ मङ्गलम्  
भूयाद्भ्यजनस्य भास्यति जिनाघाणे प्रतिष्ठापिते ॥

इति हस्तिमहल्ल प्रतिष्ठाविधान समाप्तम् ।

यह 'हस्तिमहल्ल-प्रतिष्ठा विधान' मूडबिंद्री से प्रतिलिपि कर कर आया है। इसमें कहीं भी प्रत्यक्षता का परिचय नहीं मिलता। परन्तु ग्रन्थ के आदि और अन्त में 'हस्तिमहल्लरत' लिखा मिलता है अर्थात् इसी में इस प्रतिष्ठाग्रन्थ का कर्ता हस्तिमहल्ल माना गया है। अर्थात्-वृत्त 'जिनेन्द्रकलयाणाभ्युदय' में निम्नलिखित यह श्लोक उपलब्ध होता है —

"धीराचार्यसुपूज्यपाद्जिनसेनाचार्यसभापितो-  
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्दुञ्जितः ।  
यश्चाशाधरहस्तिमहल्लकथितो यश्चैकसन्ध्यारित-  
स्तेभ्यस्स्वाहृतसारमार्यरचित स्याज्जैनपूजाम् ॥"

इस श्लोक से यह बात सिद्ध हो जाती है कि हस्तिमहल्ल ने भी एक प्रतिष्ठा-पाठ रचा है। अतः यह ग्रन्थ उन्हीं का प्रणीत कहने में कोई आपत्ति नहीं दिखती है। यदि यह प्रतिष्ठा-विधान विज्ञानकोश पर मैथिलीकलयाण आदि नाटक के प्रणेता प्रसिद्ध हस्तिमहल्ल कवि का ही माना जाय तो इनका कुछ विशेष परिचय 'माणिक्यचन्द्र-ग्रन्थमाला' में प्रकाशित उक्त नाटकग्रन्थ की भूमिका में मिलता है। इस भूमिका के लेखक श्रीयुक्त प०

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाराङ्गमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—“कर्णाटावनिमराडलं\* पदानतानेकावनीशेऽवति” से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाराङ्गनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कर्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भुक्त है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—“सम्यक्त्वं सुपरीक्षितुं मद्गजे मुक्ते सरराथापुरे ..... . . .” “श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सुरिभिः . . .” इन श्लोकों को अद्यपर्यन्त कृत 'जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय' के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त में ये दोनों श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारंभिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय है—“नन्नेन्द्रनन्दिमुक्तोरुसरःप्रतिष्ठां प्राग्भाषिकृत्यमजितं जिनेदिव्यमूर्त्तः। तोयैर्भुवं शुभतमैरभितो विशोभ्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोभयित्वा ॥” खास कर इस पद्य के प्रारंभ में आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता है, इसी से ठीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ; वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इन्द्रनन्दिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना चाहिये। संभव है कि उसी की ह्याया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो। अद्यपर्यन्त ने भी अपने जिनेन्द्रकल्याणभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ का प्रणेता बतलाया है। वल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए हैं।

\*इससे तमिलु एवं कर्णाटक दो अर्थ नहीं निकल सकते हैं।

किया। इसके अतिरिक्त "तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसख्येये विद्युतो भुवि। गोविन्दं  
इत्यासीद्विद्वान् मिथ्यात्ववर्जित ॥" प्रेमी जी के जिनसेनगुरुपरम्परा को पुष्ट करने वाले इन  
श्लोक में गोविन्द भट्ट को साधु या भट्टाङ्क सिद्ध करने वाला कोई शब्द नहीं है।

प्रेमी जी ने उक्त हस्तिमल्ल के द्वारा रचित पित्रांतकौरवीय नाटक के प्रथमाङ्क के अन्त  
में प्रतिपादित—“श्रीवत्सगोत्रजनभूपणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुडात्।  
नानाकलाभ्युनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकै शनै सदसि सत्कृतवान् बभूव ॥४७॥” और  
इन्हीं के अज्ञापनवन्नय नाटक में अर्द्धित—“श्रीमत्पाण्ड्यमहेश्वरे निजभुजाङ्गावलम्बितै  
कण्ठादाधनिमराडलं पवनतानेकारनीशेऽवति। तत्प्रीत्यानुमरन् स्वकधुनिवहैर्गिहिरितै  
सम जैनागारसमेतसतरजमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत् ॥” इन श्लोकों में उद्धृत पाण्ड्यनगर  
को मधुरा के निकटस्थ पाण्ड्यदेशका शासक बनलाकर उल्लिखित हस्तिमल्लकविको इस  
पाण्ड्य नरेश-द्वारा सम्मानित बताया है। पर 'राजावलिकये' में देवचन्द्र ने लिखा  
है कि 'यह कवि हस्तिमल्ल उभयभाषाकविकवर्ती थे'। बल्कि इसी के आधार पर प्रेमी  
जी का भी कहना है कि यह कवि हस्तिमल्ल कन्नड के भी कवि प्रमाणित होते हैं जब इस  
भाषा में भी इनको कोई रचना होनी चाहिये। किन्तु यह तो सर्वविदित बात है कि  
मधुरा की प्रान्तीय भाषा सदा से तमिलु चली आती है। ऐसी अवस्था में कवि हस्तिमल्ल  
को मधुरा के पाण्ड्यनरेश के आश्रित मानना ठीक नहीं जचता। अगर देवचन्द्र प्रति-  
पादित उभयभाषाकविकवर्ती का अर्थ सस्कृत पर कन्नड भाषा ही माना जाय तो  
मेरा अनुमान है कि हस्तिमल्ल के आश्रयदाता उक्त पाण्ड्यनरेश पाण्ड्यदेश के न होकर  
वर्तमान दक्षिण कन्नडान्तर्गत कार्कल के माने जा सकते हैं। यह राजपरम्परा भी  
पाण्ड्यवंशीय ही था। बल्कि यह राजवंश शुरू से अन्त तक कट्टर जैनमतानुयायी ही  
रहो। इस वंश में कई विद्वान् राजा भी हुए हैं तथा इन्होंने अनेक ग्रन्थकर्त्ताओं को  
आश्रय भी दिया है।

दूसरी बात यह है कि प्रेमी जी जिस पाण्ड्यनरेश को हस्तिमल्ल कवि के सम्मानयिता  
बतला रहे हैं, वह सुन्दर पाण्ड्य प्रथम के उत्तराधिकारी हैं। मुझे जहाँ तक ज्ञात है कि  
यह सुन्दर पाण्ड्य जैन धर्म का पकान्त शत्रु था। ऐसी वंश में उसका उत्तराधिकारी एक  
कट्टर जैन विद्वान् को आश्रय दे यह बात जरा खटकती है। 'कन्नडकविचरिते' के मान्य  
लेखक श्रीमान् स्वर्गीय नरसिंहाचार्य ने भी हस्तिमल्ल कवि को कन्नडकवि माना है।  
इतना ही नहीं, इन्होंने इस कवि के प्रयोग 'आश्रितुण्य' नामक एक कन्नड  
उल्लेख भी किया है। उल्लिखित बातों पर विचार करते हुए प्रश्न को कार

नरेश का आश्रित मानना अधिक समुचित ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त ऊपर उद्धृत 'श्रीमत्पाराङ्गमहीश्वरे' इस श्लोक के द्वितीय चरण में अंकित—“कर्णाटावनिमण्डलं\* पदानतानेकावनीशेऽवति” से भी मेरा कथन सर्वतो भाव से पुष्ट हो जाता है कि यह पाराङ्गनरेश कर्णाटक देश के ही शासक थे न कि तमिलु प्रान्त के। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कार्कल आज भी कर्णाटक प्रान्त के अन्तर्भूक है।

प्रेमी जी ने उक्त नाटकों की भूमिकाओं में हस्तिमल्ल कवि के परिचय में उद्धृत—“सम्यक्तवं सुपरीक्षितुं मदगजे मुक्ते सरगयापुरे ..... ” “श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः . . . ” इन श्लोकों को अद्यपर्य्य कृत 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' के बतलाया है। पर मुझे तो उक्त ग्रन्थ में ये श्लोक नहीं मिले। हां, इन्हीं हस्तिमल्ल के रचित अमुद्रित सुभद्रानाटिका के अन्त में ये दोनों श्लोक अङ्कित अवश्य हैं।

इसी 'प्रतिष्ठाविधान' के प्रारंभिक भागान्तर्गत यह २य श्लोक विशेष विचारणीय है—“नम्रेन्द्रनन्दिमुकटोरुसरःप्रतिष्ठां प्राग्भाविहृत्यमजितं जिनदिव्यमूर्तेः। तोयैर्भुवं शुभतमैरभितो विशोभ्य पात्राणि तत्र सलिलाद्यपि शोधयित्वा ॥” खास कर इस पद्य के प्रारंभ में आये हुए इन्द्रनन्दि शब्द अत्यधिक द्रष्टव्य है। श्लोक कुछ अशुद्ध जान पड़ता है, इसी से श्रीक सम्बन्ध नहीं बैठता। मैं इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूँ; वह यह है कि इस प्रतिष्ठाविधान को इन्द्रनन्दिकृत प्रतिष्ठा-पाठ से अवश्य मिला लेना चाहिये। संभव है कि उसी की छाया लेकर इस प्रतिष्ठा-ग्रन्थ का प्रणयन किया गया हो। अद्यपर्य्य ने भी अपने जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामक प्रतिष्ठाग्रन्थ में इन्द्रनन्दि को प्रतिष्ठाग्रन्थ का प्रणेता बतलाया है। बल्कि वह श्लोक ऊपर उद्धृत भी कर दिया गया है। अस्तु कवि हस्तिमल्ल १३वीं शताब्दी के अन्त में हुए हैं।



(३६) ग्रन्थ नं० ३४३

## श्रीकल्याण-मन्दिर

कथा—कुमुदचन्द्राचार्य

विषय—स्तोत्र और यन्त्र मन्त्र

भाषा—संस्कृत ( मंत्र तथा यन्त्र के विवरण  
में प्राकृत एवं हिन्दी भी हैं )

लम्बाई ७ इंच

चौड़ाई ५ इंच

पत्रसंख्या ४४

प्रारम्भिक भाग—

कल्याणमन्दिरमुदारमवयवेदि भीताभयप्रदमनिन्दितप्रश्रियमम ।

समारस्तागरनिमज्जदगेरन्तुपोतापमानमभिनम्य जिनेन्द्रस्य ॥ १ ॥

यस्य स्वयं सुरगुर्गातिमाम्बुरागे श्रोत्र सुषिस्तमतिर्न तिसुषिधातुम् ।

तीर्थेन्द्रस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याहमेव किल संस्तरन करिष्ये ॥ २ ॥

श्रद्धि—ॐ ह्रीं श्रद्धे गमो पास पासं पराणाण । ॐ ह्रीं श्रद्धे गमो दुर्व्यं कराम । मन्त्र—

ॐ नमो भगवते मम ईक्षितां कार्यसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा । यन्त्र—कमराकार पत्रांग—२३

पात्रही मध्ये श्रद्धि मध्ये कञ्चू, ऊपरि मन्त्र दिन ६० वर्ष, प्रहर २ नित्यप्रति १०० अक्षर ।

पर्वत ऊपर, रक्त धासन, रक्त माला, पुत्र दिग्मुक्त, धूप, कर्पूर, चन्दन, शृगमद से लाल रत्न

की लक्ष्मी लाभ मन्त्र धीपार्वताय वृडास्त्र करै, प्रदक्षर्षण वाले और एकान्त शुक्ति रहै ।

(आगे इसी मन्त्र का यन्त्र दिया है) ॥ १२ ॥

x

x

x

x

अन्त भाग (पर पृष्ठ २१, पकि १)—

स्थामिन् सुदूरमथनस्य समुत्पतन्तो मन्ये धरन्ति शुचयः सुरचामरीषा ।

येऽस्मै नति विदधते मुनिपुत्राय ते नूनमूर्ध्वगतयः सन्तु शुद्धभाषा ॥ २२ ॥

श्रद्धि—ॐ ह्रीं श्रद्धे गमो तदरक्तपत्राय । मन्त्र—ॐ नमो पद्मायै हम्ब्यू नमः । यन्त्र—  
धमरक वृत्ताकार पत्र मय—९ मध्ये महाक्षरणि तदुपरि श्रद्धि, दिन २१, नित्य १००० अक्षर

बाग में अच्छा श्रेष्ठ फलानि जपै, आसन ढाम (कुश), माला तुलसी, मुख नैर्ऋत्य कोण,  
धूप गुग्गुल, इंरीला घृत की देय गयो पुष्प नीपत्रै ( कदम्बपुष्प ) ॥ २२ ॥

( धाने चम्पक-वृक्षाकार में सुन्दर यंत्र बना हुआ है ) ।

×

×

×

×

अन्तिम भाग :—

जननयनकुमुदचन्द्रप्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुवत्वा ।

ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥ ४४ ॥

ऋद्धि—ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं नमः । मन्त्र—ॐ नमो धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय श्रीं ह्रीं  
पें अर्हं नमः । यन्त्र—गुलाब पुष्पवत् पंच कर्णिका मध्ये ॐ कर्णिकायां ऋद्धि । तदुपरि  
मंत्र । दिन ४०, नित्य १००० जपै, लक्ष्मी प्राप्ति, आसन रक्त, माला विद्रुम, पूर्व मुख,  
धूप चन्दन मुस्त, कपूर एकरस । प्रथम तो साधक जन ब्रह्मचर्य धारक हो, पत्र अहिंसादि  
धर्म का धारी हो, लघु भुक्ति, दयावान हो, पवित्रात्तं चर्माश्रित यस्तु घृत हींग आदि का  
व्यागी हो मन्त्र सिद्ध करे । मंत्र सिद्ध होने पर पद्मावती देवी का पूजन श्रावकाने भुक्त देय,  
चार प्रकार संव दान दे । सर्व संकट टले, सर्वसिद्धि श्रीपार्ष्वनाथ रत्न चूड़ा देय ॥ ४४ ॥

‘भक्तामर’ के समान इस स्तोत्र में भी ऋद्धि, मन्त्र, यन्त्र एवं साधनक्रम आदि प्रत्येक  
पद्य के अन्त में स्पष्ट दिये गये हैं । ग्रन्थ में कहीं मन्त्रादि विवरण-कर्ता का उल्लेख नहीं  
मिलता है । श्रीकुमुदचन्द्रजी केवल इस स्तोत्र के प्रणीता हैं ।

(३७) ग्रन्थ नं०  $\frac{२५०}{ख}$

## सिद्धचक्र

कर्ता—ललितकीर्ति भट्टारक

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई २१ इंच

चौड़ाई ११ इंच

पत्र संख्या ११६

प्रारम्भिक भाग—

प्रणम्य श्रीजिनाधीशं लब्धितामस्त्यसंयुतम् ।

श्रीसिद्धचक्रयन्त्रस्याच्चाग्निहस्त्रधुर्यां स्तुते ॥ १ ॥

- यजमान लक्षण— विनालो बुद्धिमान् प्रीतो न्यायोपात्तघनी महान् ।  
गीर्वादिगुणसम्पन्नो यष्टा मोज्ज प्रशस्यते ॥ २ ॥
- याज्ञक लक्षण— देशशालादिभायज्ञो निर्मगो बुद्धिमान् वर ।  
सडागयादिगुणोपेतो याज्ञक सोंञ्ज गस्यते ॥ ३ ॥
- आचार्य लक्षण— वर्जनप्रानचाग्निं सयुतो ममतान्तग ।  
प्राज्ञ प्रदनमःशान्न गुरु स्वाच्छान्तिनिधित् ॥ ४ ॥
- भगडप-लक्षण— निर्मल पृथुल घटातारकानोरणान्वितम् ।  
प्रलम्बपुण्यमागद्वय चतुर्गं पुभमयुतम् ॥ ५ ॥  
भेरीपट्टकसालतागमार्गतिस्वनै ।  
आकुल, स्त्रैण्णीताद्वय भगडप कारयेद्गुध ॥ ६ ॥
- सामग्री लक्षण— स्वजात्योत्कर्षिणी पृथा नेत्रमानसहारिणी ।  
सामग्री शम्यत सज्जिर्निर्मितानन्दकारिणी ॥ ७ ॥

X

X

X

गध्य भाग (पूर्वपृष् ६६, पक्ति १)

- जयमान— देशाधार्शमर्हणौ फणिपतिभिस्त्रिह प्रत्यहं पूज्यपादा  
नर्हन्मिडानुगहात्रिबिधमुनिरान् मूर्धुपाप्यपसाधून् ।  
शौपाताताग्निष्ठान् निनगुगुगगणाभूरगैर्मुपितास्तान्  
नत्रा दृगधोधुत्तारिभिरपि सहितान्मस्तुत्र सद्गुणाप्यै ॥ १ ॥  
सदनन्तचतुष्टयगुणत्रिलाम हतप्रानिचतुष्टयकर्मपास ।  
सकलातिशयादिसुगुणममृद्ध त्यक्(१)मर्हन् जिन जय जय सुमुद ॥ २ ॥  
जय कर्माष्टकष्टतर्करदूर जय विदशालोदनपरमशूर ।  
जय जय सर्वोत्तमस्तुसमृद्ध सिद्धाधिप जय जय शुद्ध पुष्ट ॥ ३ ॥  
जय पञ्चाचारापरणधीर जय निष्पानुप्रहकरणरीर ।  
स्थितकल्यदशादिसुगुणममृद्ध जय सूर्यदत्त सतत प्रमुद ॥ ४ ॥  
धकाङ्गांगधृतकण्टहार जय लम्बचतुर्गपुयंगार ।  
पय ध्रुतजलनिधिगुणस्तमृद्ध त्य पाठक जय मतत प्रमुद ॥ ५ ॥  
आरंभपरिग्रहनिर्जितमुक्त जय द्विष्योपचारित्तरक्त ।  
जय मृगेत्तरगुणनिधिस्तमृद्ध जय साधो जय क्षतत प्रमुद ॥ ६ ॥  
जय मम्यमूर्जनचञ्चुरक्त तपमा सह रत्नत्रयपरिव्र ।  
शयद्वारपरमगुणभेदपुर्या सधितमुनिदत्तकर्मचूर्ण ॥ ७ ॥

पञ्चैतान्परमैष्टिनः सुतपसा रत्नालयेगान्वितान्  
संसाराम्बुधितारकान् भुविजनाः ध्यायन्ति ये नित्यशः ।  
तं देवेन्द्रपदं नरेन्द्रपदयोप्राप्ता गुर्गोर्मद्रकोः  
सार्द्धं जन्मजरादिदुःखरहितं पश्चान्लभन्ते शिवम् ॥ ८ ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

श्रीकाण्डसंघे ललितादिकीर्तिना भट्टारकेणैव विनिर्मिता वरा ।  
नामावली पद्यनिबद्धरूपिका भूयात्सतां मुक्तिपदातिकारणम् ॥

इस 'सिद्धचक्रपूजा' के रचयिता काण्डासंघीय भट्टारक ललितकीर्तिजी हैं। इन्होंने ही आदिपुराण की एक संस्कृत टीका भी लिखी है। इनके अतिरिक्त त्रिलोकसार-पूजा नामका एक श्रौर ग्रन्थ इनका मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ सिद्धचक्रपूजा में रचयिता के नाम संघ श्रौर पद के सिवा श्रौर कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। हां, आदिपुराण की टीका की निम्न लिखित प्रशस्ति में अपने गुरु का नाम दिया है।

वर्षे सागरनागभोगिक्रुमिते मार्गे च मासेऽसिते  
पक्षे पक्षतिसप्तियों रविदिने टीका कृतैयं वरा ।  
काण्डासंघवरं च माथुरवरं गच्छे गगो पुष्करे  
देवश्रीजगदादिकीर्तिरभवत्ख्यातो जितात्मा महान् ॥  
तच्छिष्येण च मन्दतान्वितधिया भट्टारकत्वं यता  
शुभद्वै(?) ललितादिकीर्त्यभिधया ख्यातेन लोके ध्रुवम् ।  
राजर्क्षीजिनसेनभापतमहाकाव्यस्य भक्त्या मया  
संशोध्यैवमुपग्रतां बुधजनैः शान्तिं विधायाम्द्रात् ॥

'दिगन्वर जैन ग्रन्थकर्ता श्रौर उनके ग्रन्थ' में पं० नाथूरामजी प्रेमी ने इनका समय वि० सं० ६०११ दिया है। किन्तु उल्लिखित प्रशस्ति में दिये गये समय से इसका विशेष अन्तर पड़ जाता है।

ललितकीर्तिजी का यह टीकाग्रन्थ ताड़पत्राङ्कित कन्नडाक्षरमें भवन में मौजूद है। उन्होंने ने अपने पूज्य गुरु का नाम ऊपर श्रीजगत्कीर्ति देव लिखा है। प्रायः यही जगत्कीर्ति 'पकीभावनोद्यापना' के रचयिता हैं। प्रस्तुत कृति की भाषा ललित एवं विशुद्ध है।



(३८) ग्रन्थ नं० ३३  
ख

## लोकतत्त्व-विभाग

कला—धौसिंहसुरि

विषय—भूगोल

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इंच

चौड़ाई ८ इंच

पत्रमस्था

प्रारम्भिक भाग—

लोकालोकविभागज्ञान् मनया म्नुत्वा विनेश्वरान् ।  
 व्याख्यास्यामि समानेन लोकतरमनेकधा ॥ १ ॥  
 क्षेत्र कालस्तथा तीर्थ प्रमाणपुर्यै सह ।  
 चरितञ्च महत्तेषां पुराण पञ्चधा रिदु ॥ २ ॥  
 समन्ततोऽयनन्तस्य त्रियनो मध्यमाधित ।  
 त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्षल्लोकोऽस्य मध्यग ॥ ३ ॥  
 जम्बूद्वीपाऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यग ।  
 तस्माद्द्विभागो लोकस्य तिर्यगूष्यऽधरस्तथा ॥ ४ ॥  
 तिर्यग्लोकस्य बाहुल्य मेधांयामस्तम स्मृतम् ।  
 तस्मादूर्ध्वा मण्डूर्ध्वा ह्यधस्तात्पराऽपि च ॥ ५ ॥

x

x

x

मध्यभाग (पूर्वपृष्ठ ३७, पक्ति १२)

शुक्रो जीवो बुधो भौमो राहुरिष्टनैश्वर ।  
 धूम्राग्निवृष्णनीला स्यु रक्त शीतश्च केतर ॥  
 श्वेतकतुर्जलाम्यम्भ पुष्पकेतुरिति महा ।  
 प्रतिचन्द्र महा पत वृत्तिकादीनि भानि च ॥  
 पद्मताप वृत्तिका प्रोक्ता भावदया व्यजनोपमा ।  
 शकटोऽग्निसमा ह्वेया रोहियण पवनारका ॥

मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिलः सौम्यस्य तारकाः ।  
 दीपिकावद्भवत्याद्रा पकतारा च सोदिता ॥  
 पुनर्वसोश्च पट्टारा व्याख्यातास्तोरणोपमाः ।  
 अनुराधाः पडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ताः ॥-  
 वीणाष्टंगसमा ज्येष्ठा तिलस्तस्याश्च तारकाः ।  
 मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारकाः ॥  
 आर्द्रं दुष्कृतवापीवच्चतस्रस्तस्य तारकाः ।  
 वैश्वस्य सिंहकुंभामाश्चतस्रस्तारका ध्रुवम् ॥  
 अभिजिद्गजकुंभामस्तिखस्तस्य च तारकाः ।  
 मृदंगसदृशो दृष्टः श्रवणश्च त्रितारकः ॥  
 पंचतारा धनिष्ठा च पतल्पङ्गिसमाश्च ताः ।  
 एकादशशतं तारा वारुणासन्यवच्च ताः ॥  
 पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिपूर्वतनूपमे ।  
 उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनोऽपरगात्रवत् ॥  
 रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारकाः ।  
 अश्वनी पञ्चतारा स्यान्मताः साश्वशिरस्समा ॥  
 भरणीऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपापाणसंस्थिताः ।  
 सैकादशशतं चैकसहस्रं स्वस्वतारकाः ॥  
 प्रमाणेनाहतं कृत्तिकादिताराप्रमा भवेत् ।  
 नवाभिजिन्मुखास्ताराः स्वातिः पूर्वोत्तरेति च ॥  
 द्वादशप्रथमे मार्गे चरन्तीन्द्रोर्मता इति ।  
 मघापुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि ॥  
 रोहिणी च तथा चित्रा पण्डे मार्गे च कृत्तिका ।  
 विशाखा चाष्टमे चानुराधा च दशमे पथि ॥  
 ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे शोभाः पञ्चदशोऽङ्काः ।  
 हस्तमूलत्रिकं चैव मृगशीर्षद्विकं तथा ॥  
 पुष्यद्वितयमित्यष्टौ शेषताराः प्रकीर्तिताः ।  
 कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्यं यन्त्यष्टमा मघाः ॥  
 उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेवं तु योजयेत् ॥-  
 भरणी स्वातिरश्लेषा चाद्राशतमिपक्तया ॥

(३८) ग्रन्थ नं० २५१  
ख

## लोकतत्त्व-विभाग

कर्ता—श्रीसिंहसूरि

विषय—भूगोल

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इञ्च

चौड़ाई ८। इञ्च

पत्रसंख्या

प्रारम्भिक भाग—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान् ।  
 व्याख्यास्यामि समामेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १ ॥  
 क्षेत्र कालस्तथा तीर्थ प्रमाणपुर्यं सह ।  
 चरितञ्च महत्तेषां पुराण पञ्चधा त्रिदु ॥ २ ॥  
 समन्ततोऽयनन्तस्य विद्यतो मध्यमाश्रित ।  
 त्रिविभागस्थितो लोकस्तिर्यग्गोकोऽस्य मध्यग ॥ ३ ॥  
 जम्बूद्वीपोऽस्य मध्यस्थो मन्दरस्तस्य मध्यग ।  
 तस्माद्द्विभागो लोकस्य तिर्यग्भूषऽधरस्तथा ॥ ४ ॥  
 तिथल्लोकस्य बाहुल्य मेवायामसमं स्मृतम् ।  
 तस्माद्दूर्वा भवेद्दूर्वा क्षयस्तादधरोऽपि च ॥ ५ ॥

x

x

x

मध्यभाग (पूर्वपृष्ठ ३७, पक्षि १२)

शुक्रो जीरो ध्रुवो भौमो चन्द्रश्चन्द्रश्चरत् ।  
 धूम्राग्निवृष्णनीला स्यु रक्त शीतश्च केतव ॥  
 श्वेतस्तुर्जलाख्यश्च पुण्यकेतुरिति प्रहा ।  
 प्रतिचन्द्र प्रहा एते वृत्तिकादीनि भानि च ॥  
 यद्गताय वृत्तिका प्रोक्ता आहृत्या व्यजनोपमा ।  
 शकटाऽघिसमा ह्येया रोहिण्य पवनारका ॥

मृगस्य शिरसा तुल्यास्तिलः सौम्यस्य तारकाः ।  
दीपिकाबद्धवत्याद्वा एकतारा च सोदिता ॥  
पुनर्वसोश्च पट्तारा व्याख्यातास्तोरणोपमाः ।  
अनुराधाः पडेवोक्ता मुक्ताहारोपमाश्च ताः ॥  
वीणाशृंगसमा ज्येष्ठा तिलस्तस्याश्च तारकाः ।  
मूलो वृश्चिकवत्प्रोक्तो नव तस्यापि तारकाः ॥  
आष्यं दुष्कृतवापीवच्चतस्रस्तस्य तारकाः ।  
वैश्वस्य सिंहकुंभाभाश्चतस्रस्तारका ध्रुवम् ॥  
अभिजिद्गजकुंभाभस्तिषस्तस्य च तारकाः ।  
मृदंगसदृशो दृष्टः श्रवणश्च त्रितारकः ॥  
पंचतारा धनिष्ठा च पतत्पत्तिसमाश्च ताः ।  
एकादशशतं तारा वारुणासैन्यवच्च ताः ॥  
पूर्वप्रोष्ठपदे तारे हस्तिपूर्वतनूपमे ।  
उत्तरे चोदिते तारे हस्तिनोऽपरगात्रवत् ॥  
रेवती नौसमा तस्या द्वात्रिंशत्खलु तारकाः ।  
अश्वनी पञ्चतारा स्यान्मताः साश्वशिरस्समा ॥  
भरणीयोऽपि त्रिकास्ताराश्चुल्लीपापाणसंस्थिताः ।  
सैकादशशतं चैकसहस्रं स्वस्वतारकाः ॥  
प्रमाणेनाहतं कृत्तिकादिताराप्रमा भवेत् ।  
नवाभिजिन्मुखास्ताराः स्वातिः पूर्वोत्तरेति च ॥  
द्वादशप्रथमे मार्गे चरन्तीन्दोर्मता इति ।  
मघापुनर्वसू तारे तृतीये सप्तमे पथि ॥  
रोहिणी च तथा चित्रा पठे मार्गं च कृत्तिका ।  
विशाखा चाण्डमे चानुराधा च दशमे पथि ॥  
ज्येष्ठा चैकादशे मार्गे शोषाः पञ्चदशेऽप्युक्ताः ।  
हस्तमूलत्रिकं चैव मृगशीर्षद्विकं तथा ॥  
पुष्यद्वितीयमित्यष्टौ शेषताराः प्रकीर्तिताः ।  
कृत्तिकासु पतन्तीषु मध्यं यन्त्यण्डमा मघाः ॥  
उदयन्त्यनुराधाश्च शेषेष्वेवं तु योजयेत् ॥  
भरणी स्वातिरश्लेषा चार्द्राशतभिपक्तया ॥

ज्येष्ठेति षड् जघन्या सुखलृष्ट्याञ्चोत्तराक्षयम् ।  
 पुनरसु रिशाया व रोहिणी वेति ष् पुन ॥  
 अश्वनी वृत्तिका चानुराधा चित्रा मघा तथा ।  
 मूलं पूर्वत्रिक पुष्यं हस्त अश्लेषा ॥  
 मृगशीर्ष धनिष्ठेति त्रिपञ्च च मध्यमा ।  
 श्विजंघन्यभे तिष्ठेत् सत द्वादशमांशकम् ॥  
 षड्दिन मध्यमोत्प्रे भे तद्द्विद्विगुण कर्मात् ।  
 अभिजिन्नामभे नेन सपञ्चमचतुर्दिनम् ॥  
 सप्तमस्थानशून्यत्रिपण्मुहूर्त्त विधुश्चेत् ।  
 चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे दिनार्धे मध्यमक्षेत्रे ॥  
 विषस चोत्तमे भे च तिष्ठेत् सार्धदिन ध्रुवम् ।  
 योजनानां भवेत्त्रिंशत् पष्टिश्च नरति क्रमात् ॥  
 जघन्यमध्यमोत्प्रेन्नक्षत्रपरिमण्डलम् ।  
 अभिजिन्मण्डलक्षेत्रमष्टाशकयोजनम् ॥  
 घटिका अपि तासां सु समसख्या हि मण्डले ।

x                      x                      x

अन्तिम भाग—

६५धा दासतपांशानना विरचित कर्मापि सिद्ध मुनि  
 सिद्धिं याति विहाय जन्मगहन शार्ङ्गलङ्कितम् ॥  
 मध्येभ्य सुरमातुरोरुसदस्ति धीवर्धमानार्हता  
 यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं भारतं सुधर्मादिभिः ।  
 भाचार्यावल्किनागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा  
 भाषाया परिघर्तनेन निपुणैः सम्मन्यतां साधुभिः ॥  
 धैर्ये स्थिते रविस्तुते कृपमे च जीवे  
 राजोत्तरायु सितपद्ममुपेत्य चन्द्रे ।  
 प्राप्ते च पाटलिकनामनि पाशु(पाण्ड्य राष्ट्र)  
 शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसखनन्दी ॥

संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।

अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥

पञ्चादशशतान्याहुः पट्त्रिंशदधिकानि वै ।

शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेव इन्द्रसानुष्टुमेन च ॥

इति लोकाविभागे मोक्षविभागो नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ।

इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत और इन्द्र अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुपक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग एवं मोक्षविभाग नाम के ग्यारह अधिकार या अध्याय हैं। संक्षेप में यह त्रैलोक्यसार के ढंग का ग्रन्थ है। इसके अन्तिम श्लोक ये हैं—

“वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,

राजोत्तरेषु सितपत्तमुपेत्य चन्द्रे ।

ग्रामे च पाटलिक नामनि पाण(पाराड्य)राष्ट्रे,

शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥१॥”

“संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।

अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥२॥”

“पञ्चादशशतान्याहुः पट्त्रिंशदधिकानि वै ।

शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेव इन्द्रसानुष्टुमेन च ॥३॥”

उल्लिखित प्रथम श्लोक का यह अर्थ होता है कि जिस समय उत्तराषाढ नक्षत्र में शनि, वृषराशि में गुरु तथा उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था, एवं शुक्लपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा थी) उस समय पाण (पाराड्य) राष्ट्र के पाटलिग्राम में इस शास्त्र का प्रणयन पहले सर्वनन्दी नामक मुनि ने किया ।

श्लोकगत पाटलिग्राम शब्द के फुटनोट में जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ ५२६ में परिहित नाथूरामजी प्रेमी ने पाटलिग्राम को पाटलिपुत्र मान कर लिखा है कि ‘पाटलिपुत्र पटने का पुराना नाम है’। परन्तु वास्तव में यह पाटलिग्राम प्राचीन पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) न होकर प्राचीन पाराड्यदेशान्तर्गत वर्तमान कड्डलोर (Cuddalore) है † इसे ‘ट्रिप्यदिरिपुलियूर’ आदि ग्रन्थों में त्रिप्यदिरिपुलियूर (Trippadiripuliyur) भी कहा गया है ।

† “Some contributions of South India to Indian Culture” By Prof. Krishna Swami Iyengar.

ज्येष्ठेति पद् अघन्या स्युष्टृष्टाधोत्तराजयम् ।  
 पुनर्वसु विशाखा च रोहिणी चेति पद् पुनः ॥  
 अश्वनी वृश्चिका चानुराधा चित्रा मघा तथा ।  
 मूलं पूर्वाश्रिक पुष्य हस्त धरणीष्यती ॥  
 मृगशीर्ष घनिष्ठेति त्रिप्रपञ्च च मध्यमा ।  
 रविर्जघन्यभे तिष्ठेत् सप्त द्वादशमांशकम् ॥  
 षड्दिनं मध्यमोत्क्षे भे तद्विद्विगुण्य कमात् ।  
 अभिजिघ्रामभे नेन सपञ्चमचतुर्दिनम् ॥  
 सप्तपञ्चाशत्यन्यत्रिपञ्चमुहूर्त्त विभुश्चेत् ।  
 चन्द्रो जघन्यनक्षत्रे दिनार्धे मध्यमक्षेत्रे ॥  
 विषस चोत्तमे भे च तिष्ठेत् सार्धादिनं ध्रुवम् ।  
 योजनानां भवेच्चिरात् पण्डित्य नवति क्रमात् ॥  
 जघन्यमध्यमोत्क्षेणक्षत्रपरिमण्डलम् ।  
 अभिजि मण्डलक्षेत्रमष्टावराकयोजनम् ॥  
 घटिका अपि तासां स्युः समसख्या हि मण्डले ।  
 × × ×

अग्निम माग—

युक्तं प्राणिव्यागुणेन विमलैः सत्त्वादिभिश्च घटे  
 मिथ्यादिष्टिकपाथनिजयशुर्विजित्वेन्द्रियाणां वशम् ।  
 दग्धा दीप्ततपोऽग्निना विरचितं कर्मापि सिद्धं मुनि-  
 सिद्धिं याति विहाय जन्मगहनं शार्दूलकिरीडितम् ॥  
 भव्येभ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रोवधमानार्हता  
 यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः ।  
 भाचार्यबलिकागतं विरचितं तत्सिद्धसुरर्षिणा  
 भाषायां परिघर्तनेन निपुणैः सम्मन्यतां साधुभिः ॥  
 वैशेषे स्थिते रचिसुते ध्रुवभे च जीवे  
 राजोत्तरेषु सितपत्तमुपेत्य चन्द्रैः ।  
 ग्रामे च पादलिकनामनि पाण्डु(पाण्ड्य) राष्ट्र्ये  
 शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दी ॥

संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।

अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥

पञ्चादशशतान्याहुः पट्विंशदधिकानि वै ।

शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेप छन्दसानुष्टुभेन च ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नामैकादशं प्रकरणं समाप्तम् ।

इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुषक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग एवं मोक्षविभाग नाम के ग्यारह अधिकार या अध्याय हैं। संक्षेप में यह त्रैलोक्यसार के ढंग का ग्रन्थ है। इसके अन्तिम श्लोक ये हैं—

“वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,

राजोत्तरेषु सितपद्ममुपेत्य चन्द्रे ।

प्रागे च पाटलिक नामनि पाण(पाराड्य)राष्ट्रे,

शास्त्रं पुरा लिखितवान्मुनिसर्वनन्दी ॥१॥”

“संवत्सरे तु द्वाविंशे काञ्चीशसिंहवर्मणः ।

अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥२॥”

“पञ्चादशशतान्याहुः पट्विंशदधिकानि वै ।

शास्त्रस्य संग्रहस्त्वेपः छन्दसानुष्टुभेन च ॥३॥”

उल्लिखित प्रथम श्लोक का यह अर्थ होता है कि जिस समय उत्तरापाद नक्षत्र में शनि, वृषराशि में गुरु तथा उत्तराफाल्गुनी में चन्द्रमा था, एवं शुक्लपक्ष था (अर्थात् फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा थी) उस समय पाण (पाराड्य) राष्ट्र के पाटलिग्राम में इस शास्त्र का प्रणयन पहले सर्वनन्दी नामक मुनि ने किया ।

श्लोकगत पाटलिग्राम शब्द के फुटनोट में जैनहितैषी भाग १३, पृष्ठ ५२६ में परिचित नाथूरामजी प्रेमी ने पाटलिग्राम को पाटलिपुत्र मान कर लिखा है कि ‘पाटलिपुत्र पटने का पुराना नाम है’। परन्तु वास्तव में यह पाटलिग्राम प्राचीन पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) न होकर प्राचीन पाराड्यदेशान्तर्गत वर्तमान कड्डलोर (Cuddalore) है † इसे ‘ट्रिप्यपुरायण’ आदि ग्रन्थों में त्रिप्यदिरिपुलियूर (Trippadiripuliyur) भी कहा गया है ।

† “Some contributions of South India to Indian Culture” By Prof. Krishna Swami Iyengar,



क्योंकि उल्लिखित द्वितीय श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि 'कांची के राजा सिंहधर्मा के राज्यारोहण के धार्मिक संघटसर और शक ३५० वें वर्ष में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ'। कांचीन राजा यह सिंहधर्मा पहलवंग के तत्कालीन शासक हैं। उन लोकविभाग का रचनास्थान प्राचीन पाटलिपुत्र अर्थात् वर्तमान पटना न होकर वृद्धि भारत का उक्त स्थान मानना ही सयुक्तिक है। दूसरी बात यह है कि उक्त श्लोक में जो 'पाण्ड्य' शब्द आया है उसको कितने ही विद्वान् अभी तक पाण्य या पाण्य राष्ट्र के रूप में ही मानते आ रहे हैं। किन्तु वास्तव में यह पाण्य या पाण्य राष्ट्र न हो कर 'पाण्ड्य राष्ट्र' हो हीना चाहिये, जिसकी राजधानी सिंहधर्मा के काल में भी कांचीनगरी ही रही। ऊपर दिये अन्त के तीसरे पद्य से सिद्ध होता है कि इस लोक-विभाग में अनुष्टुप् छन्द के हिसाब से १५२६ पद्य हैं। साथ ही साथ निम्नलिखित पद्य तथा उक्त प्रथम पद्य के अन्तिम पद्य से यह भी ज्ञान होता है कि इसके मूल प्राकृत के रचयिता मुनि सर्वनन्दी हैं। सिंहनन्दी केवल इसकी संस्कृत भाषान्तरकार हैं।—

“भग्येभ्य सुरभानुषोबसद्भिः धीज्जमानार्हता  
 मत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः ।  
 आचार्यवलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरपिण्ड  
 भाषाया परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानितं साधुभिः ॥”

इस ग्रन्थ में जो शक ३८० [वि० सं० ५१२] रचनाकाल दिया गया है, वह मूल प्राकृत लोकविभाग का है; न कि इस सिंहसूरिद्वारा संस्कृत लोकविभाग का। संभव है कि इसका रचनाकाल या तो जियन ही नहीं गया है या लेखकों के प्रमाद से छूट गया है। इस सुसूक्त लोकविभाग में 'त्रिलोक-प्रबन्धि' और 'प्रादिपुराण' आदि के अतिरिक्त 'त्रिलोकसार' ग्रन्थ के भी लक्षण मिलने हैं। इसलिये निर्विवाद सिद्ध होता है कि यह लोकविभाग विनमोय ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। हाँ, इसका निश्चित समय अभी विचारणीय है।

उल्लिखित पक्तियों का आशय यह हुआ कि उपलब्ध यह संस्कृत 'लोकविभाग' अधिक प्राचीन नहीं है। प्राचीनता में उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह शक सत्र ३८० [वि० सं० ५१२] के एक बहुत पुराने प्राकृत लोकविभाग का संस्कृत रूपान्तर है। परन्तु इस बात का निर्णय होना अभी बाकी है कि यह त्रिलोकसार से कितने समय पूर्व बना। अंगर इसके कर्ता श्रीसिंह सूरि जी के अन्य किसी ग्रन्थ का पता लगता तो उससे शक्य इसका निर्णय हो जाता। मैं जानने सिंहसूरि-नामक ग्रन्थकर्ता दो-तीन हुए हैं। यह सिंहसूरि उनमें से अन्यतम हैं या भिन्न है इसका भी निर्णय होना आवश्यक है।

प्रस्तुत लोकविभाग के कर्ता सिंहसूरि जी ने अपनी इस कृति में अपनी गुरुपरम्परा का कुछ भी परिचय नहीं दिया है।

इसमें सन्देह नहीं है कि यह लोकविभाग जैनभूगोल के उल्लेखनीय ग्रन्थों में से एक है। बल्कि संस्कृत साहित्य की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। क्योंकि यह ग्रन्थ अपनी सरलता एवं शब्द-सुन्दरता से रचयिता के संस्कृत-पाण्डित्य को अभिव्यक्त करने से बाज नहीं आता। किसी जैनप्रकाशन-संस्था को इसे प्रकाशित कर जैनभूगोल-संबंधी उलझनों को सुलझाने में सहायक बनना चाहिये।

(३७) ग्रन्थ नं०  $\frac{२५२}{६}$

## श्रीपुराण

कर्ता—सकलकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३ इंच

चौड़ाई ६ इंच

पत्र संख्या ३८

प्रारम्भिक भाग—

धीमते सकलज्ञानसाप्राज्यपदमीयुषे ।  
 धर्मचक्रभृते भर्त्रे नमः संसारमीमुषे ॥१॥  
 पुराणं मुनिमानस्य जिनं वृषभमच्युतम् ।  
 महत्तस्तत्पुराणस्य पीठिका व्याकरिष्यते ॥२॥  
 अनादिनिधनःकालो वर्तनालक्षणो मतः ।  
 लोकमात्रः स सूक्ष्माणुपरिच्छिन्नप्रमाणकः ॥३॥  
 वर्तितो द्रव्यकालेन वर्तनालक्षणेन यः ।  
 कालः पूर्वापरीभूतो व्यवहाराय कल्पते ॥४॥  
 उत्सर्पिण्यावसर्पिण्यौ द्वौ भेदौ तस्य कीर्त्तितौ ।  
 उत्सर्पादवसर्पाच्च बलायुर्देहवर्णणाम् ॥५॥  
 कोटीकोट्यो दशैकस्य प्रमा सागरसंख्यया ।  
 शेषस्याप्येवमेवैष तावुभौ कल्प इष्यते ॥६॥

×

×

×

मध्य भाग (परपृष्ठ १६, पक्ति ११)

अथ कालागरुद्धामधूपधृमाधिरासिते ।  
 मणिप्रदीपिकोद्योतनूरीवृततमस्तरे ॥  
 धासगोहेऽन्यदा शिष्ये तत्पे मृदुनि हारिणि ।  
 प्रियास्तनतटस्पर्शसुप्रमंगलित गेचन ॥  
 तत्र घातायनद्वारपिधानास्त्रधूमरे ।  
 केनासस्फारधूपोद्यद्भूमेन सगमूर्च्छितौ ॥  
 शिख्रोच्छ्वाससदोम्पिल्यादन्त किञ्चिदिराकुलौ ।  
 दम्पती तौ निगामभ्ये दीर्घनिद्रामुपेतु ॥  
 जम्बूद्वीपे महामेरोक्षसर्गं दिगमाधिता ।  
 सत्युदङ्कुरवो नाम स्वर्गधीपरिहासिन ॥  
 नयमास स्थिता गर्भे रत्नगर्भगृहोपमे ।  
 यत्र दम्पतितामेत्य जायन्ते दानिनो नरा ॥

× × ×

अन्तिम भाग—

मनःपर्ययज्ञानमन्यस्य सद्यः समुत्पन्नवत्केवल धानु तस्मात् ।  
 तदैवाभयद्रव्यता तादृगी सा शिचित्रागिर्ना निवृत्ते प्राप्तिरत्न ॥  
 परिचितयतिहमो धर्मवृद्धिं निपिचन्  
 नमसि हृतनिवशो निर्भलस्तुद्भवृत्ति ।  
 फलमविकलमद्र्य भन्यगस्थेषु कुर्वन्  
 अहर्दखिलदेनांशुद्धारदेवास्तमेव ॥  
 विदित्य मुधिर त्रिनेयजनतोपकृतस्वाप्तुपो-  
 मुहूर्त्तपरिमास्थितौ विहितसत्त्वियो त्रिच्युतौ ॥  
 तनुत्रितप्रबन्धनस्य गुणमागत्सुसिं स्फुर-  
 जगत्प्रयगिखामणिं मुखनिधिं स्वधानि स्थित ॥  
 सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्या  
 सत्य गता सकलजन्तुषु शान्तचित्ता ।  
 कालक्रमेण यमशीलगुणाभिपूर्णा  
 निर्वाणमाप्तुपमित गुणिनो गणीन्द्रा ॥

यो नामेस्तनयोऽपि विभ्वविदुषां पूज्यः स्वयम्भूरिति  
 त्यक्त्वाशेषपरिग्रहोऽपि सकलः स्वामीति यः शन्यते ।  
 मध्यस्थोऽपि विनेयसत्वसमितेरेवोपकारी मतो-  
 निर्दानोऽपि बुधैरूपास्यचरणो यः सोऽस्तु वः शान्तये ॥

इस 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण अथवा अन्तिम भाग आदि में कहीं भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी कुछ भी चर्चा नहीं की है। फिर भी यह ग्रन्थ वि० सं० १४५६ अर्थात् १५वीं शताब्दी वाले सकलकीर्त्ति का माना जाता है। भट्टारक सकलकीर्त्ति जैनसाहित्यक्षेत्र में बड़े ही सफल लेखक माने गये हैं। वल्कि इनके प्रश्नोत्तरश्रावकाचारादि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में एक जगह इनके सम्बन्ध में यों लिखा मिलता है—  
 "भट्टारकपदारूढः सकलाद्यन्तकीर्त्तिभाक् । येन शास्त्राम्बुधिः सम्यक् वर्धितो निजलीलया ॥"  
 इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप भट्टारकपदारूढ होते ही बड़ी आसानी से जैन साहित्य-भाण्डार को भरने लगे। 'प्रश्नोत्तरमाला' में श्रीसकलभूषण ने इन्हें "पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी" इस विशेषण के द्वारा सादर स्मरण किया है। ब्रह्मचारी जिनदास जी ने अपने 'पद्मपुराण' तथा 'हरिवंशपुराण' में आपको "महाकवित्वादिकलाप्रवीणः" कहा है। 'पारडव-पुराण' में भट्टारक शुभचन्द्र जी इनकी प्रशंसा में यों लिख रहे हैं कि "कीर्त्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्तृ सकला पवित्रा ।" इसी प्रकार और भी बहुत से ग्रन्थप्रणेताओं ने सकलकीर्त्ति को महान् ग्रन्थकार होने को लिखा है। इन की लेखनी बहुमुखी रही, अतः पत्र प्रायः प्रत्येक विषय पर इनकी रचना उपलब्ध होती है। इस नाम के एक दूसरे भी भट्टारक हुए हैं, जो कि सुरेन्द्रकीर्त्ति भट्टारक के पट्ट पर आसीन हुए थे। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख "जैनहितैषी" भाग ११, अङ्क १२ में मिलता है। पर इस द्वितीय सकलकीर्त्ति जी के पाण्डित्य-द्योतक कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता है; इसीलिये इनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है।

प्रथम सकलकीर्त्ति जी पद्मनन्दी के पट्ट पर आरूढ हुए थे। इनके बाद क्रमशः इस पट्ट पर श्रीभुवनकीर्त्ति और श्रीज्ञानभूषण पट्टाधिकारी बने। कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में इस सकलकीर्त्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये गये हैं:—

“आचार्यः कुन्दकुन्दारख्यस्तस्मादनुक्रमाद्भूत् ।  
 स सकलकीर्त्तियोगीशो ज्ञानो भट्टारकेश्वरः ॥  
 येनोद्भूतो गतो धर्मो गुजरे वाग्बरादिके ।  
 निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवाहता पुरा ॥  
 तस्माद्भुवनकीर्त्तिः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।  
 विजयकीर्त्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥”

मध्य भाग (परपृष्ठ १६, पङ्क्ति ११)

अथ कालागरूढामधुरधूमाधिवासिते ।  
 मणिप्रदीपिकोद्योतदूरीरुततमस्तरे ॥  
 वासगेहऽन्यदा शिरये तल्पे मृदुनि हारिणि ।  
 प्रियास्तनतटस्पर्शसुखमीलितलोचन ॥  
 तत्र घातायनधारपिधानारूढधूमरु ।  
 केशसस्कारधूपोद्यद्भूमेन क्षणमूर्च्छितौ ॥  
 विक्रदोच्छ्वासदासौसित्यादन्त किञ्चिद्विवाङ्मनौ ।  
 दम्पती तौ निशामभ्ये दोर्धनिद्रामुपेयतु ॥  
 जम्बूद्वीपे महामैरोकत्तरां द्विशमाधिता ।  
 सन्त्युद्भुरव्यो नाम स्वर्गधोगरिहासिनः ॥  
 नवमास स्थिता गर्भे रत्नगर्भगृहोपमे ।  
 यत्र दम्पतितामैत्य जायन्ते दानिनो नराः ॥

× × ×

चण्डिम भाग—

मनःपर्ययज्ञानमन्यस्य सद्यः समुत्पन्नयत्केवलं धातु तस्मात् ।  
 तद्देवाभवद्भवता तादृशी सा विचित्राग्निनां निर्वृत प्रासिक्ते ॥  
 परिचितयतिहसो धर्मवृष्टिं निपिचन्  
 नभसि वृत्तनिर्देशो निर्मलस्तुङ्गवृष्टिः ।  
 फलमग्निफलमद्रव्य भव्यशस्येषु बुर्वन्  
 ब्यहर्षखिलदेनांशुद्धारदेवास्तमेव ॥  
 विहृत्य सुचिरं विनेयजनतोपवृत्स्वायुपो-  
 मुहूर्त्तपरिप्रास्यितो विहितसत्त्वियो विच्युतो ॥  
 तनुत्रितयवधनस्य गुणसत्पारम्परिं स्फुर-  
 जगत्त्रयनिष्कामणिं सुखनिधिं स्वधाम्नि स्थित ॥  
 सर्वेऽपि ते वृषभसेनमुनीशमुख्या  
 मलय गताः सक्लजन्तुषु शान्तविष्ठा ।  
 बालकमेव यमजालगुणाभिपूर्या  
 निर्याकप्रापुरमित्तं गुणिनो गणोन्द्रा ॥

यो नामेस्तनयोऽपि विभ्वविदुषां पूज्यः स्वयम्भूरिति  
त्यक्त्वाशेषपरिग्रहोऽपि सकलः स्वामोति यः शन्यते ।  
मध्यस्थोऽपि विनेयसत्वसमितैरेवोपकारी मतो-  
निर्दानोऽपि बुधैरुपास्यचरणो यः सोऽस्तु वः शान्तये ॥

इस 'श्रीपुराण' के मंगलाचरण अन्तिम भाग आदि में कहीं भी ग्रन्थकर्ता ने अपनी कुछ भी चर्चा नहीं की है। फिर भी यह ग्रन्थ वि० सं० १४४६ अर्थात् १५वीं शताब्दी वाले सकलकीर्ति का माना जाता है। भट्टारक सकलकीर्ति जैनसाहित्यक्षेत्र में बड़े ही सफल लेखक माने गये हैं। वलिक इनके प्रश्नोत्तरश्रावकाचारादि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। 'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में एक जगह इनके सम्बन्ध में यों लिखा मिलता है—  
"भट्टारकपदारूढः सकलाद्यन्तकीर्त्तिभाक् । येन शास्त्राम्बुधिः सम्यक् वर्धितो निजलीलया ॥"  
इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि आप भट्टारकपदारूढ होते ही बड़ी आसानी से जैन साहित्य-भाण्डार को भरने लगे। 'प्रश्नोत्तरमाला' में श्रीसकलभूषण ने इन्हें "पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी" इस विशेषण के द्वारा सादर स्मरण किया है। ब्रह्मचारी जिनदास जी ने अपने 'पद्मपुराण' तथा 'हरिवंशपुराण' में आपको "महाकवित्वादिकलाप्रवीणः" कहा है। 'पाण्डव-पुराण' में भट्टारक शुभचन्द्र जी इनकी प्रशंसा में यों लिख रहे हैं कि "कीर्त्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा ।" इसी प्रकार और भी बहुत से ग्रन्थप्रणोताओं ने सकलकीर्ति को महान् ग्रन्थकार होने को लिखा है। इन की लेखनी बहुमुखी रही, अतः पच प्रायः प्रत्येक विषय पर इनकी रचना उपलब्ध होती है। इस नाम के एक दूसरे भी भट्टारक हुए हैं, जो कि सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक के पट्ट पर आसीन हुए थे। इनका समय उन्नीसवीं शताब्दी है। इनका उल्लेख "जैनहितैषी" भाग ११, अङ्क १२ में मिलता है। पर इस द्वितीय सकलकीर्ति जी के पाण्डित्य-द्योतक कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता है; इसीलिये इनकी इतनी प्रसिद्धि नहीं है।

प्रथम सकलकीर्ति जी पद्मनन्दी के पट्ट पर आरूढ हुए थे। इनके बाद क्रमशः इस पट्ट पर श्रीभुवनकीर्ति और श्रीज्ञानभूषण पट्टाधिकारी बने। कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में इस सकलकीर्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये गये हैं:—

"आचार्यः कुन्दकुन्द्राख्यस्तस्मादनुक्रमाद्भूत्-।  
स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वरः ॥  
येनोद्भूतो गतो धर्मो गुर्जर वाग्बरादिके ।  
निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवाहता पुरा ॥  
तस्माद्भुवनकीर्त्तः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।  
विजयकीर्त्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥"

इन पद्यों से ज्ञात होता है कि सकलकीर्ति जी ने गुजरात और वागड़ आदि देशों में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मंगलचरण श्रीमद्भगवद्भक्तिसेनाचार्य-वृत महापुराण का गी का ल्यो है। इससे अनुमान होता है कि श्रीपुराण का आदर्ग महापुराण ही है। इस मंगलचरण के प्रवृत्त रहस्य का पता लगाने के लिये श्रीपुराण का साधुत सूदमदृष्टि से अध्ययन करने का आवश्यकता है। इसमें प्रथम तीर्थङ्कर श्रीमादिनाथ का चरित्र चित्रित है, इसीलिये लोग इसे आदिपुराण भी कहने हैं। श्रीपुराण की रचनाशैली सरल, सुन्दर एवं भावपूर्ण है।

(३८) ग्रन्थ नं० २५३  
ख

## दशभक्त्यादि महाशास्त्र

वक्ता—मुनीन्द्र वर्द्धमान

विषय—भक्ति आदि

भाषा—संस्कृत

ल० आई ८। इन्व

पी० आई ६।।। इन्व

५४४४५५ १२१

प्रारम्भिक भाग—

नमः धीरुद्धमानाय चिद्विषय स्वयम्भुवे ।  
सद्गतात्मपकाशाय सत्सत्सारात्मेदिन ॥१॥  
रागद्वेषसमृद्धिरुद्धसमता भूतेषु सत्याद्य  
सर्वेषु प्रमदाजनेषु विरतिः कार्पण्यहानि परा ।  
सद्भक्तिर्जिनसिद्धशास्त्रनुनिषु प्रख्यातयोगादिति  
स्तत्सामायिकसयुते यतिजने सत्तापते सर्वदा ॥२॥  
नामादिषु पञ्चविध प्रोक्तं रागद्वेषादिकारणम् ।  
तद्वर्जनं कदा मे स्यात् सामायिकमनुसृतम् ॥३॥  
सम्यक्तथैशानसयुनसंप्रमादयत्तपोयुत ।  
परिणामं कदा मे स्यात् सर्वसाधुचरुण ॥४॥

अथ भाग (पूर्व पृष्ठ ८७ पंक्ति ६) —

यत्रं सद्वृक्षशधर्मलक्षणयुतं ख्यातं जगन्मङ्गलम्  
 विडल्लोकसमर्चितं सुशरणां संसारविघ्नंसकम् ।  
 जीवनमुक्तिसुखप्रदं निरुपमं ज्ञान्त्यादिशब्दोज्ज्वलम्  
 भक्त्याह्वय सुपीठिकोपरि तले संस्थाप्य चाराधये ॥ १ ॥  
 जलगन्धसदककुसुमैश्चरुप्रदीपैः सुधूपफलनिकरैः ।  
 संपूजयामि यत्रं ज्ञान्त्यादिपदांकितं भक्त्या ॥ २ ॥  
 गंगाद्युद्भवनीरेण कञ्जोत्पलसुगान्धिना ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंयुक्तं यत्रं प्रक्षालयाम्यहम् ॥ ३ ॥  
 नारिकेलोदकैः स्वच्छैः सर्वहस्तापहारिभिः ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं संस्नापये मुदा ॥ ४ ॥  
 कबलीकृतपीथूपैर्धवलेक्षुरसैः शुभैः ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं संस्नापये मुदा ॥ ५ ॥  
 सन्तप्तफनफद्रावसंकाशैः पुष्कलैर्घृतैः ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं संस्नापये मुदा ॥ ६ ॥  
 पयोभिः पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिकाविशद्वैरलम्  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं संस्नापये मुदा ॥ ७ ॥  
 संतानिकांचितैः स्निग्धैर्दधिभिः सारगान्धिभिः  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यत्रं संस्नापये मुदा ॥ ८ ॥  
 कुम्भैश्चातुष्टयैः शुद्धैः क्षम्मालारंजिताननैः ।  
 स्नापये यत्रममलं ज्ञान्त्यादिपदभूपितम् ॥ ९ ॥  
 वासनाप्रकृतिगन्धबन्धुरैर्वारिभिर्मलगणोपनोदिभिः ।  
 ज्ञान्तिमुख्यपदराजिरंजितं स्नापये प्रविपुलं गुरुयंत्रम् ॥ १० ॥  
 मन्थेकर्णिकमम्बुजस्य गुरवः पंचापि पञ्चयंकिते  
 यस्य श्रीसद्वले ज्ञान्मादिपदयुक्धर्माः सुशर्मप्रदाः  
 तिष्ठन्ते मुनिराजवृन्दमहितं चूर्णैश्चितं पञ्चभिः  
 तद्यन्त्रं परिपूर्णलक्षणयुतं भक्त्या समाराधये ॥ ११ ॥



इन पदों से ज्ञात होता है कि सरुलकोर्चि जी ने गुजरात और वागड आदि देशों में जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया था।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मंगलाचरण श्रीमद्भगवद्भिनसनाचार्य-वृत महापुराण का उग्रा का त्या है। इससे अनुमान होता है कि श्रीपुराण का आदरा महापुराण ही है। इन मंगलाचरण के प्रवृत्त रहस्य का पता लगाने के लिये श्रीपुराण का साधुन्त सुदमदृष्टि से अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसमें प्रथम तोषडूर धीमादिनाय का चरित विव्रित है इसीलिये लगभग इस आदिपुराण भा कहन है। श्रीपुराण की रचनाशैली सरल सुन्दर एवं भावपूर्ण है।

(३८) ग्रन्थ न०  $\frac{२५३}{६}$

## दशभक्त्यादि महाशास्त्र

धर्मा—मुनीन्द्र वर्द्धमान

विषय भक्ति आदि

भाषा—संस्कृत

ल नई द। इन्व

वौडाइ ८॥॥ इन्व

५सगल्या १३३

प्रारम्भिक भाग—

नमः श्रीवर्द्धमानाय चिदुपाय स्वयम्भुने ।  
 सहजात्मप्रकाशाय सतसत्सारभदिन ॥१॥  
 रागद्वयसमृद्धिद्वयसमता भूनेषु सत्यादय  
 सर्वेषु प्रमदापनेषु निरति कापण्यहानि पय ।  
 सद्भक्तिनिनसिद्धशास्त्रानुनिषु प्रख्यातयोगादिति  
 स्तत्सामायिकमयुन यतिपने सनायत सर्वदा ॥२॥  
 नामादि पडशिध प्रौन रागद्वेषादिकारणम् ।  
 तद्वन्न कदा मे स्यात् सामायिकमनुष्ठम् ॥३॥  
 मम्यनवज्ञानसयुतसयमाद्यतपोयुत ।  
 परिग्राम कदा मे स्यात् सयसायद्यदुरग ॥४॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ८७ पंक्ति ६) —

यंत्रं सद्ब्रह्मशधर्मलक्षणयुतं ख्यातं जगन्मङ्गलम्  
 विद्वद्भ्योक्तसमर्चितं सुशरणां संसारविध्वंसकम् ।  
 जीवन्मुक्तिसुखप्रदं निरुपमं ज्ञान्त्यादिशब्दोद्भवम्  
 भक्त्याह्वयं सुपीठिकोपरि तले संस्थाप्य चाराधये ॥ १ ॥  
 जलगन्धसदककुसुमैश्चरुप्रदीपैः सुधूपफलनिकरैः ।  
 संपूजयामि यंत्रं ज्ञान्त्यादिपद्मांकितं भक्त्या ॥ २ ॥  
 गंगासुन्दरनीरेणा कञ्जोत्पलसुगन्धिना ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंयुक्तं यंत्रं प्रक्षालयाम्यहम् ॥ ३ ॥  
 नारिकेलोदकैः स्वच्छैः सर्वहृत्तापहारिभिः ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ४ ॥  
 कयलीकृतपीठूपैर्धवलेक्षुरसैः शुभैः ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ५ ॥  
 सन्तप्तफनकद्रावसंकाशैः पुष्कलेर्घृतैः ।  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ६ ॥  
 पयोभिः पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिकाविशदरलम्  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ७ ॥  
 संतानिकांचितैः स्निग्धैर्दधिभिः सारगन्धिभिः  
 ज्ञान्त्यादिपदसंशोभि यंत्रं संस्नापये मुदा ॥ ८ ॥  
 कुम्भैश्चातुष्टयैः शुद्धैः क्षम्मालारंजिताननैः ।  
 स्नापये यंत्रममलं ज्ञान्त्यादिपदभूपितम् ॥ ९ ॥  
 वासनाप्रकृतिगन्धबन्धुरैर्वारिभिर्मलगणोपनोदिभिः ।  
 ज्ञान्तिमुख्यपदराजिरंजितं स्नापये प्रविपुलं शुभ्यंत्रम् ॥ १० ॥  
 मध्येकर्णिकमम्बुजस्य गुरवः पंचापि पंचयंकिते  
 यस्य श्रीसदले क्षमादिपदयुक्धर्माः सुशर्मप्रदाः  
 तिष्ठन्ते मुनिराजवृन्दमहितं चूर्णैश्चितं पञ्चभिः  
 तद्यन्त्रं परिपूर्णलक्षणयुतं भक्त्या समाराधये ॥ ११ ॥

अन्तिम भाग :—

बलात्कारगण्यभोजमास्करस्य महाद्युते ।  
 श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणौ ॥ १ ॥  
 शिष्येण श्वातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।  
 जिनेन्द्रचरणद्वैतस्मरणाधीनचेतसा ॥ २ ॥  
 वर्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।  
 कथितं दशमक्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥ ३ ॥  
 शाके वेदखराग्विचन्द्रकलिते सवत्सरे धीच्छवे  
 सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिषे वृष्णाष्टमीवासरे ।  
 रोहिण्यां दशभक्तिपूर्वकमहाशास्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्  
 विद्यानन्दमुनिस्तुत व्यरचयत् सद्बर्धमानो मुनि ॥ ४ ॥  
 विद्वत्कवीन्द्रमुनिभूपतिसञ्जनानां यावत्समस्ति रसना पुण्यरोत्तमानम्  
 धीवर्द्धमानमुनिराजकृतिं कृतार्थां तिष्ठत्वरजगति तावद्वनगणिकी ॥ ५ ॥  
 शलाकापुरुषान्वन्दे सर्वकर्ममहीभवान् ।  
 विद्यानन्दपदाधीशान् वृष्णादेवेन्द्रवन्दितान् ॥ ६ ॥  
 जैना धीवसुधेश्वरा नयविदोऽमात्यां सदा सञ्जना  
 विद्वांस कवयो जयन्तु गमकां सद्वादिनां भावकां ।  
 विप्रा श्रीमुनिवल्लभां श्रुतगुणाचारा मनोजेष्व  
 फान्ता पुत्रसमन्वितां जिनगृहा विम्बायश्च निर्मापितां ॥ ७ ॥  
 वर्धमानगुणाधार शब्दार्थालङ्कृतिस्फुटम् ।  
 महाशास्त्रमिदं पूतं पठतां मङ्गलं सदा ॥ ८ ॥  
 व्याख्यातर्णां लेखकानां श्रोतॄणां कृत्तधारिणाम् ।  
 द्वादशविशिष्टानां गुणपद्मानुपगिणाम्  
 मुनिवृन्दाकायां च प्रदेयान्मुनिसम्पदम् ॥ ९ ॥  
 वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।  
 लिखितं दशमक्यादिदर्शनं जनतार्थकृत् ॥ १० ॥

इस ग्रन्थ का नाम 'दशमक्यादिमहाशास्त्र' है। इसके शुरु में सामायिकपूर्वक सिद्ध-  
 मकि, भूतमकि, चारित पद्य योगमकि आदि प्रसिद्ध दशमकियाँ मङ्कित हैं। ये भक्तियाँ  
 मुनीन्द्र वर्द्धमान जी की अपनी रचना हैं। साहित्य की दृष्टि से भी रचना सुरो मङ्गी है।  
 चरित कहीं-कहीं के पद्य बड़े ही भूति-मधुर हैं। हाँ, प्रति अयुद्ध होने से जहाँ-तहाँ इति

में शैथिल्य का भ्रम होना स्वाभाविक है। कुछ भी हो ग्रन्थकर्ता संस्कृतभाषा के मर्मज्ञ थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। सर्व-प्रथम स्यालीपुलाकन्याय से ग्रन्थगत विषयों पर एक बार सरसरी नजर डालना मैं आवश्यक समझता हूँ।

प्रस्तुत कृति में भक्तियों के अतिरिक्त स्तोत्र, पूजन, गुर्वावली आदि भक्त्यतिरिक्त विषय भी गर्भित हैं; इसीलिये ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्ता ने इसका नाम 'दशभक्त्यादिमहाशास्त्र' रखा है। क्योंकि 'आदि' शब्द में बहुत बातों का समावेश हो जाता है। 'आचार्य-भक्ति' में प्रत्येक तीर्थङ्कर के गणधरों की संख्यादि भी कवि वर्द्धमान जी ने दे डाली है। साथ ही साथ इस 'आचार्यभक्ति' के अन्त में प्रतिपादित "वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना। आचार्यभक्तिः कथिता जिनसेनार्यसम्मता ॥" इस पद्य से यह 'आचार्य-भक्ति' जिनसेनार्यसम्मता ज्ञात होती है। इसे जिनसेनकृत कृतियों से मिलान करने से यह बात स्पष्ट हो सकती है। 'निर्वाण-भक्ति' के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीका सम्भेदशिखर से मुक्त होना वर्णित है। यह मत प्रचलित 'निर्वाण-काण्ड' के प्रतिकूल है। 'उत्तरपुराण' आदि ही इस मत का आधार मालूम होता है। 'चैत्यभक्ति' के प्रकरण में ग्रन्थ-रचयिता ने अकृत्रिम जिनालयों के सिवाय कृत्रिम जिनालयों में भद्रातकी-पुर—गेहसोप्येस्थित श्रीपार्श्वनाथ, संगीतपुर—हाडुहल्लिस्थित श्रीचन्द्रप्रभ, भट्कलस्थ श्रीपार्श्वनाथ, वसुपुरस्थ श्रीआदिनाथ, वरांगस्थित श्रीनेमिनाथ, कार्कलस्थित श्रीगोम्म-देश्वर, वेणुपुर—मूडविद्रीस्थित श्रीचन्द्रनाथ, श्रवणावेलोलस्थ श्रीगोम्मदेश्वर, कनकाचलस्थ श्रीपार्श्वनाथ,\* होयसलवंशराजार्चित (विजय) पार्श्वनाथ और वर्द्धमान,† कोपणक्षेत्रस्थ (सागरदत्तपूजित-) श्रीचन्द्रप्रभ और (लक्ष्मेश्वरपूषतिदक्षिणावर्तशंखोत्थ-हेमदेवार्यसंस्तुत-) श्रीचन्द्रप्रभ आदि-जिनमन्दिरों की स्तुति की है। एक जमाने में उल्लिखित गेहसोप्ये, हाडुहल्लि, भट्कल, कनकाचल या कनकागिरि और कोपण आदि स्थान अपने सर्वोच्च उन्नति के शिखर पर आरोढ़ हो जैनधर्म के केन्द्र पर्व लीलाभूमि बने हुए थे। वल्कि उन दिनों गेहसोप्ये, भट्कल आदि कई स्थानों के जैनराजधानी के रूप में ही रहने का सौभाग्य प्राप्त था। इन क्षेत्रों में आज भी यत्र-तत्र लुप्त-प्राय प्राचीन जैनकीर्तियों के स्मृति-चिह्न बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। वह जैनप्रतापादित्य का मध्याह्नकाल था। खैर, आज भी उक्त क्षेत्रों पर वर्द्धमान जी के द्वारा निर्दिष्ट उक्त जिनचैत्यालय प्रायः उन्हीं नामों से जीर्ण-शीर्ण दृशा में वर्तमान हैं। गेहसोप्ये, भट्कल, हाडुहल्लि इन स्थानों के विशेष परिचय के लिये उत्तर कन्नड जिला के गजेदियरों का अवलोकन करना चाहिये। कोपणक्षेत्रस्थ चन्द्रप्रभ या चन्द्रनाथ-जिनालय आज भी उसी नाम से विश्रुत है। वल्कि इसका उल्लेख Epigraphia Indica,

\* इन्हें 'नागार्जुनप्रतिष्ठापित' एवं 'धर्मचन्द्रमुनिवन्दित' बतलाया है। यह नागार्जुन श्रीपूज्यपाद जी के भोजे हों।  
† ये संभवतः हलेबीडु या द्वारसमुद्र के मन्दिर हैं।

Part V, January 1931, P. 94 में प्रकाशित केन्द्रिय सदाशिवनायक के एक सभ-शासन में भी मिलता है। उसका सारांश यों है—'इस (धर्म) के प्रतिकूल चलनेवाला जैनी बेलोलस्य गुम्मतनाथ, कोपिलस्य चन्द्रनाथ ऊर्जपन्तगिरिस्य नेमिनाथ आदि जिनप्रतिभाओं को फोड़ने के पप मागी होंगे।'

अस्तु, भव पाठकों का ध्यान प्रस्तुत विषय पर आकृष्ट करता हूँ। कवि वर्द्धमान जी के द्वारा प्रस्तुत कृति के क्रमशः पृष्ठ ३१ एवं ५७ पर दिये गये निम्न लिखित कुछ पद्य भवस्य भवलोकनीय तथा विचारणीय हैं —

“मार्तण्डशाल्मल्यपुत्रभुतपरमभतभिष्ठातमीप्रासितं तदु-  
भाभ्यं मद्राकलद्रुप्रकटिताविभव एतमेतौपमुद्रुधम् ।  
सुखं तत्त्वार्थसहं स्फुपति जिनकपावारहास्व त्रिलोक-  
प्रवृत्तिर्मे इदंशब्दो वरिह वरिहो यत्किमन्यस्तु किं मे ॥”

X X X

“अनन्त-जिननिवासे मुनिसुप्रतत्र मनि ॥  
उपदेश नास्माकं जिनसेनार्यशासने ।  
अनावास्याभयार्जो धानन्तविजिननिवृत्ति ॥  
सत्रावाप्यनगरकेवलिविभो धीपन्नवन्द्यस्य वै  
धीन्द्रकाल्युनरुद्राविलसन्वातुर्गोरासरे ।  
पूर्वाहं बुन्दल्लिमस्तकमर्षो समेदुगिरिप्रकी  
शास्ता निवृत्तिवत्त लक्ष्मणमेने सीतावनीधीपने ॥”

आगे ५१ के पूर्व पृष्ठ से क्रमशः किमी कित्सा की कुछ कृतियों का उल्लेख करते हुए वर्द्धमान जी ने मद्रवाहु, बुन्दुङ्ग, ममन्तभद्र, भकलद्रु, विद्यानन्दो, प्राणिकण्वनी, प्रभाचन्द्र, पुन्यपद्, (त्रिवेण्यपयगुप्तः) सिद्धकीर्ति, वर्द्धमान! धामपुन्यवनी, (विष्णुवर्द्धनयुजिन) धीपल, पावनेन्दरी, नेमिचन्द्र, (चामुण्डपयशशञ्जिनपद्मसौदामनिकमार्यमौम) माधवचन्द्र, (किशोरार्थस्तुत्य) अभयचन्द्र, उपकीर्ति, जिनचन्द्र, इन्द्रवन्दो, वसन्त कीर्ति, विद्यालकीर्ति, शुभकीर्ति, पद्मनन्दी, माधनन्दी, शत्रुमिहवनी, पद्मदम धामुनी, मेघचन्द्र, धीपनदी, धनत्रय, वारिष्ण, धनभूषण, (विद्यानेस्वामिमुनु) सिद्धकीर्ति

• इन्हें अमोघशक्त्यास के रचयिता विद्या है, परन्तु संभवतः न्यास के प्रणेता प्रभाचन्द्र इनसे मिले हैं। देखें—‘दिगम्बर जैनपद्यार्था और इनके ग्रन्थ’;

इन्हें दोस्तके राज्यसंस्थापक एवं इस राजका को जन और विद्या प्रदान करने वाला सिद्धा है।

मेकनन्दी, वर्द्धमान, प्रभाचन्द्र, अमरकीर्ति एवं विशालकीर्ति इन ग्रन्थकर्त्ताओं का स्मरण किया है। इसी प्रकार में आगे भट्टारक सिंहकीर्ति, विशालकीर्ति, विद्यानन्द, देवेन्द्रकीर्ति तथा अपनी बड़ी प्रशंसा की है। उन प्रशंसात्मक पद्यों में से कुछ पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं जिनमें कुछ ऐतिहासिक परिचय प्राप्त हो :—

“राजाधिराजपरमेश्वरदेवरायभूपालमौलिलसदंघिसरोजयुग्मः ।  
 श्रीवर्द्धमानमुनिवल्लभमौल्यनुख्यः श्रीवर्द्धभूगणसुखी जयति क्षमाढ्यः ॥  
 विद्यानन्दस्वामिनः स्रुतुवर्षः संजातः स सिंहकीर्तिमतीन्द्रः ।  
 ख्यातः श्रीमान् पूर्वाचारिद्विगात्रो दानस्वर्भूधेनुमन्दारदेश्यः ॥  
 वाभात्यश्वपतेर्दिनेशतनयो गंगाढ्यदेशावृतः  
 श्रीमद्विष्णुपुरेड्महम्मदसुरिवागस्य मारारुनेः ।  
 निर्जित्याशु सभावनो जितगुरुवौद्धादि + + + + व्रजम् ।  
 श्रीभट्टारकसिंहकीर्तिमुनिराट् नाट्यैकविद्यागुरुः ॥  
 विशालकीर्तिवादीन्द्रः परमागमकोविदः ।  
 भट्टारको बलात्कारगणाधीशो महातपाः ॥  
 सिफन्दरसुरिवागप्राप्तसत्कारवैभवः ।  
 महावादिजयोद्भूतयशोभूपितविष्टपः ॥  
 श्रीविरूपाक्षरायस्य श्रीविद्यानगरेशिनः ।  
 सभायां वादिसन्दोहं निर्जित्य जयपत्रकम् ॥  
 स्वीकृत्य च महाप्रज्ञाबलेन बुधभूभुजैः ।  
 मतं सरस्वतीमूलशासनं वा सशोऽज्ज्वलम् ॥  
 देवष्पदराडनाथस्य नगरे श्रीमदारणे ।  
 प्रकाशितमहाजैनधर्मोऽभादुभूसुरार्चिञ्चतः ॥  
 विशालकीर्तैः श्रीविद्यानन्दस्वामीतिशङ्गतः ।  
 अभवत्तनयः साधुर्मल्लिरायनृपार्चिञ्चतः ॥  
 आगमत्रयसर्वज्ञः कवित्वगुणभूपितः ।  
 नानोपन्यासकुशलो वादिमैत्रमहामखत् ॥  
 स्वामिविद्यादिनन्दस्य भारतीभाललोचनम् ।  
 स्रुतुर्देवेन्द्रकीर्त्यायो जातो भट्टारकाप्रणीः ॥”

“वापेरीसरिदुमुवेष्टनलसञ्जीरगासत्पत्तने

रक्ष्मंयज्ञभरगनायमहिते धीरीरपृथ्वीपने ।

भास्याने विदुधयज्ञं पित्रययागृभोर्यिजित्वायनौ

विद्यानन्दमुनीश्वरो विज्ञयते साहित्यचूडामणि ॥

सांख्य मस्यात्तगन्धं दपि बुद्धमलं ह्योनकापालिकालिम्

योग चोद्रेगवेग कल्पयति धर्मियैरेषिक शोपिताङ्गम् ।

चापार्कं एतंगयं नृपमरुति सदा बुद्धमन्यद्बुद्धम्

भाट्ट स्रष्ट विनेने बुधरर भरतो धाम्यधृदी मुनीन्द्र ॥”

( पर पृष्ठ ६६ )

‘धीरधीरदेररायनूपने सद्भागिनेयेन वै

पद्मांषाकलगर्भधार्धिश्चिनुना राजेन्द्रनन्द्यांमिणा ।

धीमत्सालुग्रहृष्णादेवधरणीकान्नेन भक्त्यार्चितो-

विद्यानन्दमुनीश्वरो विज्ञयते स्यद्धात्रविद्यापति ॥

× × × ×

यो विद्यानगरीधुरीणविज्ञयर्धीहृष्णायप्रभो-

रास्थाने विदुषां गण समजयत्यज्ञाननो वा गजम् ।

सद्भागिर्नखरैरुदात्तधिमल्लानाय तस्मै नमो-

विद्यानन्दमुधीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्तये ॥

× × ×

विद्यानन्दस्वामिनोऽभूत् सधर्मा विख्यातोऽय नेमिचन्द्रो मुनीन्द्र ।

भूतमाताम्भोजपैकासकारो शारङ्गाम्भोराशिसवृद्धिकारी ॥

पापुषपाश्वरनाथस्य यसतीं श्रीत्रिभूमिकाम् ।

इत्या प्रतिष्ठा महतीं सन्तनोतिस्म भक्ति ॥

विद्यानन्दस्वामिन पुण्यमूर्त्तैर्जोयात्सुनु श्रीविशालादिकीर्ति ।

विद्वद्गण्य सर्वशास्त्रारतारो माघद्वादीभेन्द्रसघातसिंह ॥”

( पूर्व-पर पृष्ठ ६८ )

“जीयाद्भरकीत्यांर्यभट्टारकशिरोमणि ।

विशालकीर्तिपोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविद ॥

अमरकीर्तिमुनिर्विमलाशय बुद्धुमचापमदाचलबभ्रुद् ।

जिनमतापहृतारितमाद्य यो जयति निर्मलधर्मगुणाध्य ॥

विद्यानन्दार्यतनयो भाति शास्त्रधुरन्धरः ।  
 वादिराजशिरोरत्नं विद्यानन्दमुनीश्वरः ॥  
 विशालकीर्त्तिमुनिराट्पट्टोदयमहीभृतः ।  
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो वालार्क इव भासते ॥  
 श्रीभैरवेन्द्रवंशाग्धिपाराङ्घ्यराजसमर्चितः ।  
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो विद्यानन्दमहोदयः ॥  
 देवेन्द्रकीर्त्तिः सिद्धार्थस्तद्वाणी प्रियकारिणी ।  
 धीर्मांस्तदुदितो वर्णी वर्द्धमानो न किं भवेत् ॥  
 वर्द्धमानो बुधाराध्यो नवमश्रावकाग्रणीः ।  
 शुद्धद्वन्द्वबोधचारित्तो जिनेनो जयतात् भुवि ॥  
 कर्णोत्तंसितपारिजातकलिकासौरभ्यसौखासिकी  
 भारत्याः शरदिन्दुनिःसृतसुधासारासनाधीसिनी ।  
 नृत्यङ्गूर्जटिजाटकोटितटिनी कल्लोलसंलापिनी  
 जेजीयाद्भुवि वर्द्धमानसुखिनः शास्त्रार्थवाग्बैखरी ॥  
 निर्भग्नात्मनिवन्धनोपकरणो निर्वाणवांद्धान्वितो-  
 षाह्यार्थावगमाभिलापरहितो दूरीकृतोत्कल्पनः ।  
 स्वच्छन्दस्ववशोपसाधितमना भद्रांगलक्ष्मापरम्  
 क्षित्यां मत्तमहाकरीव जयति श्रीवर्द्धमानो मुनिः ॥

ख्यातः श्रीवर्द्धमानोऽभाद्वीतसंसारविभ्रमः ।

ज्ञातानुयोगशास्त्रार्थो जातरूपादिनिस्पृहः ॥

भाति श्रीवर्द्धमानोऽसौ चूतशायकसुदनः ।

नूतसद्गुणसन्तानस्पृतचिद्भावनामतिः ॥

देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रचरणाम्बुहृद्वयम् ।

मन्मानसे सदा स्येयात् विबुधभ्रमराश्रयम् ॥

देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदाम्बुस्पृष्टार्द्रिचभूतनिवहस्य सदा बुधानाम् ।

उच्चाटनप्रवणचूर्णादशां समप्रां लक्ष्मीवशीकरणचूर्णादशां च याति ॥”

× × × ×

“देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजतनूभवेन श्रीवर्द्धमानमुनिना विदितानि भान्ति ।

पद्यानि सद्गुणयुतानि महोज्ज्वलानि विद्वत्कवीन्द्रगलकर्णविभूषणानि ॥

वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यकण्ठुना ।

देवेन्द्रकीर्त्तिमहिता निर्मिता गुरुसन्ततिः ॥”

( पर पृष्ठ ६९ से ७१ पर पृष्ठ )



“कावेरीसरिदम्बुवेष्टनलसञ्चरीरासत्पत्तने

लक्ष्मीचन्द्रमरगनायमहिते श्रीवीरपृथ्वीपते ।

आम्याने त्रिभुवज विजययाम्भृत्तोर्विजित्यावदौ

विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते साहित्यचूडामणि ॥

सांख्य सप्त्यासगंध ऽपिलकुलमल हीनकापालिकालिम्

यौग चोद्धेगवेग कलयति घलिवैशपिक शोपिताङ्गम् ।

चावाक सार्गं नपसइसि सदा बुद्धमन्यप्रबुद्धम्

माह्र ऋष्ट वितेने बुधरर भरतो वाग्धृटी मुनीन्द्र ॥’

( पर पृष्ठ ६६ )

‘वीरधीवदेवरायनृपते’ सद्भागिनेयेन वै

परमांवाकलगर्मवार्धिबिधुना राजेन्द्रवन्द्यामिणा ।

श्रीमत्सालुबहृष्णदेवधरणीकान्तेन भक्त्यार्चितो

विद्यानन्दमुनीश्वरो विजयते स्याद्वावविद्यापति ॥

× × × ×

यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णरायप्रभो-

रास्थाने त्रिदुपां गण समजयत्पञ्चाननो वा गजम् ।

सद्भागिर्भर्त्खरैस्त्वाप्तविमलप्रानाय तस्मै नमो-

विद्यानन्दमुनीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्तये ॥

× × ×

विद्यानन्दस्वामिनोऽभूत् सधर्मा विख्यातोऽय नेमिचन्द्रो मुनीन्द्र ।

भूतवाताम्भोजरैकासकारो शास्त्राम्भोरशिसबुद्धिकारपी ॥

पादुघपाश्वरनाथस्य वसतीं धीत्रिभूमिकाम् ।

हृत्वा प्रतिष्ठां महतीं सन्तनोतिस्म भक्तित ॥

विद्यानन्दस्वामिन पुण्यमूर्त्तर्जीयात्सुनु श्रीविशालादिकीर्ति ।

सिद्धद्वन्द्व सर्वशास्त्रारतारो माघद्वावीमेन्द्रसघातसिद्ध ॥

( पूर्व-पर पृष्ठ ६८ )

“जीयादमरकोत्सांज्यभट्टारकशिरोमणि ।

विशालकीर्त्तियोगीन्द्रसधर्मा शास्त्रकोविद् ॥

धमरणीस्तिमुनिर्मिलत्पर बुभुमुचापमदाचलवज्रभृद् ।

त्रिनमतापह्नतारितमाद्य यो जयति निर्मलधर्मगुणाधय ॥

विद्यानन्दार्यतनयो भाति शास्त्रधुरन्धरः ।  
 वादिराजशिरोरत्नं विद्यानन्दमुनीश्वरः ॥  
 विशालकीर्त्तिमुनिराट्पट्टोदयमहीभृतः ।  
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो बालार्क इव भासते ॥  
 श्रीभैरवेन्द्रवंशाग्निपाराङ्घ्यराजसमर्चितः ।  
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रो विद्यानन्दमहोदयः ॥  
 देवेन्द्रकीर्त्तिः सिद्धार्यस्तद्वाणी प्रियकारिणी ।  
 धीमांस्तदुदितो वर्णा वर्द्धमानो न किं भवेत् ॥  
 वर्द्धमानो बुधाराच्यो नवमश्रावकाप्रणीः ।  
 शुद्धद्वग्नोधचारित्रो जिनेनो जयतात् भुवि ॥  
 कर्णोत्तंसितपारिजातकलिकासौरभ्यसौखासिकी  
 भारत्याः शरदिन्दुनिःसृतसुधासारासनार्थासिनी ।  
 नृत्यद्भूर्जटिजाटकोटितटिनी कल्लोलसंलापिनी  
 जेजीयाद्भुवि वर्द्धमानसुखिनः शास्त्रार्थवाग्बैखरी ॥  
 निर्भग्नात्मनिबन्धनोपकरणो निर्वाणवाङ्मन्वितो-  
 षाह्यार्थावगमाभिलापरहितो दूरीकृतोत्कल्पनः ।  
 स्वच्छन्दस्ववशोपसाधितमना भद्रांगलक्ष्मापरम्  
 क्षित्यां मत्तमहाकरीव जयति श्रीवर्द्धमानो मुनिः ॥  
 ख्यातः श्रीवर्द्धमानोऽभाद्वीतसंसारविभ्रमः ।  
 श्रानुयोगशास्त्रार्थो जातरूपादिनिस्पृहः ॥  
 भाति श्रीवर्द्धमानोऽसौ चूतशायकसूदनः ।  
 नूतसद्गुणसन्तानस्पृतचिद्भावनामतिः ॥  
 देवेन्द्रकीर्त्तियोगीन्द्रचरणाम्बुबहद्वयम् ।  
 मन्मानसे सदा स्येयात् विबुधध्रमराश्रयम् ॥  
 देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपदाम्बुरेणुर्दार्द्रिचभूतनिबहस्य सदा बुधानाम् ।  
 उञ्चाटनप्रवणचूर्णदशां समप्रां लक्ष्मीवशीकरणचूर्णादशां च याति ॥  
 × × × ×  
 “देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजतनूभवेन श्रीवर्द्धमानमुनिना विदितानि भान्ति ।  
 पद्यानि सद्गुणयुतानि महोज्ज्वलानि विद्वत्कवीन्द्रांगलक्ष्णाविभूषणानि ॥  
 वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यबन्धुना ।  
 देवेन्द्रकीर्त्तिमहिता निर्मिता गुरुसन्ततिः ॥”

( पर पृष्ठ ६९ से ७१ पर पृष्ठ )

इसके आगे पर पृष्ठ ७१ पंक्ति ३ से फिर कप्रडभाषा में विद्यानन्द का स्तुति रूप में स्मरण किया गया है। विद्यानन्द जी का यह स्तुतिरूप स्मरण वर्द्धमान जी के द्वारा लिखे गये नगरताल्लुक के ४६६ शिलालेखान्तर्गत स्तुति का ही प्रतिरूप है। बल्कि इस शिलालेख के अन्यान्य पद्य भी यत्र तत्र इस प्रथम उद्धृत किये गये हैं। उक्त स्तुतिरूप स्मरण में विद्यानन्द ने नजराय शहर के ननिदरान सातवेन्द्रराज केशरि त्रिम, साळुवमहाराज, गुण्टुपाल, साळुवदेवराय, नगरिवाय के राजा, गिल्लि के नरसिंहराज, कारकळ के भैरवराज, नरसिंहकुमार वृष्णराज इन की सभाओं में और इसी प्रकार धीरंगपट्टण, विदि, कोपण, वेळगोल और गेदसोपे में यात्रिजना का परानय किया था, इसी का उल्लेख है। स्वर्गीय भार० नरसिंहाचार्य का अनुमान है कि विद्यानन्द जी भद्रातकापुर अर्थात् गेदसोपे के रहनेवाले थे और इन्होंने कप्रड भाषा में 'काव्यसार' के अतिरिक्त एक और ग्रंथ रचा था, जिसका समर्थन नगरताल्लुक के उक्त शिलालेखान्तर्गत "अर्थरवेष्टितवस्तुधा। कर्णो पमगुण्टुपालनास्थानदोळ। कणावृत्तरुतिय। धर्षिसि जसभेदु यात्रिविद्यानन्दा॥" इस पद्य से होता है। इस शिलालेख से यह भी अलग होता है कि देवराय के भागिनय एवं पद्मान्वापुत्र साळुव वृष्णदेवराय के द्वारा आप सम्मानित हुए थे। बल्कि यत्रद्विगुण्टु पद्य ऊपर उद्धृत किया जा चुका भी है। साथ ही साथ इस शिलालेख में इनकी वध परम्परा यों की गयी है। विद्यानन्द, इनका पुत्र विशालकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति का पुत्र देवेन्द्र कीर्त्ति और इनके पुत्र वर्द्धमान। यही वर्द्धमान प्रस्तुत ग्रंथ में रचयिता है।

एक बात यह है कि भार० नरसिंहाचार्य जी ने विद्यानन्द का समय विजयनगर के शासक नरसिंह के पुत्र उसी नगरताल्लुक के शिलालेख में अङ्कित वृष्णदेवराय के काल के आधार पर ई० सन् १५३३ अनुमान किया है। परन्तु इसी प्रस्तुत ग्रन्थगत स्तुति में प्रतिपादित 'शके षड्विंशत्यब्धिचन्द्रकल्लिने सबत्सर शवैरे। शुद्धभाषणभाकरुतान्त घरणीतुमैत्रमेरे रवौ॥ कर्किस्ये सगुरौ त्रिनस्मरन्तो वादोन्द्रवृन्दाचिंत। विद्यानन्द-मुनीश्वरः स गतवान् स्वर्गं चिरानन्दक॥' इस पद्य से शालिवाहन शक १४६३ ई० सन् १५४१ में विद्यानन्द का स्वर्गस्थ होना स्पष्ट सिद्ध होता है। अस्तु, इनके विषय में आगे कुछ विशेष प्रकार डालना मुझे इष्ट है।।

आगे पर पृष्ठ ८० से पर पृष्ठ ८४ तक भन्दिस्वयं के भाषायों की नामावली यों दी गयी है.—

घरसेन, समन्तभद्र, धार्यसेन, अजितसेन, वीरसेन, जिनसेन, धात्रिपुत्र, गुणभद्र

लोकसेन, आशाधर, कमलभद्र, नरेन्द्रसेन, धर्मसेन, रविपेण, फनफसेन, दयापाल, रामसेन, माधवसेन, लक्ष्मीसेन, जयसेन, नागसेन, मतिसागर, रामसेन, सोमसेन। मुनीन्द्र वर्द्धमान जी ने अपने को भी इस नन्दिसंघ को परम्परा में ब्रतलाया है। उल्लिखित गुर्वाचली का अन्तिम पद्य यह है—“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना। जिनश्री-नन्दिपेणोत्थमुन्यादिस्तवनं कृतम्” ॥ इन पद्य से कवि वर्द्धमान जी का यह अभिप्राय प्राप्त होता है कि नन्दिसंघ का उत्पत्ति नन्दिपेणसे हुई है। पर अन्यत्र माघनन्दों से मानी गयी है।

आगे पूर्व पृष्ठ ९० के अन्त से ग्रन्थकर्त्ताने भट्टकलङ्क की वंश-परम्परा यों ब्रतलायी है—  
कुन्वकुन्द, विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र ध्रुतकीर्त्ति, ध्रुतकीर्त्ति का पुत्र विजयकीर्त्ति, इनका पुत्र पद्मप्रभ, पद्मप्रभ का पुत्र भट्टकलङ्क जिनका अपर नाम चन्द्रप्रभ देव भी विख्यात था। इसके बाद इन्हीं अकलङ्क, विजयकीर्त्ति आदि की स्तुति दी है। उनमें से कुछ इति-हासपरक पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं : -

“श्रीमन्मादनयेह्यपत्तितपतेः सत्पट्टदंतायलः

संयोरुपाशु परीत्ययं मदभरो भक्त्या च वंकापुरे।

पद्मास्यः शममेयिवान जिनपतिभ्यानेकतानोऽयनो

स श्रीमानकलङ्कयोगितिलको रजे नृपालाशितः” ॥

(पर पृष्ठ ९१)

“श्रीदेवरायनृपशेखरवन्द्यपादः स्याद्वाद्वाशाखजनितामलहृत्प्रमोदः।

भट्टकलङ्क मुनिपो जनसाधुवादो चाभाति भव्यजनताकृतसत्प्रसादः ॥

तस्याकलङ्कदेवस्य सधर्माणः तपोगुणाः।

चन्द्रप्रभादिमुनयः संजातास्ताधुवन्दिताः ॥

श्रीचन्द्रप्रभदेवसेवनपरः शन्द्राम्युधि गाहते

श्रीचन्द्रप्रभदेवसंस्तवरतः॥तर्कामृतं सेवते।

१—इन्हें ‘चेलविसृष्टशरीरं’ (?) ‘मालवपतिवन्द्य’ एवं ‘सूरि’(?) लिखा है। पर इनको मुनि एवं सूरि लिखना भ्रामक है।

२—इन्हें ‘कोशीपतिनत’ लिखा है।

३—इन्हें योगशास्त्र का प्रणेता ब्रतलाया है।

४—इन्हें पेनगोंडे के ‘नरसिंहरायसेवित’ लिखा है।

५—इन्हें मालवेन्द्र की सभा में चौदहों को पराजित करनेवाला और ‘पैशुद्वीपादिवन्द्य-पादान्मोज’ लिखा है।

६—देखें—‘जैनसिद्धान्तमास्कर’ भाग १, कि० ४।

\* इन्हें ‘त्रैविद्यचक्रेश्वर’ एवं ‘सास्त्रेन्द्रावनिपालपूजितपद’ लिखा है।

धीच द्रमभेदसद्यतिमतिं पूज्यत्वमाग्म्यते  
धीच द्रमभेदसद्यतिमतिं पुण्यमजे धर्तते ॥”

(पूर्व पृष्ठ ९२)

“स जयति जयकीर्तिर्नितदेगीयमूर्तिर-  
जिनपद्मकजभृङ्गस्त्यक्तससारसग ।  
सुचरितयतिभद्रः सर्वविषाग्धिप्रद्र  
सकलगुणसमुद्र पुष्पकोदयडरुद्र ॥  
भास्वद्वद्वकलं पुर निर्युग्निग्नाजितं याहुना ।  
धीमत्सात्प्रदेवरायनृपतेर्भूनाभिज्ञालेपिना ।  
नौद्रोष्णीनिचिताग्निमण्डितमिद् सरतित सपदा  
निधूंतालकमगजमनिलय देशेऽभरसौलभे ॥  
तत्र भद्रकले धीमानकलेऽमुनीश्वर ।  
भतिष्ठद्रयसद्वोहरानाग्रयनभास्कर ॥  
शरत्कालमिवात्मान क्षीणधर्म विनोक्ष्य च ।  
मति प्रायोपगमने हृतमन्वस्तुतत्वयिन् ॥  
सत्तेऽनन्तरं यथास्तुसधसमतत ।  
धीमत्पञ्चमहाशब्द स्मरन्प्राणान् मुमोच स ॥  
शाके सतशराम्बुचीन्दुरुचिर रुधत्सरे भोजये  
मासे चाश्विनसशके नु उपुन वृष्णाष्टमीवासर ।  
पुष्पकं मियुने जिनेन्द्र चरणध्यानाऽलम्बी ययौ  
स धीमानकलकदेवसुखिराड नाकाल्य धीरधी ॥  
तस्याकलकस्य तनयो जिनदायिन ।  
ध्मासीद्विनयकीर्त्यापौ जनमन्धारसन्निभ ॥  
भक्तं च सुखी(धी)जांश्चित्कृतिपावनमानस ।  
जीपात् विमलकीर्त्याय हृतधर्मप्रभावन ॥  
दयोपशमसम्पूर्णधारिजोदारविप्रद ।  
पाल्यकीर्तिर्भूतीर्पायात्कलकपदप्रिय ॥  
सत श्रीपालकीर्त्याख्यमुनेभ्यजधनजये ।  
प्रयुनासिर्महावारा नित्यं कर्णाद्यने तपम् ॥

वाग्देव्या हारयष्टिर्वा ससुवर्णा गुणोज्ज्वला ।  
 मुकामया सुवृत्ताभा चन्द्रमद्वयार्थिका परा ॥  
 श्रीचन्द्रप्रभयोगिराजतनुजो देशीगणाग्र सरः  
 प्रद्युम्नोद्भुरचापखण्डनपटुः सद्धर्मधौरेयकः ।  
 ध्यानध्वस्तसमस्तपापपटलः सद्भवकजांशुमान्  
 भाति प्रोन्नतसंयमो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥  
 श्रीसंगीतपुराप्रभागतिलके निर्वाणभूभृत्यरम्  
 श्रीचैत्यालयमुद्गलक्षणयुतं योऽनन्तजित्स्वामिनः ।  
 पूजां नित्यमहोन्नतां च महतीं सम्यक् प्रतिष्ठां मुदा  
 शास्त्रोक्त्या व्यतनोत् स भाति जगति श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥  
 ध्याने यस्य मतंगजा हरिकुलैः क्रीडन्ति वाजिघजाः  
 सत्रासैरिभसंकुलैर्विपधरा मण्डूकजालैर्भृशम् ।  
 पञ्चास्याश्च कुरङ्गपाकनिचयैरेकेन्द्रियाः सत्फलैः  
 स क्षीणीश्वरपूजितो विजयते श्रीनेमिचन्द्रो मुनिः ॥  
 श्रीरंगद्रंगमध्ये विवृधनृपसमाभूपिते भूसुराढ्ये  
 प्रोद्बृत्तं चादिवृन्दं जिनपतिवदनप्रोत्थवाणिवलेन ।  
 जित्वा साहित्यमूर्त्तिर्विपुलतरतपाः सन्ततं सत्कृपाद्रः  
 श्रीमान् देशीगणेशो जयति विजयकीर्त्तिः कवीन्द्रद्रुमश्रीः ॥  
 वीरश्रीवरदेवरायनृपतिः साहित्यविद्यापतिः  
 संगीतामृतवार्धिवर्द्धनसुधासूतिर्जिनैज्यामतिः ।  
 जीवन्नाणमुखव्रतादिसुरतिः श्रीपुष्पचापाकृतिः  
 शौर्यत्यागविवेकधैर्यवसतिर्वाभाति भूमण्डले ॥  
 पातु श्रीवर्द्धमानो जिनपतिरनिशं दानशूरव्रताढ्यम्  
 विद्वत्कर्णावतंसीकृतगुणकुसुमं चार्थिनां पारिजातम् ।  
 शास्त्राचाराकयोगीश्वरचरणसरोजातभृङ्गं स्मराभम्  
 नागप्यश्रेष्ठिनं श्रीजिनमुखनिरतं कुंमणश्रेष्ठिपुत्रम् ॥\*

( पर पृष्ठ ९२ से पर पृष्ठ ९४ )

आगे पूर्व पृष्ठ ९५ से कुन्दकुन्द, चारुकीर्त्ति,\* श्रुतकीर्त्ति†, विजयकीर्त्ति, अकलङ्क इति

\*—इन्हें 'मन्त्रवादीश्वर' और 'बह्मालराय-विभुत' लिखा है ।

†—इन्हें 'देशीगणविभूषण' लिखा है ।

गुणरत्नमय का फिर प्रामाणिक स्मरण किया गया है। यहाँ भी अफन्डू का भावना 'चन्द्रम' दिया है।

इस प्रकार की पुनर्निर्माण प्रणय में पर्यन्त है। फिर भी इनमें इतिहास-सम्बन्धी जो तार्किक बातें हैं वे उपेक्षणीय नहीं हैं। इसी प्रकार में पुनः उनके अग्रान् अफन्डू के निम्न मेमिचन्द्र की स्तुति अधिकृत है। इसमें इन्हें ऊर्ध्वगत तीर्थाटन के द्वारा पुण्य-संचय करनेवाला भी लिखा है। परन्तु अफन्डू का विधास-रचनाय ध्य स्वर्गोत्थय सम्यग् ध्यि यो अधिकृत है—

“अन्धमनुसी(र्षी)जोष्यं गुणरत्नार्चितमम् ।  
 अतिष्ठत्तुल्येणभ्रमगतनगरे चितम् ॥  
 अथेपु रमिन्कायदौ निर्ममन्थं च मथयन् ।  
 तुनामिमधिना चाभून् यज्ञत्परमार्थयिन् ॥  
 शके पञ्चराष्ट्रितगुमिने मथस्सरे मन्त्रे  
 मामे प्रागागिरे सृष्टिपुत्रभूमिनासासरे ।  
 मथ्यते त्रिनगसम्भरन्त सन्नेयनासयुत  
 धीचन्द्रमयोगिराट् मतिदयो माफल्यं हृदयम् ॥”

चाइ साल्मदेराय के द्वारा गुणमिने तीळरदेणन्तिगत समेतपुर एव तत्रस्य जैन भाषकों की कवि वर्द्धमान जी ने बड़ी तारोफ की है। साथ ही साथ इस प्रकार के अन्त में यह उल्लेख किया है कि निम्न मेमिचन्द्र ने गुणमिने में प्रेरित हो धार्मिक भाषकों के द्वारा प्रथम द्रव्य में विज्ञान मण्डप में विज्ञानलेखपूर्वक अफन्डू के सनाधिस्थान पर एक अत्यन्त मनोहर 'निर्गंधिका' भी बनवायी थी। इस प्रकार का अन्तिम श्लोक यह है—  
 “वर्द्धमानमुनेन्द्रेण विधानन्कार्यथपुना। कृताकलकयोगी चन्द्रमगुणस्तुति ॥”

आगे पृथ ९८में कारुण्य के मुनिपों के नाम यों अंकित हैं—कुन्दकुन्द, जगमिह-मन्दी, इन्द्रनी, गुणचन्द्र, कनकचन्द्र, माधवचन्द्र, रामचन्द्र, मुनिचन्द्र, सकलचन्द्र, माधवचन्द्र, बालचन्द्र, महर्षिक मुनिचन्द्र, मङ्गलार्थि, मनुकार्थि, देवकीर्ति, इनके

१—कनकचन्द्र और माधवचन्द्र को गुणचन्द्र का पुत्र बननाया है। साथ ही साथ यह भी लिखा है कि एक बार जयचंरागी राजा का मदनोत्तम गनेन्द्र इत माधवचन्द्र जी को देखकर शीत हो गया था।

२—इन्हें 'जाबानिगपुरराचाधितकारणेशमुख्य' आदि अनेक विरोधियों द्वारा स्मरण किया है।

३—इन्हें 'चन्द्रगुमिपुरापोशाचन्द्रगुमन्त्राधित' बननायो है।

४—इन्हें गेरुसोपेनिवासो लिखा है।

५—इन्हें 'मुनिचन्द्रतनय' कहा है।

शिष्य अनन्तकीर्त्ति, धर्मकीर्त्ति, कल्याणकीर्त्ति, चन्द्रकीर्त्ति आदि । उक्त देवकीर्त्ति के पद्य पर क्रमशः भानुमुनि, कनकचन्द्र, देवकीर्त्ति<sup>१</sup> । इस प्रकरण का अन्तिम पद्य निम्न लिखित है :—

“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना ।  
कार्णार्णामुनीन्द्रोरुस्तवनं सत्प्रकीर्तितम् ॥”

पश्चात् पूर्व पृष्ठ १०१ से नन्दिसंघ-वलात्कारगण की गुर्वावली निम्न प्रकार से दी गयी है :—

वर्द्धमान भट्टारक<sup>२</sup>, पद्मनन्दी, श्रीधराचार्य, देवचन्द्र, कनकचन्द्र, नयकीर्त्ति, रविचन्द्रदेव, श्रुतकीर्त्तिदेव, वीरनन्दी, जिनचन्द्रदेव, भट्टारक वर्द्धमान, श्रीधर, वासुपूज्य, उदयचन्द्र, कुमुदचन्द्र, माधनन्दी, वर्द्धमान, माणिक्यनन्दी<sup>३</sup>, गुणकीर्त्ति, गुणचन्द्र, अभयनन्दी, सकलचन्द्र, गण्डविमुक्त<sup>४</sup>, त्रिभुवनचन्द्र, चन्द्रकीर्त्ति, श्रुतकीर्त्ति, वर्द्धमान, त्रैविद्यवासुपूज्य, कुमुदचन्द्र, नेमिचन्द्र, बालचन्द्रमुनिस्तुत भुवनचन्द्र । इसके बाद अन्त में वलात्कारगण के मुनियों की स्तुति वादो, वाग्मी, मन्त्रपटु, ग्रन्थरचयिता, राजसम्मानित, प्रखरतपस्वी आदि अनेकानेक विशेषण-द्वारा की गयी है । इस गुर्वावली का अन्तिम श्लोक यह है :—

“वर्द्धमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दार्यवन्धुना ।

नन्दिसंघमुनीन्द्राणां स्तवनं सत्प्रकीर्तितम् ॥”

कार्णार्णामुनीन्द्राणां स्तवन के उपरांत ग्रन्थकर्त्ता ने दुर्जनों की निन्दा एवं सज्जनों की स्तुतिपूर्वक कुछ उपदेश दिया है । इसी प्रकरण में तौळव, केरळ, होय्सळ सिंहल आदि देशों की स्त्रियों का शृङ्गारात्मक वर्णन अवलोकनीय है ; जिसे देखकर कामशास्त्र में वर्णित भिन्न भिन्न देश की स्त्रियों की रूप-रेखा-स्मृति-पथारूढ़ हो जाती है :—

“देहोऽलंकारहीनो विधुसमवदनं वीटिकारगशून्यम्

चालापः श्रोत्रवज्रो भ्रमरनिभकचः पुष्पसन्दोहदूरः ।

नीवी सद्भ्रवर्जा परिमलरहिता कामकेलिश्च शय्या

चञ्चन्मञ्जादिरिक्ता प्रभवति नितरां तौलयोनां बधुनाम् ॥

नित्यस्नानयुताः शिवावर्चनपराः कामाङ्गनासभिभाः

श्रीखण्डांशुकशोभिताङ्गुचयः कर्णाढ्यमुक्ताफलाः ।

१—इन्हें भानुकीर्त्ति के उत्तराधिकारी एवं ‘केरलाधीश्वरपूजित’ बतलाया है ।

२—इन्हें ‘होय्सलसन्मानराजाञ्चितपदान्बुज’ लिखा है ।

३—इन्हें ‘मालवेन्द्रप्रपूज्य’ कहा है ।

४—इन्हें ‘मन्त्रवादि-पितामह’ बतलाया है ।



पावद्द्रमुआप्रहमय्या सभोगसत्वा सरा  
 पुमायाभिनयाश्च केरजनुष्कान्ता विभान्ति तित्तौ ॥  
 होयसलदेजातरनिता कनकोज्यरदभूपखा  
 धारिजनेचना निविदुपीनपयोधराध्याकृतस ।  
 साप्सृदूतिहासपरिणिर्मितम मयकिकोत्रिका  
 भाति विचित्रनेत्रधचिरा सुविलेपनरीन्किप्रिया ॥  
 द्वापे सिंहलनामि सागरतगा सन्वृत्तमुत्ताफगा  
 शैग निमग्गभरागमणयोऽख्यानि समानि च (?) ।  
 तद्देशोद्भवप्रियवामनयना ध्योपधिनोजातिजा  
 राजन्ति महिषा सदागतमताचारास्तदुत्पत्तिका ॥  
 शोभते पण्डुवैविर्निपिन सत्येन भूवल्लभा  
 ताव्ययेन सुमात्रदेश्यरनिता मूत्रैगुणैरुत्तरं ।  
 योगीद्राश्च परीपकारकणौ सती जना धारकै  
 धर्मा धीजिनभायिता कथिदुधे शाखाणि पूतानि धे ॥  
 (पर पृष्ठ १०९ स पूर्व पृष्ठ ११०)

आने चन्दनपत्रो सम्यधी च द्रप्रभपूजन पर जीवद्याष्टमी सबधी मुनिसुवतपूजन विं  
 गये है । मुनिसुवतपूजन के अत म अङ्कित— यद् मानमुनी द्रय विद्यानदायकपुना  
 महाजीवद्याष्टम्या निर्मित पूजना विधि ।” इस पद्य में इस ग्रन्थ में गर्भित  
 मत्तयतिरिक्त मित्र मित्र स्तुतियाँ, गुर्वावलिर्या तथा पूजनादि वर्द्धमान जी कं  
 अन्यान्य समय की वृत्तियाँ हैं और ये सब सप्रहृरूप में अमर रह जायें इस  
 ख्याल से एकत्रित कर दी गयी हैं—यों अनुमान करना निमूल नहीं कहा जा सकता ।  
 इसी स इसमें यत्र तत्र पुनरुक्तियों पद्य अयाकरणिक का ख्याल हो जाना अस्वाभाविक  
 नहीं है ।

पृथ पृष्ठ ११२ से पूर्व पृष्ठ ११५ तक जो विद्वत्स्तोत्र अङ्कित है उसमें निम्न लिखित विद्वानों  
 की प्रशंसात्मक गाथायें हैं—आशाधर, भमयचन्द्र देवरस, हरिमिन्द्र प्रह्लासुरि त्रैमिचन्द्र

१—इन्हें ‘सर्वोर्विपनिपूजिताप्रियुगल लिला है ।

२—इन्हें धर्मरामायुदय एव ‘राघवपाण्डवीय के टिप्पणकार मतनाया है ।

३—इन्हें न्यासतर्कविशारद श्रुतकार्तार्योपादकजयन्पद’ कहा है ।

४—इन्हें देवण्यार्य के पुत्र भमयचन्द्र सूरि क निकट ‘प्राचीनसद्गुरुन और विजयावती  
 शतनयभौदेवरायार्थिन लिखा है ।

जिनदेव, भेम्मडिभट्ट<sup>१</sup>, गुम्मतदेव<sup>२</sup>, पण्डितार्य<sup>३</sup> लोलम्बरस<sup>४</sup>, आर्य्यार्य<sup>५</sup>, चन्द्रार्य<sup>६</sup>, कल्याणनाथ<sup>७</sup>, धर्मशेखर<sup>८</sup>, अमयचन्द्रसूरि<sup>९</sup>, आदिनाथ<sup>१०</sup>, अय्यापक पार्श्वदेव<sup>११</sup>, उपाध्याय देवरस<sup>१२</sup>, गुम्मतदेव, अनन्तपण्डित<sup>१३</sup>, चौडरस<sup>१४</sup>, समन्तभट्ट<sup>१५</sup>, मंत्री चैतरस<sup>१६</sup>, देवरस<sup>१७</sup>, इन्हीं का अनुज अनेकगुणगणालंघित साल्वमहिराय के शास्त्रविद्यागुरु देवरससूरि, इनका पुत्र अनेकगुणगणित, साल्वदेवराय के आस्थान-भूषण, विद्यानन्द-शिष्य एवं साहित्यरत्नाकर घोम्मरस ।

इस प्रकार का अन्तिम पद्य यह है—“यज्ञमानमुनीन्द्रेण विद्यानंदार्यबंधुना । रचितं विदुषां स्तोत्रं सज्जनानामभीष्टम् ।”

पूर्व पृष्ठ ११५ की अन्तिम पंक्ति में पूर्व पृष्ठ १२४ तक इस में जो श्रावकों का स्तुति अङ्कित है, इस स्तुति में निम्न लिखित व्यक्तियों का मवात्सय्य स्मरण किया

- १—इन्हें 'विजयावनीशतनयश्रीदेवराय' के ख्यातिप्राप्त आस्थानकवि बतलाया है ।
- २—इन्हें अमयचन्द्रसूरि के पुत्र लिखा है ।
- ३—इन्हें 'पद्माम्बामयचन्द्रसूरितनय' और 'नारसिंहनृपतिस्तुत्य' आदि विशेषण-द्वारा स्मरण किया है ।
- ४ इन्हें 'तर्कशास्त्रप्रवीण' एवं 'उपाध्यायपदाधोशसूरिपुत्रसमन्वित' कहा है ।
- ५ इन्हें 'जगद्वन्द्य, सुकुमारचरित्रेश, परवादिविदारक' लिखा है ।
- ६ इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ' बतलाया है ।
- ७ इन्हें 'नेमिचन्द्रतनय, संगीतकलाप्रवीण' आदि लिखा है ।
- ८ इन्हें 'कल्याणनाथसहोदर, शब्दतर्कागमाभिज्ञ' कहा है ।
- ९ इन्हें 'कल्याणनाथतनय, साल्वेन्द्रनृपास्थानप्राविष्कृतमहोदय' लिखा है ।
- १० इन्हें 'बुधस्तुत्य, वादिविजयो, महिरायनृपस्वान्तसरोजातप्रभाकर' बतलाया है ।
- ११ इन्हें 'अभिनन्दनमट्टसूनु, घोम्मरसातुज' लिखा है ।
- १२ इन्हें 'नृपस्तुत्य' कहा है ।
- १३ इन्हें 'कविश्रीपतिमातुल' बतलाया है ।
- १४ इन्हें 'उपाध्यायतनुसंभव' लिखा है ।
- १५ इन्हें 'वेणुपुरमव्यजनार्चित, तौलवाधीशवन्द्याग्निचन्द्रिमा' आदि लिखा है ।
- १६ इन्हें 'विद्यानंदमुनीन्द्रनिकटाधोतदर्शन, संगीतपुरसाल्वेन्द्रभूपालास्थानभूषण, पद्माक्य-प्रमाणज्ञ, वाद्यद्रिकुलिशायुध' आदि बतलाया है ।
- १७ इन्हें कवि और आगमका मर्मज्ञ लिखा है ।

गया है—

मन्त्री जैतरस', मन्त्री नागरस', मन्त्री देवरस', इयडनाथ बैलप', सकय', महप नायक', धौमिश्रेष्टो ।

आगे ग्रन्थ में अनेकगुण मण्डित, स्मरनिभ, योगेन्द्रसेवापर, त्रिद्यानन्दमहोदय, शुद्धाहारादिदाननिरत, मुक्तारक्षपरोत्तपोर्णनिपुण, विद्वत्कवीन्द्रद्रुम, सारत्रयवेदी, परहिता-चारमहामागी, ज्ञानचारित्रनिलय, पय सम्यक्चरत्नाकर, आदि विशेषणों से प्रशसित वेणुपुरीय—मूडविद्रीय भव्य ध्रायको की रत्ना यहाँ के श्रीचन्द्रप्रभ एवं श्रीपार्श्वनाथ किया करें यों अपनी शुभकामना कवि वर्द्धमान जी ने दर्सायी है । इसी प्रकरण में यहाँ की धर्मिकाया का भी गुणवर्णन किया गया है । याद इसी प्रकार गेरुसोप्ये, भट्कळ पय संगीतपुर के भव्यध्रायका की भी पर्याप्त प्रशंसा की है ।\*

१—इन्हें 'प्रधानतिलक, देवरायप्रमुदुर्गाधीश्वरवन्दित, सम्यक्त्वचूडामणि, विप्रकुला म्बरमणि, सर्वज्ञसवापर, सदानपूजाधिक, नानाशास्त्रविचक्षण, मुक्कवितासीमन्तिनी बल्लभ, सद्बुद्ध, धुतकीर्तिदेवयतिराट्पादाकृत्तपुष्पन्धय आदि अनेक विशेषणों द्वारा स्मरण किया है ।

२—इन्हें 'मन्त्रितिलक, सौजन्यरत्नाकर सर्वज्ञपादद्वयोसवायसमहोदय' लिखा है ।

३—इन्हें 'कृतश्रीजिनमदिर, सारत्रयसुधासिन्धुपारदृशवा, विरुगपधरखीरापालनीय' यतलाया है ।

४—इन्हें 'जिनचरणसरोजद्वैतपूजादिराज, जनवृन्दप्राणरत्नामुकुन्द, श्रीदेवरायधरणीश्वर-दत्तमाय, सद्धर्मसाधितमहापरलोकसार्थ, कीर्तिपरिभूषितदिग्बभूटि' आदि कहा है ।

५—इन्हें 'श्रीश्रीविजयावनोराननयभादेवरायप्रमुश्रेष्ठिपदगत, विख्यातदानाधिप, धर्मभूषण-गुरुपदाम्बुजातद्वयोरोचन्ध, जिनवल्लभ' लिखा है ।

६—इन्हें 'मल्लिकार्जुनरायमहामाल, जिनपादाचनासक्त' यनाया है ।

७—इन्हें 'श्रीरत्नराजविजयावनिपाचमौलि, श्रीतौलनेश्वरनृपार्चितपादपीठ, श्रीश्रीरसन-मुनिपादनिधानदीप, त्रिभुध्रजकल्पमूज, त्रिद्यानन्दनतिपतिपदाराधनासक्तचित्त, विद्वत्सेव्य, सकृचमुवनख्यातघोर्ति, साहित्यज्ञ, जिनपतिमताचारवान्, चातुरगप्रवीण' कहा है । साथ ही साथ इनके नामक पूर्व में 'टकराणा' यह पद दिया गया है जिससे यह बात सिद्ध होती है कि यह धामिश्रेष्टो टकराच क अभ्युत्थय ।

✽ इसक बाद एक श्लोक यों मित्ता है जिसमें रेखांकित पद अवश्य विचारणीय हैं—

“श्रीचन्द्रनरेन्द्रवदितपदा कुर्यन्तु भव्याउल्ले-  
 पाकृत्सिद्धि द्वाग्याख्यनेत्रघचित्तश्रीचैत्यधामस्थिता ।  
 श्रीपारामधनायकेष्टरदास्तद्भागिनियाप्रिम  
 प्रायश्चाजिननायकस्तुतगुणास्तार्धुय महूल्लभ्यां ।”

पश्चात् कुम्भराण श्रेष्ठि-पुत्र नागप्य श्रेष्ठी की बड़ी प्रशंसा की गयी है। आगे पुनः क्रमशः निम्नाङ्कित व्यक्तियों के नाम स्मरण किये गये हैं :—

संगरस्त,<sup>१</sup> अण्ठातण श्रेष्ठी,<sup>२</sup> नारण श्रेष्ठी,<sup>३</sup> महि श्रेष्ठी,<sup>४</sup> जिनदत्त,<sup>५</sup> ओज्ज श्रेष्ठी,<sup>६</sup> विजयराण,<sup>७</sup> लक्ष्मण,<sup>८</sup> पायप्य,<sup>९</sup> नेमि श्रेष्ठी,<sup>१०</sup> नेमराण श्रेष्ठी,<sup>११</sup> गुमि श्रेष्ठी,<sup>१२</sup> नागप्य,<sup>१३</sup> तम्मराण,<sup>१४</sup> गुम्मददेव,<sup>१५</sup> विजयप्य,<sup>१६</sup> आदिनाथ,<sup>१७</sup> नेमिचन्द्र,<sup>१८</sup> परिडत

१—इन्हें 'सालुवमहिरायनृपतेमन्त्रीश्वर, श्रीमान्, विनिर्मितजिनावास, महासत्यवाक्, पूजादानपुरस्सरोरुहृदय, जैनेन्द्रशाब्दादर, वीरनृसिंहरायधरणीद्राप्तेद्वभाग्योदय' कहा है।

२—इन्हें 'जिनधर्ममहामति, त्रियम्यकमहामाल्यचन्दनश्रेष्ठयनूद्भव' बताया है।

३—इन्हें 'विमु, श्रावकाचारसद्रत्नभूष्यसद्गृहृदय' लिखा है।

४—इन्हें 'नागिश्रेष्ठितनूमव, गुणनिधि, सदानतीर्थेशिनां मुख्च, जिनराजपूजनविधिज्या-सक्तचित्तोत्सव, विद्यानन्दमुनीन्द्रसेवनपर, सद्धर्मकलीगृह, इन्दुकल्पयश' व्यक्त किया है।

५—इन्हें 'भंगिश्रेष्ठिसुगर्भोत्थनागिश्रेष्ठितनूद्भव' लिखा है।

६—इन्हें 'कृतनेमिजिनालय, गेरुसोप्पेपुरीमध्यराजित' बताया है।

७—इन्हें 'वणिजेश, दयाधर्मकोश, कविबुधसुरधेनु, पायराणश्रेष्ठिसूनु, जिनमुनिकजभृंग, लक्ष्मन्ताप्रसङ्ग, यतिवृत्त, पात्रसन्त्यक्तवित्त' कहा है।

८—इन्हें 'पायकापतिपायराणप्रमुसुत, श्रेष्ठीश्वर, वाणिज्यादिकलाप्रवीण, सत्यात्रलेप, पायप-वाणिजाप्रज, प्रव्यक्तपुरयोदय' लिखा है।

९—इन्हें 'जयति विजयकीर्त्तेः पादसेवाढ्यचित्तो धनपतिनिभवित्तः पोपितानेकपात्रः। प्रथितगुरुचरित्रः कामसंकाशगात्रो जनजलजविमित्रः पायपो जैननेत्रः ॥' कहा है।

१०—इन्हें 'दिविश्रेष्ठ्यनुजात, गुणाकर, भुवनस्तुत' लिखा है।

११—इन्हें 'गुम्भराणश्रेष्ठ्यनुत्पन्न, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' बताया है।

१२—इन्हें 'मन्त्रिसंघत्रिपुत्र, दयानिधि, व्रतशीलतपोनिष्ठ, चारुदर्शन, कहा है।

१३—इनकी माता नागरसी, पिता श्रेष्ठी तम्मराण, देव वृषभेश्वर, व्रत-गुरु नेमिचन्द्र व्रती, शिवागुरु विद्यानन्द बताया गये हैं। इन्होंने दो मन्दिर भी बनवाये थे।

१४—'श्रीशं नागरसीशदुम्भराणविमोर्गर्माब्धिराकाविधुं

सर्वज्ञामलपूजनात्तविभवं सौजन्यरवाकरं।

आहारादिसमस्तदाननिरतं संसारसौख्योदयं

पायात्तम्मराणनामधेयवणिजं श्रीवर्द्धमानो जिनः ॥' कहा है।

१५—इन्हें 'कुम्भराणश्रेष्ठिनन्दन, दयाविशिष्टसद्धर्मवार्धिपीयूषदीधिति' लिखा है।

१६—इन्हें 'करणिकतिलक' बताया है।

१७—इन्हें दशरथ की उपमा दी गयी है।

१८—इन्हें 'चेन्नरायपट्टणराज्यश्रीमुखाब्ज, मन्त्रिकुञ्जर, चतर्विध-परायण' कहा है।

विजयप्य, 'गुम्मय,' देगरस,' धरणिपण्डित ' लुम्मण ' गुम्मि श्रेष्ठी,' विजयनगरवासी  
गुम्मि श्रेष्ठी,' चन्नन श्रेष्ठी ' देवरसो,' ' महि श्रेष्ठी,' ' गुम्मट श्रेष्ठी,' ' नेमराश श्रेष्ठी,'

१—इन्हें 'आयुर्वेदविशारद, भूनुत हेनेन्द्रानुजनजरायनृपमुप्राप्तोद्घसपद्मज, देवरसाल  
परिद्वगतनृजात, द्विजामेसर, काश्यपगोत्रज, स्मरसम, गोविन्दराजस्तुत' कहा गया है।

२—इन्हें 'अमचयादीपतनश्रीमुकुन्द, कृतजिनपतिगोह, अमात्यवर्य, विबुधजनवसन  
जैनविप्रायतस, परवलमधुच्छृण, कामरूप' बताया है।

३—इन्हें 'निरञ्जनार्यतनय, प्रभजनसुतप्रभ, रायसभाप्राध्यमहोदय, बोम्मरसानुज, द्वि  
कुलसोमामलश्रीमुधानुति, दानमरन्नदीपरिद्वनप्राहोरज सहति, पार्श्वजिनेन्द्रपादयुगलोरु  
प्रसूनाविधि, मन्त्रि तिलक, सम्यक्त्वपूतजत, सोमभूपालसन्मन्त्री द्विज, हरधेप्रासन्मध्यत  
पूवजिनालय' लिखा है।

४—इन्हें 'आयुर्वेदविधानज्ञ, श्रीमान्, वीरपूर्वाशासचिय, धर्मवत्सल' बताया है।

५—इन्हें 'केलगावेनगराधीश, महाप्रभु, जिनेन्द्रधर्मनिरत, मुनिसेवाविचक्षण' कहा है।

६—इन्हें 'विद्यानगरे निर्मापितजिनालय, वैश्यकुलाप्रणी, श्रुतवचा, नागाविकावह्न  
भवनीजनस्तुतगुण, सदानकृत्' लिखा है।

७—"विजयनगरासा वैश्यवशावतसा जिनपतिपदपूजासत्तचित्ता विभान्ति। अतुगत  
पुरुषयथा कामिनीपुत्रयुक्ता परहितसुचरित्रा दानपूजाप्रसगा ॥

८—"विद्यानन्दत्रतिपतिपदाराधनासत्तचितो विद्वत्सव्य सकलभुवनख्यातकीर्तिर्गुणाढ्य।  
साहित्यज्ञो जिनपतिमवाचाखान् टकरात्ताजोम्भिश्रेष्ठी जयति भुवने चानुरगप्रवीण ॥"

९—इन्हें 'हरियणसहजान, सकलगुणसमेत, धर्मवार्थजिजात, जनविनुतचरित्र लपदा  
नार्हवित्त' लिखा है।

१०—"श्रीमत्या जन (चिन्न)-वाणिजस्य कृतिन सद्धर्मसशोभिनो दौहित्री जिननेमिनाथ-  
वसतेरभे जिनार्चाङ्गि। मानस्तम्भमल चकार रमणी सीमन्तमुक्तामणिलोह देवरसी सद्भु-  
वणिहृक्चित्तोत्सवानन्दिनी" ॥

११—इनके विषय में लिखा है कि मागोटु के पति, धनसम्पन्न महि श्रेष्ठी ने नेमि तीर्थङ्कर  
का चैद्यालय धनवाया।

१२—इन्हें 'देविश्रेष्ठिसहोदर, कविनुत, धर्मातिगितविषद, जिनपतिश्रीपादसवापर' लिखा है।

१३—इन्हें 'गुम्मटश्रेष्ठयनुज, क्षमादिनिचय, श्रेष्ठीश, जिनदर्शनभूषणपद, पुत्रपौत्रान्क  
वतनाया है।

दुमराण श्रेष्ठी, ' चोम्मराण श्रेष्ठी, ' सान्द्रव नायक, ' कामराण-देवरस, ' होत्रप नायक, ' हँवरा नायक, ' तिम्रराण नायक, ' पद्मराण श्रेष्ठी, ' सरागामरि नायक, ' पायराण श्रेष्ठी, ' "

१—इदं 'अंगजाम, जितेन्द्रपूजामुरराजकल्प, जैनशास्त्रप्रनीण, अत्र्याहृतपुरणसार्थ' कहा गया है।

२—"दुमरूप्याममध्ये कृतजिनसदनो चोम्मराणश्रेष्ठिवर्यः

शास्त्राद्यानां यतीनां कमनगु.....यजां जेमनार्थं प्रमोदान् ।

त्रिशत्संग्यायुतानां प्रशामिनवृजिनां शालिजं चैत्रगुर्ध्वः ।

प्रादान् पूजाव्रतादयो वणिजकुलमणिः स्वर्गमोक्षप्रयै वै ॥

३—"भावुनायकपुत्रोऽमान् श्रीमान् सालुवनायकः ।

दानपूजाप्रसक्तात्मा गुमराजांघ्रिभक्तिमान् ॥

मंगीतनगरे श्रीलो ब्रह्मिश्रेष्ठि-जिनालयम् ।

संतनोनिस्म तोपेण ताभ्रमंद्वादिनं वरम् ॥"

४—इन दोनों अधिकारियों ने एक जिनमन्दिर का निर्माण कराया था ।

५—"श्रीद्वं होत्रपनायकं गुणनिधिं प्रगाधनानन्दिनम्

कारुण्यामृतपूर्णपात्रमवनौ विद्वज्जनैः संस्तुतम् ।

जैनेन्द्रामलशास्त्रनिश्चिनमहाजीवादिभावस्थिनम्

पायात्संगरनिर्जितारिनिकरं श्रीवद्वं मानो जिनः ॥"

६—"श्रीमत्सालुवकृष्णदेवनृपतेः मंत्राममद्वं भवो-

धोमा जीवदयापरो नयविदामग्रे सरः मौन्यभाक् ।

मन्वो हँवराणायकः कृतमहाजैनप्रतिष्ठोत्तमवो-

योगिस्वान्तकजांशुमान् विजयते मन्मयक्त्वचूडामणिः ॥"

७—"श्रीतिम्भनायक कृपापरपूरणमूर्त्ते श्रीकृष्णदेवनृपदक्षिणवाहुकल्प ।

विद्वत्कवीन्द्रमुरभूरुह जीवभूसौ प्रशु म्रयाणवनिनानयनाब्जमित्र ॥"

८—"पद्माकरपुरस्थः श्रीपाद्वेशो मन्त्रिशेखरम् ।

पद्मराणश्रेष्ठिनं पायाद्विनिर्मितजिनालयम् ॥"

९—"रामराजनृपामात्योऽभात्सरण रिनायकः ।

जिनप्रतिष्ठासदानसंघपूजादिभागुरः ॥"

१०—"पायिश्रेष्ठितनूभवो जिनगृहं धेय्यातटाके वरम्

पश्चात्सोम्युचनान्नि पञ्चवसतीः कृन्वा पुरे पान्तरिः । (?)

जीर्णोद्धारविधानतो जिनमहायज्ञं ध्वजाशङ्कितम्

भक्त्या पायणवाणिजो व्यरचयन् मत्संघपूजां च सः ॥"

विजयपत्न्य, 'गुम्भय,' देवराज 'धरणिपण्डित,' लुम्भण,' गुम्भि धेष्ठी,' विजयनगरवार्त्ता  
गुम्भि धेष्ठी,' नैमन धेष्ठी ' देवराजा,' 'महि धेष्ठी,' 'गुम्भट धेष्ठी,' 'नैमयण धेष्ठी,'

१—इन्हें 'आयुर्वेदविशारद, मूनन, देवेन्द्रानुजन जरापनृपयुग्मप्रानोद्घमंपदप्रज, देवराज्य  
परिहृतनृजात, द्विजाधेसर, काश्यपगोप्रज, स्मरमम, गोविन्द्राजमुत्' कहा गया है।

२—इन्हें 'अमचराशोपतनश्रीमुकुन्द, वृत्तनिनपतिगिह, अमात्यरथ, विदुषजनवमन्त,  
जैनविप्राजस, परयनमधुट्टण, कामरूप' बनाया है।

३—इन्हें 'निरञ्जनार्थनय, प्रथमजनमुत्प्रथ, गयन्मप्राच्यमहोदय, धोम्भरमानुज, द्विज  
कुलसौभामनश्रीमुधामृति, दानमरन्नीपरिहितप्राहोरच महति, पार्श्वजिनेन्द्रपानुगलीकज  
प्रमूनानिधि, मन्त्रिनितनर, सम्यक्यगुत्प्रज, सामभूषानसन्मन्त्री, द्विज, हरवेप्रामसन्मध्यात्  
पूजिनाभय' लिखा है।

४—इन्हें 'आयुर्वेदविधानस, धीमान्, वीरपृथ्वीरामचित्र, धर्मवसन' बनाया है।

५—इन्हें 'येतगायेनगराधीरा, महाप्रभु, जिनेन्द्रधर्मनिरत, मुनिसेवाविचक्षण' कहा है।

६—इन्हें 'विद्यानगर निर्मापितजिनाय, वैश्यद्वृत्तप्रणी, म्दुरधा, नागविकाक्यम,  
अवनीजनस्तुतगुण, सदान्छन्' लिखा है।

७—"विजयनगरवासा वैश्यवराजससा चित्रपतिपदपूजासर्वाचिता विभान्ति। अतुगल-  
पुरुषुण्या कामिनीपुत्रयुक्ता परहितमुचरित्रा दानपूजासगा ॥

८—"विद्यानन्दप्रतिप्रतिपदाराधनामच्छचितो विद्वन्मय मरुजमुवनस्वभावकीर्त्तिगुणाश्च।  
साहित्यसो जिनपतिमताचारवान् टकशानार्थाम्भिधेष्ठी जयति भुवने चातुरगप्रवीण ॥"

९—इन्हें 'हरियणसहजान, सकलगुणसमेत, धर्मवार्थप्रिजात, जनवितुतचरित्र लेपदा  
नार्हवित्त' लिखा है।

१०—"शोमन्या जन (वेन्न)-वाणिजस्य वृत्तिन सद्धर्ममशोभिनो दीहित्री जिननेमिनाध-  
वसंतरमे जिनावाङ्मिहिन। मानस्तम्ममन चकार रमणी सीमन्तमुत्तमणिर्नोद्द हवरसी सद्गु-  
वणिटक्चिसोत्मवानन्दिनी ॥

११—इनके विषय में लिखा है कि मागोदु के पति, धनसम्पन्न मलि धेष्ठी ने नेमि तीर्थङ्कर  
का चैत्यालय बनवाया।

१२—इन्हें 'देविभेष्टिमहोदर, कविमुत्त, धर्माङ्गितविग्रह, जिनपतिश्रीपादसत्कार' लिखा है।

१३—इन्हें 'गुम्भन्ध्रेष्ठयतुज, अमादिनिचय धेष्ठीरा, जिनदर्शनम्, तपदु, पुत्रपौत्रान्वित'  
बनवाया है।

विद्यानन्दार्यसूनुः कविविबुधमहापारिजातो विभाति

प्रायो भूताचलैन्द्रः परहितनिरतः शारदाकर्णपूरः ॥

श्रीकृष्णारायसहजाच्युतरायमौलिविन्यस्तपादकमलः कमनीयमूर्त्तिः ।

देवेन्द्रकीर्त्तिसुखिराट् जयति प्रसिद्धः स्याद्वादशास्त्रमकराकरशीतरोचिः ।

× × × ×

“यो विद्यानगरीधुरीणविजयश्रीकृष्णारायप्रभोः

आस्थाने विदुषां गणं समजयत् पञ्चाननो वा गजम् ।

सद्वाग्भिन्नखरैरुदात्तविमलज्ञानाय तस्मै नमो

विद्यानन्दसुखीश्वराय जगति प्रख्यातसत्कीर्त्तये ॥

वाग्देवी वदनामृत्युजे नयनयोः कृष्णार्जुनौ सत्करे

स्वर्धेनुर्हृदये मरुज्जिनपतिः सन्तिष्ठते राजते ।

पादे कूर्मकलानिधिप्रभृतयो रोमालिकायां फणी

यस्य श्रीविजयाम्बिका वरगुणा सा विश्वदेवाकृतिः ॥”

× × × ×

जीयात् साल्लुवमल्लिरायनृपतेः सञ्छास्त्रविद्यागुरुः

सर्वज्ञोदिततत्त्वनिश्चितमतिः साहित्यविद्याधरः ।

भारद्वाजविशालगोत्रतिलकः स्याद्वादशास्त्राकृतिः

श्रीमान् देवरसाख्यसूरिरमलाचाराप्रणीः सन्नुतः ॥

तस्य देवरसाख्यस्य विद्भद्राजशिरोमणोः ।

सेयं त्रिवर्गनिष्पत्यै विजयासीन्महीयसी ॥

तयोर्वा विजयादेवरसोपाध्याययोरभूत् ।

सुतो वोम्मरसो नाम नीतिविक्रमयोरिव ॥

तत्पुत्रो जनताप्रियः परहितः सद्दर्शनार्थकृतः

श्रीमत्साल्लुवदेवरायनृपतेरास्थानिकाभूषणः ।

विद्यानन्दसुखीन्द्रपादसरसीजातद्वयेन्द्रीवरो-

जीयाद्द्वोम्मरसो विचक्षणवरः साहित्यरत्नाकरः ॥

× × × ×

तस्याभवत् वोम्मरसस्य पत्नी गुणाश्रया निर्मलवृत्तरस्या ।

मुक्तामया हारलतेव कान्ता कण्ठास्पदं देवरसी लतांगो ॥



पाश्वं धेष्ठी, गुम्भि धेष्ठी, तिम्भि धेष्ठी, योम्भराज' । इस प्रकरण क अन्तिम पद्य निम्न प्रकार है—'त्रिनगामननिष्णाता मदा मत्कर्मकर्मैः । जैनद्विजा सदाप्य जपन्ति कल्याणता ॥ यद्दमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दायधन्वुना । दानपूजागुणाद्यानां धावकानां स्तुति' कृता ॥

शृष्ट १२३ पत्ति ४ से तुल्यदेशान्तांत मूडविदुर के श्रीचन्द्रनाथ से तत्रस्थ भयों की रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है । इस प्रकरण म कवियद्दमान जी ने मूडविदुरे को स्वर्ण तुल्य कह कर वहाँ के धायका को धनवान्, धामान्, रूपवान्, शुद्धचारित्र्यधारक, मुनिसेवा सत्, सागारधर्मनिरत, मज्जनमुनि-भाषाधारक रागद्वेष विमुक्त वय त्यागप्रिय भावि विशेषणों से स्मरण किया है । साथ ही साथ चन्द्रनाथ या त्रिभुवनचूडामणि चैत्यालय की वड़ी प्रशंसा की है । वहाँ के पारश्वनाथ-प्रतिर का प्रशंसा करना भी आप नहीं भूले हैं । इस प्रकरण का अन्तिम पद्य यह है—

यद्दमानमुनीन्द्रेण विद्यानन्दायधन्वुना ।

धीवण्णपुरफान्तानां धायकानां स्तुति' कृता ॥

बाद पृष्ठ १२६ से देवेन्द्रकविति, विद्यानन्द् देवराससूरि पद्य इनके कुटुम्ब की प्रशंसा की है—

“धीमान्देवेन्द्रकीर्त्तियतिपतिमुकुटो मन्वराश्रीमनिह

साहित्याम्भोजसूर्यो त्रिमल्लतरतप धीसमालिंगिताङ्ग ।

१—“धीपाश्वधेष्ठिन पायाज्जिनेन्द्री गुम्भराजप्रजम् ।

दानपूजादिदिश्यास्तस्वापनेयं महाधियम् ॥”

२—“कोटीश्वरानुजापुत्रो गुम्भिधेष्ठिगुणाकर ।

दानपूजादिनिरतो राजते जनतास्तुत ॥”

३—“देविश्रेष्ठ्य गजात सकलगुणनिधिर्जनसत्सघबन्धु

चेन्नादेव्या पदाब्जद्वितयमधुकर सगराभगतजा ।

तिम्भिधेष्ठिजिनन्द्रामलमननिरत श्रीदयाधर्मकौश

मन्त्रीरा शक्तियुक्तो जगति विजयते सत्यवाम्दानशूर ॥”

४—योम्भाम्बापतिपाण्ड्यमूपनय धीवद्दमानोदय

सद्भम्मोदयशैलवास्तवरणि सदानचिन्तामणि ।

सर्वैकामलपादयुग्मसरसीजातद्विरेक सदा

जजीयाद्भुवि योम्भराजस्तुपतिर्नारीमनोजाकृति ॥”

विद्यानन्दार्यसूनुः कविविदुध्रमहापारिजातो विभालि

प्रायो भूताचलेन्द्रः परहितनिरतः शारदाकर्णपूरः ॥

श्रीकृष्णारायसहजाच्युतरायमौलिविन्यस्तपादकमलः कमनीयमूर्तिः ।

देवेन्द्रकीर्त्तिसुखिराट् जयति प्रसिद्धः स्याद्वादशास्त्रमकराकरशीतरोचिः ।

× × × ×

“यो विद्यानगरीशुरीणविजयश्रीकृष्णारायप्रभोः

आस्थाने विदुषां गणं समजयन् पञ्चाननो वा गजम् ।

सद्भागिभनंखरैरुदात्तविमलज्ञानाय तस्मै नमो

विद्यानन्दसुखीश्वराय जगति प्रख्यातस्तकीर्त्तये ॥

वादेवी वदनाम्बुजे नयनयोः कृष्णार्जुनौ सत्करे

स्वर्धेनुर्हृदये मरुजिनपतिः सन्तिष्ठते राजते ।

पादे कूर्मकलानिधिप्रभृतयो रोमालिकायां फणी

यस्य श्रीविजयाम्बिका वरगुणा सा विश्वदेवाकृतिः ॥”

× × × ×

जीयात् साल्लवमल्लिरायनृपतेः सच्छास्त्रविद्यागुरुः

सर्वज्ञोदिततत्त्वनिश्चितमतिः साहित्यविद्याधरः ।

भारद्वाजविशालगोत्रतिलकः स्याद्वादशास्त्राकृतिः

श्रीमान् देवरसाख्यसूरिरमलाचाराग्रणीः सन्तुतः ॥

तस्य देवरसाख्यस्य विद्वद्राजशिरोमणेः ।

सेयं द्विवर्गनिष्पत्यै विजयासीन्महीवसी ॥

तयोर्वा विजयादेवरसोपाध्याययोरभूत् ।

सुतो वोम्भरस्तो नाम नीतिविक्रमयोरिव ॥

तत्पुत्रो जनताप्रियः परहितः सदृशनालंकृतः

श्रीमत्साल्लवदेवरायनृपतेरास्थानिकाभूषणः ।

विद्यानन्दसुखीन्द्रपादसरसीजातद्वयेन्द्रीवरो-

जीयाद्दोम्भरस्तो विचक्षणवरः साहित्यरत्नाकरः ॥

× × × ×

तस्याभवत् वोम्भरस्तस्य पत्नी गुणाश्रया निर्मलवृत्तरम्या ।

मुक्तामया हारलतेव कान्ता कण्ठास्पदं देवरसो लतांगी ॥

नील श्रीचिकुर प्रवालमधरो घञ्ज दन्ताबलि  
 वैदूर्म नखर कलेवरमिद सत्पुष्परागो मणि ।  
 यस्या शोणरुगप्रियुग्मममल शृङ्गारसजीवनी  
 सा रत्नप्रतिमेव भाति तदणी श्रीदेवरस्यम्बिका ॥  
 कुम्भौ पीनपयोधरो मलिनिकावक्त्र पताका क  
 पर्ण पाणितल सुतगडुलचयी दन्तावलिस्तोरणम् ।  
 हेमस्तम्भसदृशमूष्युग याद्य च हृद्य वचो-  
 यस्या मङ्गलदेवतद्य वनिता सा दवरस्यावधौ ॥  
 तस्या वियोगविधुर परमाथसिद्ध्यै देवेद्रकीर्त्तिमुनिराजप्रदाम्बुजा  
 सागरवाडवाभा दीप्ता जिनेन्द्रगदितां वरमाश्रयेऽहम् ।'

इसके भागे कन्नड भाषा में कवि घञ्ज मान ने अपनी प्रशंसा लिखी है। बल्कि उल्लिखित देवेन्द्रकीर्त्ति विद्यानन्द आदि की प्रशंसापरक स्तुति तथा परिचय आदि में भी कन्नड भाषा प्रयोग में लाई गयी है। पश्चात् कुछ ऐतिहासिक पद्य जो ज्ञात होने हैं वे यथावत् नीचे उद्धृत कर दिये जाते हैं

“धीवृष्या कुरुवशजं गजपुर श्री उर्मराय यथा  
 पट्टेऽस्यापयवीदवरन्द्रनरम् धीरगरायात्मजम् ।  
 जामाता भुवि वृष्यारायनपते धीरामराजस्ताथा  
 धीपट्टे ऽत्र सदाशिव नरपति रिचापुरऽस्यापयम् ॥  
 श्रेतायां रघुरामचन्द्रनृपतिः सिन्धास्तः द्वाग्निद  
 रामेश समतिष्ठपत्सल्लु यथा वर्यान्देश कल्पै ।  
 धीविद्यानगरे सदाशिवमहाराय नसिंहप्रभो  
 नभार गुरुरामराजनृपतिस्त राजमौलि तथा ॥  
 जीयादीश्वरनारसिहतनयधीवृष्यारायप्रभो  
 धाता योऽजनि रगरायनृपति पृथ्वीवराहाङ्कित ।  
 तस्यासौ तनुज सुपुत्रयतिरु धीरामराजार्चित  
 सौशीपालबल सदाशिवमहारायो जिनेन्द्रदुम् ॥  
 अन्धे धीरगराजश्रितिपनिकल्प धर्षयन्तीरुपुण्यम्  
 पुत्र जामातर वा परिषुद्धमयनौ मातुल देव्य च ।

विद्वांसस्ते कवीन्द्राः कुवलयसुखदं श्रीवरं रत्नकान्तम् ।  
तेजस्वीनं च विश्रायानगुरानिरतं रामराजावनीशम् ॥"

x x x x

"रजे पाराड्यमहीमहेन्द्रमहिपी श्रीभैरवाम्बा सती  
सर्वज्ञांघ्रिसरोजपूजनपरा पुष्पायुधश्रीतुजः ।  
साल्वश्रीगुरुरायभैरवन्तृपश्रीदेवरायप्रभोः  
पद्माम्बाप्रजसंगिरायन्तृपतेः श्रीरामचन्द्रस्यजा ॥  
वीरश्रीवरदेवराजकृतसत्कल्यारापृजोत्सवो-  
विद्यानन्दमहोदयैकनिलयः श्रीसंगिराजाञ्चितः ।  
पद्मानन्दन.....कृष्णविनुतः श्रीवर्द्धमानो जिनः ।  
पायात्साल्वकृष्णादेवन्तृपतिं श्रीशोऽर्द्धनारीश्वरः ॥"

x x x

"पञ्चार्हन्तः प्रमाणाः सकलगुणयुता मोक्षदो जैनधर्मो-  
वाक्यं जैनेन्द्रवक्त्रोद्गतमवनिहितं बन्धुरा जैनविम्बाः ।  
भास्वज्जैनालयाः श्रीसदनमुक्कलं कृष्णादेवत्तितोन्द्रम्  
रत्नतोद्दप्रतापं कृतजिनसदं पद्मलाम्बाकुमारम् ॥"

x x x

"बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युतेः ।  
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणोः ॥  
शिष्येणा ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेणा सुधीमता ।  
जिनेन्द्रचरणाद्धैतस्मरणाधीनचेतसा ॥  
वर्द्धमानमुनीन्द्रेणा विद्यानन्दार्यवन्धुना ।  
कथितं दशभक्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥"

इसके बाद ग्रन्थरचनाकाल यों अङ्कित हैं:—

"शाके वेदखराधिचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीसुवे  
सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिखे कृष्णाष्टमीवासरे ।  
रोहियायां दशभक्तिपूर्वकमहाशस्त्रं पदार्थोज्ज्वलम्  
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्गर्द्धमानो मुनिः ॥"

ऊपर उद्धृत इस ग्रन्थ के जहाँ-तहाँ के पद्यों से विन्न पाठक सहज ही समझ गये होंगे

नीलः धीचिकुरः प्रबालमघरो वज्रश्च दन्तायलिः  
पैदूर्ध्वं नखरः कलेवरमिदं सत्पुष्परागो मयिः ।

यस्याः शोण्ड्यांघ्रियुग्मममलं शृङ्गारसंजीवनी  
सा रत्नप्रतिमेव भाति तरुणी धीदेवरस्यम्बिका ॥  
कुम्भौ पीनपयोधरौ मलिनिकावक्त्रं पताका क .....  
पर्णं पाणितलं सुतपद्मलक्ष्यी दन्तायलिस्तोरणम् ।

हेमस्तम्भसदृत्तमूर्धुयुगं धापं च हृद्यं वचो-  
यस्या मङ्गलदेवतेयं यनिता सा देवरस्यायमौ ॥

तस्या वियोगविधुरः परमार्यसिद्धये देवेन्द्रकीर्त्तिमुनिराजपद्माम्बुजा.....  
..... सागरवाडवाभां दीप्तां जिनेन्द्रगदितां वरमाश्रयेऽहम् ।”

इसके भागे कन्नड भाग में कवि वर्द्धमान ने अपनी प्रशंसा लिखी है। बल्कि उल्लिखित देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्द आदि की प्रशंसापरक स्तुति तथा परिचय आदि में भी कन्नड भाषा प्रयोग में लाई गयी है। पश्चात् कुछ ऐतिहासिक पद्य जो ज्ञात होते हैं, वे यथावत् नीचे उद्धृत कर दिये जाते हैं :

“धीरुष्याः कुरुवंशजं गजपुरे धीधर्मरायं यथा  
पट्टेऽस्यापयद्वीदेवेन्द्रनरम् धीरंगरायात्मजम् ।

जामाता भुवि रुष्यारायनृपते' धीरामराजस्तथा  
धीपट्टेऽत्र सदाशिवं नरपतिं विद्यापुरेऽस्यापयन् ॥

श्रेतार्यां रघुरामचन्द्रनृपतिः सिन्धोस्तटे द्राविडे  
रामेशं समतिष्ठपत्तलु यथा करार्णदेजे कलौ ।

धीविद्यानगरे सदाशिवमहापायं नृमिंहप्रभोः  
नभारं गुरुरामराजनृपतिस्तं राजमौलिं तथा ॥

जीयाद्वीश्वरजारसिंहतनयधीरुष्यारायप्रभोः  
भ्राता योऽजनि रंगरायनृपतिः पृथ्वीवराहाङ्कितः ।

तस्यासौ तनुजः सुपुण्यतिलक' धीगमराजाञ्जितः  
सौशीपालबलः सदाशिवमहापायो जिनेन्द्रदुम' ॥

अन्धेः धीरंगराजत्तितिपतिकलमं वर्णयन्नीदुपुण्यम्  
पुत्रं जामातरं वा परिवृद्धमवनीं भानुलं देवरं च ।

विद्वांसस्ते कवीन्द्राः कुवलयसुखदं श्रीवरं रत्नकान्तम् ।  
तेजस्वीनं च विश्रानानगुरानिरतं रामराजावनीशम् ॥”

× × × ×

“रेजे पारुड्यमहीमहेन्द्रमहिषी श्रीभैरवाम्बा सती  
सर्वज्ञांघ्रिसरोजपूजनपरा पुष्पायुधश्रीतुजः ।  
साल्वश्रीगुरुरायभैरवनृपश्रीदेवरायप्रभोः  
पद्माम्बाप्रजसंगिरायनृपतेः श्रीरामचन्द्रस्यजा ॥  
वीरश्रीवरदेवराजकृतसत्कल्याणापूजोत्सवो-  
विद्यानन्दमहोदयैकनिलयः श्रीसंगिराजाञ्चितः ।  
पद्मानन्दन.....कृष्णविनुतः श्रीवर्द्धमानो जिनः ।  
पायात्साल्वकृष्णादेवनृपतिं श्रीशोऽर्द्धनारीश्वरः ॥”

× × ×

“पञ्चार्हन्तः प्रमरणाः सकलगुणयुता मोक्षदो जैनधर्मो-  
वाक्यं जैनेन्द्रवक्त्रोद्गतमवनिहितं बन्धुरा जैनविम्बाः ।  
भास्वज्जैनालयाः श्रीसदनमुरुकलं कृष्णादेवत्तितीन्द्रम्  
रत्नतोद्धप्रतापं कृतजिनसदं पद्मालाम्बाकुमारम् ॥”

× × ×

“बलात्कारगणाम्भोजभास्करस्य महाद्युतेः ।  
श्रीमद्देवेन्द्रकीर्त्याख्यभट्टारकशिरोमणेः ॥  
शिष्येणा ज्ञातशास्त्रार्थस्वरूपेण सुधीमता ।  
जिनेन्द्रचरणाद्दैतस्मरणाधीनचेतसा ॥  
वर्द्धमानमुनीन्द्रेणा विद्यानन्दार्यबन्धुना ।  
कथितं दशभक्त्यादिशासनं भव्यसौख्यदम् ॥”

इसके बाद ग्रन्थरचनाकाल यों अङ्कित है:—

“शाके वेदखराब्धिचन्द्रकलिते संवत्सरे श्रीप्लवे  
सिंहश्रावणिके प्रभाकरशिवे कृष्णाष्टमीवासरे ।  
रोहियायां दशभक्तिपूर्वकमहाशखं पदार्योज्ज्वलम्  
विद्यानन्दमुनिस्तुतं व्यरचयत् सद्दर्द्धमानो मुनिः ॥”

ऊपर उद्धृत इस ग्रन्थ के जहाँ-तहाँ के पद्यों से विन्न पाठक सहज ही समझ सकेगा

कि इस ग्रन्थ का इतिहास में कितना धनी सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित प्रत्येक बात पर सत्यता से विचार करने पर कई नवीन बातों का प्रकाश पड़ेगा और एक सुन्दर महत्व-पूर्ण प्रबंध तैयार होगा। खास कर उत्तर कन्नड़ निलय कन्नड़ इतिहास निर्माण में इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। किन्तु ग्रन्थ-प्रतिपादित सभी बातों को सप्रमाण खोज-खोज सिद्ध करने के लिये यद्यपि समय सापेक्ष है। पर इस समय के पास इतना समय नहीं है। अतः मैं एकमात्र अन्वेषण शील सावकाश विद्वानों से ग्रन्थगत बातों पर प्रकाश डालने के लिये अग्र्य सादर अनुरोध करूँगा।

ग्रन्थ-रचयिता कवि वर्द्धमान जी ने इसमें अपने पूर्वज विद्यानन्द और देवेन्द्रकीर्ति का कई स्थानों पर बड़ा प्रशंसा पद स्तुति की है। यह विद्यानन्द वही विद्यानन्द है जिनके सम्बन्ध में 'जैनपत्तिस्वरा' भाग ४ न० १ म १० सालेत्तोर का Vadi Vidyana A Renowned Janna Guru of Karnataka शीर्षक एक महत्व-पूर्ण विस्तृत लेख अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है। विद्वत् लेखक ने इनके बारे में अपने गवेषणा-पूर्ण लेख में अच्छा विवरण दिया है। विद्यानन्द त्रिपुरनगर साम्राज्य के समसामयिक हैं। मैसूर राज्यान्तगत नगर नाटुक के हुम्बुध नामक स्थान में इनमें सम्बन्ध रखनेवाले का जिला लेख मौजूद है। आप नन्दिसय के कुन्दसन्दाह्य के अनुयायी थे। इस अन्वय में समन्तभद्र पूज्यपाद आदि बड़े बड़े लोकविद्वान्त आवाय हो गये हैं। विद्यानन्द एक अद्वितीय धार्मिक विनयी थे। भिन्न-भिन्न राजसभाओं में जाकर इन्होंने जो अर्थ-राम प्राप्त किया था उन सब का विस्तृत परिचय अनेक जिलालेखों में मिलता है। बल्कि वर्द्धमान जी ने अपने इस प्रस्तुत ग्रन्थ में भी जिलालेख-गत कतिपय पद्यों को अहाँ-तहाँ उद्धृत किया है। डॉ० सात्रेत्तोर ने भी पूर्वोक्त अपने लेख में इनकी विनययात्रा सम्बन्धी बातों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। नन्दिसय राज कर्णारिकम आदि जिन राजाओं की सभाओं में विद्यानन्द जी ने वाद-विवाद प्राप्त किया था वे अमुक वना के अमुक राज्य के एवं अमुककाल के राजा थे इन सब जगह बातों का सप्रमाण सिद्ध करने की आपने सफल चय की है।

विद्यानन्द केवल धार्मिक ही नहीं थे। प्रयुक्त एक प्रमाण समालोचक तथा सुदृढ़ कवि भी थे। जिलालेख में इनके गद्य के लिये महाकवि धाम की उपमा दी गयी है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र में अच्छा काम किया था। गद्यस्तोत्रों में तो इनका एकद्वन्द्व आधिपत्य था ही। साथ ही साथ कोपण धर्मशास्त्राल आदि शास्त्रों में भी विद्यानन्द जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। वर्द्धमान जी के द्वारा निदर्याणि शब्दकारिणि विद्यानकीर्ति तथा विद्यानन्द

(२५) ये चारो विद्यानन्द के 'सूनु' या 'तनय' कहे गये हैं। मालूम नहीं होता है कि उक्त ये विद्वान् विद्यानन्द के आत्मज और शिष्य दोनों थे या केवल शिष्य। शिष्य के लिये भी सूनु, तनय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है अवश्य; फिर भी इन चारो विद्वानों के परिचय में आये हुए खास कर 'सूनु' 'तनय' इन शब्दों को देख कर इन्हें आत्मज और शिष्य दोनों अनुमान करना युक्ति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इन चारों का संक्षिप्त उल्लेख आगे कर दिया है। इस 'दशभक्त्यादिशास्त्र' में स्मरण किये गये देवराय३, कृष्णराय, अच्युतराय, मल्लिराय, रामराय, रंगराय नृसिंह, संगिराय, सदाशिव, पद्माम्बा और भैरवाम्बा आदि ये सभी व्यक्ति विजयनगर-राज-घराने के हैं।

डा० सालेतोर का कहना है कि साल्व मल्लिराय, देवराज, कृष्णराज और संगिराय ये चारो तौळ्य देशान्तर्गत संगीतपुर अर्थात् हाडुहळिळ के साल्व या साल्व-वंश के हैं। संगीतपुर, वेणुपुर एवं गेरुसोण्पे इन तीनों स्थानों में इनकी राजधानियां थीं। पर यह निश्चित-रूप से कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान में राज्य करता था। हाँ, संगिराय का लड़का इंदगरस संगीतपुर में ही राज्य करता था। नगरी राज्य का भी गेरुसोण्पे से सम्बन्ध था। देवराज और कृष्णराज से विद्यानन्द का साक्षात् सम्बन्ध था। पद्माम्बा देवराज की बहन तथा कृष्णराज की मां थी। उस समय गेरुसोण्पे एवं संगीतपुर में भी तौळ्य देशके समान 'अलि रकट्टु' अर्थात् भगिना के मामा का उत्तराधिकारी होना यह प्रथा जारी थी। इसी से कृष्णराज को मामा देवराज का राज्य मिला था। भैरवाम्बा का विवाह पाण्ड्यराज से हुआ था। डा० सालेतोर विद्यानन्द का अस्तित्व ई० सन् १५०२ से १५३३ मानते हैं। परन्तु मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४६३ ई० सन् १५४१ में हुआ था।

ऊपर अन्यान्य परिचयात्मक एवं प्रशंसापरक पद्यों में ग्रन्थकर्ता के द्वारा स्मरण किये गये देवराय (ई० सन् १४२९—१४५१) से प्रणुत धर्ममूषण, विद्यानन्द के 'सूनुवर्य', वतीन्द्र, महादानी, निष्कलङ्क चारित्र के आराधक, कर्णाटक की ही राजसमाधों में नहीं, दिल्ली के सुलतान महमूद<sup>१</sup> के राजदरवार में भी बौद्धों को हरानेवाले एवं नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ भट्टारक

३ राय और राज ये दोनों शब्द समानार्थक हैं, इसीलिये कोई 'राय' लिखता है और कोई 'राज'।

<sup>१</sup> यह दिल्ली के सुलतान महमूद या मुहम्मद तुगलक होना चाहिये। मुसलमान बाद-शाहों में यह बहुत ही विद्वान् और योग्य शासक था। उसे हिन्दुओं की धर्म-मान्यताओं के प्रति भी सम्मान-भाव था। यह इस्लाम और अरस्तू के सिद्धान्तों का अच्छा जानकार था। उसे तत्त्ववेत्ताओं से वाद करने का भी व्यसन था। इसकी तर्कशक्ति देख कर अच्छे अच्छे तार्किक विद्वान् भी आश्चर्यित हो जाते थे। अतः इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं, यदि सिंहकीर्ति



कि इस ग्रन्थ का इतिहास मे कितना घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ग्रन्थ में प्रतिपादित प्रत्येक वात पर साग्रधानता से विचार करने पर कई नवीन बातों पर प्रकाश पड़ेगा और एक सुन्दर महत्त्व-पूर्ण प्रबन्ध तैयार होगा। खास कर उत्तर कन्नड जिला के जैन इतिहास निर्माण म इस ग्रन्थ से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। किन्तु ग्रन्थ प्रतिपादित सभी बातों को सप्रमाण रोज पच सिद्ध करने के लिये यद्यपि समय सापेक्ष है। पर इस समय मेर पास इतना समय नहीं है। अत मे एकमात्र अन्वेषण शील सावकाश विद्वाना मे ग्रन्थगत बातों पर प्रकाश डालने के लिये अग्रश्य सादर अनुरोध करूंगा।

ग्रन्थ रचयिता कवि वर्द्धमान जी ने इसम अपने पूर्वज विद्यानन्द और देवेन्द्रकीर्ति को कई स्थाना पर बड़ी प्रशंसा एवं स्तुति की है। यह विद्यानन्द वही विद्यानन्द है जिनके सम्बन्ध म 'जैनपन्थिकवेरी' भाग ४, न० १ म डा० सालेतोर का 'Vadi Vidyānanda - A Renowned Jaina Guru of Karnataka' शीर्षक एक महत्त्व-पूर्ण विस्तृत लेख श्रीप्रेजी म प्रकाशित हा चुका है। विज्ञ लेखक ने इनके बारे म अपने गवेषणा-पूर्ण लेख में अच्छा निवेचन किया है। विद्यानन्द विजयनगर साम्राज्य के समसामयिक हैं। मैसूर राज्यान्तर्गत नगर ताडुक के हुम्पुष नामक स्थान म इनमे सम्बन्ध रखनेवाले कई शिला लेख मौजूद हैं। आप नन्दिसय के कुन्दकु-दानव्य के अनुयायी थे। इस अन्वय में समन्तभद्र, पूज्यपाद आदि बड़े बड़े लोकविश्रुत आचार्य हा गये हैं। विद्यानन्द एक अद्वितीय वादि विजयी थे। विभिन्न विषय राजसमाजा म जाकर इन्होंने जो जय लाभ प्राप्त किया था उन सब का विस्तृत परिचय अनेक शिलालेखा म मिलना है। बल्कि वर्द्धमान जी ने अपने इस प्रस्तुत ग्रन्थ म भी शिलालेख मत कतिपय पद्या को जहाँ-तहाँ उद्धृत किया है। डा० सालेतोर न भी पूर्णतः अपने लेख में इनकी विजययात्रा सम्बन्धी बातों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। नजिदेवराज कशरिविक्रम आदि जिन जिन राजाओं का समाधी म विद्यानन्द जी ने वाद्-डारा यश प्राप्त किया था वे अमुक वंश के, अमुक राज्य के एवं अमुककाल के राजा थे इन सब जगिष्ठ वाता का सप्रमाण सिद्ध करने की अपने सफल चेष्ट की है।

विद्यानन्द केवल वादी ही नहीं थे प्रत्युत एक प्रवीण समालोचक तथा सुदत्त कवि भी थे। शिलालेख म इनके गद्य के लिये महाकवि आण की उपमा दी गयी है। इन्होंने धार्मिक क्षेत्र म अच्छा काम किया था। रोहसोप्ये मं ता इनका एकद्वार आधिपत्य था ही। साथ ही साथ कोपण, ध्वजगयेज्योल आदि स्थानों में भी विद्यानन्द जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। वर्द्धमान जी के द्वारा मिहकोनि देवेन्द्रकीर्ति, विद्यानकीर्ति एवं विद्यानन्द

(२५) ये चारो विद्यानन्द के 'सूनु' या 'तनय' कहे गये हैं। मालूम नहीं होता है कि उक्त ये विद्वान् विद्यानन्द के आत्मज और शिष्य दोनों थे या केवल शिष्य। शिष्य के लिये भी सूनु, तनय आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है अवश्य; फिर भी इन चारो विद्वानों के परिचय में आये हुए खास कर 'सूनु' 'तनय' इन शब्दों को देख कर इन्हें आत्मज और शिष्य दोनों अनुमान करना युक्ति-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इन चारों का संक्षिप्त उल्लेख आगे कर दिया है। इस 'दशभक्त्यादिशास्त्र' में स्मरण किये गये देवगायक, कृष्णराय, अच्युतराय, मल्लिराय, रामराय, रंगराय नृसिंह, मंगिराय, सदाशिव, पद्माम्बा और भैरवाम्बा आदि ये सभी व्यक्ति विजयनगर-राज-घराने के हैं।

डा० सालेतोर का कहना है कि साल्व मल्लिराय, देवराज, कृष्णराज और मंगिराय ये चारो तौळव देशान्तर्गत संगीतपुर अर्थात् हाडुहळिळ के साल्व या सालुव-वंश के हैं। संगीतपुर, वेणुपुर एवं गेहसोप्पे इन तीनों स्थानों में इनकी राजधानियां थीं। पर यह निश्चित-रूप से कहना कठिन है कि अमुक व्यक्ति अमुक स्थान में राज्य करता था। हाँ, मंगिराय का लड़का इंदगरस संगीतपुर में ही राज्य करता था। नगरी राज्य का भी गेहसोप्पे से सम्बन्ध था। देवराज और कृष्णराज से विद्यानन्द का साक्षात् सम्बन्ध था। पद्माम्बा देवराज की बहन तथा कृष्णराज की मां थी। उस समय गेहसोप्पे एवं संगीतपुर में भी तौळव देशके समान 'अळि रकट्टु' अर्थात् भगिना के मामा का उत्तराधिकारी होना यह प्रथा जारी थी। इसी से कृष्णराज को मामा देवराज का राज्य मिला था। भैरवाम्बा का विवाह पाण्ड्यराज से हुआ था। डा० सालेतोर विद्यानन्द का अस्तित्व ई० सन् १५०२ से १५३३ मानते हैं। परन्तु मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि विद्यानन्द का स्वर्गवास शक १४६३ ई० सन् १५४१ में हुआ था।

ऊपर अन्यान्य परिश्रयात्मक एवं प्रशंसापरक पद्यों में ग्रन्थकर्ता के द्वारा स्मरण किये गये देवराय (ई० सन् १४२९—१४५१) से प्रारुत धर्ममूषण, विद्यानन्द के 'सूनुवर्य', वतीन्द्र, महादानी, निष्कलङ्क चारित्त के आराधक, कर्णाटक की ही राजसभाओं में नहीं, दिल्ली के सुल्तान महमूद<sup>१</sup> के राजदरवार में भी बौद्धों को हरानेवाले एवं नाट्यशास्त्र के मर्मज्ञ भट्टारक

१ राय और राज ये दोनों शब्द समानार्थक हैं, इसीलिये कोई 'राय' लिखता है और कोई 'राज'।

१ यह दिल्ली के सुल्तान महमूद या मुहम्मद तुगलक होना चाहिये। मुसलमान बाद-शाहों में यह बहुत ही विद्वान् और योग्य शासक था। उसे हिन्दुओं की धर्म-मान्यताओं के प्रति भी सम्मान-भाव था। यह इस्लाम और अरस्तू के सिद्धान्तों का अच्छा जानकार था। उसे तत्त्ववेत्ताओं से वाद करने का भी व्यसन था। इसकी तर्कशक्ति देख कर अच्छे अच्छे तार्किक विद्वान् भी आश्चर्यित हो जाते थे। अतः इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं, यदि सिंहकीर्ति

सिंहकीर्ति यादीन्द्र परमागमकोविद महानरम्भी, गिबन्दर सुल्तानके द्वारा सम्मानपत्र  
महाराज विशालकीर्ति, अपने मानवत्वं से विद्यानगर (विजयनगर) के स्वामी विरूपाक्षराय  
(ई० सन् १५६५—१४५९) को मन्ना म यादियों को ज्ञानकर विजय पत्र को प्राप्त करनेवाले,  
भरणनगर क दण्डनाथ (यायसराय) दण्ड्या के दरबार में जैनधर्म के महत्त्व को प्रकट

जी ने सुल्तान मुहम्मद तुगलक के दरबार में प्रसिद्धि प्राप्त की है। दिल्ली के सुयोग्य सुल्तान  
के द्वारा निमन्त्रित किये गये तत्त्वज्ञानियों में यह भी एक होगा और इन्होंने सन् १३२६ ए  
१३३० ई० के मध्य सम्मान प्राप्त किया था यह अनुमान करना निर्मूल नहीं कहा जा सकता।  
(दोस्तों—'भास्कर' भाग ४, क्रि.सं ४, में प्रकाशित डा० साजेलोर का "दिल्ली के सुल्तान और  
कर्नाटक क जैनगुरु" शीर्षक लेख) पर एक बात है कि डा० साल्लोर 'पद्मावती-वस्ति' के  
शिलालेखगत पाठ को इस ग्रन्थगत पाठ के समस्त रस्य कर इस पर फिर एक बार विचार  
करने का कष्ट उठाये। क्योंकि सिंहकीर्ति के परिचय को व्यक्त करनेवाले इस पद्य में कुछ  
शब्द ऐंम हैं जिन पर विचार करना अवशिष्ट है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ में 'महम्मद मुरिजाण'  
शब्द स्पष्ट भिन्न रहा है जो कि उक्त शिलालेख में डा० साहय के कथनानुसार केवल 'मू-  
सुरिजाण' पाया जाता है। साथ ही साथ शिलालेख में जहाँ 'धगान्य-दशाहृत' पाठ है यहाँ  
'धगान्य-दशाहृत' है। इसका अतिरिक्त भी दोना पाठा में और भी अन्तर है। उसका पाठ  
या है—“वामानि अश्वपतेदिने तनयो धगान्यदशाहृतधर्मिद्विद्विपुरे मूर्सुरि  
आणम्य माराहृते निजित्यागु समावनम् विनगुरुर् बौद्धादिवादित्रय श्रीमहाराजसिंहकीर्ति  
मुनि रा चौक-विदा-गुरु” (पद्मावती-वस्ति का शिलालेख)

“वामान्यश्वपतेदिनेतनयो गगाहृतेशाहृत

श्रीमद्विद्विपुरे महम्मदसुरिजाणम्य माराहृते ।

निजित्यागु समावनौ जितगुरु (विनगुरुर्बौ) बौद्धादिवादित्रयम्

श्रीमहाराजसिंहकीर्तिमुनिरात् नाश्वकविचागुरु ॥” (दशमस्कन्धादिशाख)

☞ यह सिक्न्दर दिल्ली के सुल्तान सिक्न्दर सूर होना चाहिये। साथ ही साथ यह भी  
निश्चिन है कि सन् १५५४ म जय सुल्तान सिक्न्दर सूर दिल्ली का शासक हुआ सम्भव है कि  
इसी सात में विशालकीर्ति जी इसक दरबार म आये हों और सुल्तान ने इनका सत्कार किया  
हो। सिक्न्दर का समय १४६८—१५५४ ई० है। विरोध बात जो जानना चाहें वे दोस्तों—डा०  
साल्लोरके 'भास्कर' भाग ४, क्रि.सं ४ में प्रकाशित 'दिल्ली के सुल्तान और कर्नाटक क जैनगुरु'।

† विजयनगर का वायसराय (दण्डनाथक) गिरिनाथ का पुत्र देवप दण्डनाथ था।  
यह अरग का शासक था। देवप मल्लिकार्जुन या इम्मडि देवराय एव विजयनगर के दूसरे  
सम्राट् विरूपाक्ष के राज्यकाल में अरग का शासन करता था। (दोस्तों भास्कर भा० ४, क्रि.सं ४)

करनेवाले एवं तत्रस्थ ब्राह्मणों से पूजित, अच्युतराय (ई० सन् १५३०-१५४२) तथा मल्लिराय (ई० सन् १४५१-१४६५) से सम्मानित, आगमत्रयसर्वज्ञ, महाकवि, विविधोपन्यासविचक्षण, कार्कल के पाण्ड्यराज के द्वारा समर्चित तथा विद्यानन्द के पुत्र भट्टारक देवेन्द्रकीर्त्ति, विद्यानन्द स्वामी के सधर्मा, पोस्तुच्च में पार्श्वनाथमन्दिर को बनवा कर बड़े समारोह से प्रतिष्ठा करानेवाले नेमिचन्द्र, विद्वद्वन्द्य, सभी शास्त्रों के ज्ञाता और महावादी, विद्यानन्द के पुत्र विशालकीर्त्ति, विशालकीर्त्ति के सधर्मा अनेक गुणभूषित अमरकीर्त्ति, शास्त्रधुरन्धर, विद्यानन्द के पुत्र विद्यानन्दमुनीश्वर, वंकापुर में नृप मादन पल्लव के मदोन्मत्त प्रधान गजेन्द्र को अपने तपोबल से शान्त करनेवाले, स्याद्वादमर्मज्ञ एवं राजशिरोमणि देवराय (ई० सन् १४२९-१४५१) से वन्द्य अकलङ्क, इनके सधर्मा तर्कव्याकरणादि शास्त्रों के पारगामी चन्द्रप्रभदेव, सर्वगुणालंकृत जयकीर्त्ति, जनता के लिये कल्पवृक्ष-तुल्य अकलंक-तनय विजयकीर्त्ति, अनेक धर्मप्रभावना-सम्बन्धी कार्य करनेवाले, अकलंक के शिष्य विमलकीर्त्ति, महातपस्वी एवं अकलंकपद-प्रिय पाल्यकीर्त्ति, विदुषी, समुज्ज्वलगुणसम्पन्ना, चारित्रवती आर्यिका चन्द्रमती, संगीतपुर (हाडुहल्लि) में अनन्तनाथ स्वामी का सुरम्य एवं भव्य चैत्यालय को बनवा कर शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठा करनेवाले, अन्यान्य राजाओं से पूजित, देशीयगण के योगिराज एवं चन्द्रप्रभतनुज नेमिचन्द्र, श्रीरंगपट्टण में बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों से अलंकृत राजसभा में अपनी धारावाही एवं अजेय वाणी के द्वारा वादि-वृन्द को जीतनेवाले, महातपस्वी, देशीयगण के नायक एवं कवि-शिरोमणि विजयकीर्त्ति, होय्सल-राज्य-संस्थापक तथा इस राज-वंश को व्रत और विद्या प्रदान करनेवाले वर्द्धमान, मालवपति-वन्द्य<sup>†</sup> आशाधर, काशीपतिनत कमलभद्र, पेनगोंडे के नरसिंहराय से सम्मानित लक्ष्मीसेन, मालवेन्द्र की सभा में बौद्धों को पराजित करनेवाले और पैगुद्वीपादि-वन्द्य मतिसागर<sup>‡</sup>, सात्वराज-द्वारा पूजित, त्रैविद्यकेश्वर श्रुतकीर्त्ति, मन्त्रवादीश्वर एवं बल्लारराय-सम्मानित चारुकीर्त्ति, राजा जयकेशरी के मदोन्मत्त हार्या को शान्त करनेवाले माधवचन्द्र, काणूर्गण के प्रजान, जावालिपुर के राजा से सम्मानित रामचन्द्र, चन्द्रगुतिपुर के शासक, चन्द्रगुप्त के द्वारा अर्चित<sup>x</sup> महद्विक मुनिचन्द्र, केरलाधीश-सम्मानित देवकीर्त्ति,

‡ दिल्ली के बादशाह के दरबार में जाकर शास्त्रार्थ-द्वारा विजय प्राप्त करनेवाले उल्लिखित विशालकीर्त्ति से यह भिन्न हैं या वही हैं, विचारणीय है। क्योंकि वर्द्धमानजी ने कई व्यक्तियों के नाम अनेक बार स्मरण किये हैं।

† यह मालवपति परमारवंश के प्रतापी राजा विन्ध्यवर्म थे।

‡ यह प्रायः वादिराज के गुरु हों।

x पता नहीं लगता कि यह कौन सा चन्द्रगुतिपुर है।

मालवेन्द्र में सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रादिपितामह गण्डरिमुन, अनेक राजाओं भवित अमयचन्द्र, देशपार के पुत्र, अमयचन्द्र सूरि के जिन्य एवं विजयनगर के देवरा सम्मानित नेमिचन्द्र, विजयनगर के देवराय के ज्ञ्याति-प्रात आस्थान-कवि भेम्मडि भ नरमिहनुपति द्वारा प्रशंसित पण्डितार्थ, कल्याणनाथ के पुत्र, मान्य महापति के आस्थान विद्वान् अमयचन्द्र सूरि, महिराय के इत्यरूपी कर्मठ को विक्रमित करनेवाले आदिनाथ वेणुपुर के भयों के द्वारा भवित, तौळयाधीश-पन्थ समन्तमद्र, अनेक गुणालंघृत, साल्य महिराय के शास्त्र-विद्यागुरु देवरस सूरि, इनके पुत्र अनेक गुणभूषित साल्यदेवराय। आस्थान-रत्न एवं विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि भाचार्य, कवि, विद्वान् तथा त्रिदुषिणी देवराय, कृष्णराय, रामराय, कृष्णराय के भारी, रंगराय के पुत्र एवं नृसिंह के नात सदाशिव, पारथ्यराज की महिषी जिनभक्ता भैरवाम्बा, मंगिराय की भगिनी पद्माम्बा माधुनायक के पुत्र और संगीतनगर (हाडुडळिळ) में प्रशि श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित जिनालय को ताद्वयत्त से आच्छादित करनेवाले साल्य नायक, जिन-मन्दिर-निर्माता कामरस्य और देवरस, महान् घोर एवं गुणगणालंघृत होधय नायक, सम्यक्तयचूडामणि, साल्य कृष्णदे- राय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति-निपुण ईवय नायक, विद्वानों के शिष्य कल्याण- तुण्य और कृष्णदेवराय के वृत्तिण हस्त तिमम नायक, बेलगावे के शासक, महाम्नु लुम्पण आदि राजा, महाराज, सामन्त एवं राज-महिषिण; विद्यानन्द के निकट वर्तनशास्त्र को अभ्ययन करनेवाले, संगीतपुर के साल्येन्द्र भूपाल के आस्थान-भूषण, वैयाकरण और महाबाही मन्त्री चेतरस, प्रधानतिलक, देवराय के दुर्गपति से सम्मानित सुकवि तथा धृत- कीर्त्त के शिष्य मंत्री जैतरस, सौमन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस, विरगण्य शासक के द्वारा रचित, मंत्री देवरस, मल्लिकार्जुन राय के महामन्त्री मलय नायक, सत्यवादी, साल्य महिराय के मन्त्रिप्रवर एवं घोर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभव सङ्करस, चेत्रराय- पट्टण-सम्बन्धी राजदलक्ष्मी के सम्यर्द्धक तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नेमिचन्द्र, अमत्रवादिपत्तन (?) मुकुन्द, महान् घोर, अमात्यश्रेष्ठ गुम्भय, राजसभाभा में सम्मानित, बोम्मरस के लघुस्राता, सोमभूपाल के मन्त्रितिलक देवरस, आयुर्वेद-विशारद, घोरपृथ्वीश-सचिव घरणि पण्डित, मन्त्रिश्रेष्ठर पद्मण्य श्रेष्ठी, रामराज के अमात्य सयणमरि नायक, देवि श्रेष्ठी के पुत्र, चेशा देवी के भक्त एवं महापराक्रम, मन्वीश तिमि श्रेष्ठी, कीर्त्तिशाली, लोकविख्यात एवं धरणीश- प्रदत्त सौभाग्य वराडनाथ वैचय्य, करणिक-तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री, महामन्त्री, वराडनायक, करणिक, विजयनगर पर त लवशासकों के द्वारा सम्मानित, घोरसेन और मुनि विद्यानन्द के चरणसेवक, विद्वत्सेव्य एवं विद्वानों के आश्रयदाता, चतुरण-रत्न, साहित्य- कोविद एवं टकसाला के अभ्यक्त योगि श्रेष्ठी, देवराय की समा में श्रेष्ठी-पद को सुशोभित

करनेवाले, विख्यात दानी और धर्मभूषण के शिष्य सङ्कष्य, विजयकीर्ति के पादाराधक, कुनेरसदृश अतुल पेश्वर्यशाली तथा अनेक सुपात्रों के पोषक पायस्य श्रेष्ठी, नेमिचन्द्र को व्रतगुरु एवं विद्यानन्द को शिष्यागुरु माननेवाले नागस्य श्रेष्ठी और इनके पिता तम्मराण श्रेष्ठी, आयुर्वेद-मर्मज्ञ, देवेन्द्र के अनुज, नंजराय नृप से अतुल पेश्वर्य को पानेवाले, पण्डित देवरस के पुत्र एवं गोविन्दराज-प्रशंसित विजयस्य, चेश श्रेष्ठी की दौहित्री, नेमिनाथ चैत्यालय के सामने लोहमानस्तम्भ बनवानेवाली देवरसी, बगिच-प्रवर, महादानी, दुम्भूर में जिनमन्दिर बनवाने वाले वोम्मण श्रेष्ठी, पायि श्रेष्ठी के पुत्र वेश्यातटाक (?) एवं पोम्बुच्च में एंचवस्ति निर्माण करनेवाले पायगण, सालुव महिराय के शास्त्र-विद्यागुरु, साहित्य-विद्यार देवरस तथा विजया के पुत्र, सालुव देवराय के आस्थान-कवि और विद्यानन्दि-शिष्य वोम्मरस आदि विख्यात श्रेष्ठी पद श्रेष्ठी-महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(३६) ग्रन्थ नं० २५५  
ख

## सारसंग्रह

कर्त्ता—विजयराण उपाध्याय

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ११ इंच

चौड़ाई ६।।। इंच

पत्रसंख्या २३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीप्रञ्चालुनिकायाप्रखन्नरवरं नृत्यसंगीतकीर्तिम्  
 न्यामा.....जालं सुरपट्टहादिसत्प्रातीहार्यम्  
 नत्वा श्रीधीरनाथं भुवि सकलजनारोग्यसिद्ध्यै समस्तै-  
 रायुर्वेदोक्तसागैरिहप्रमल(?) महासंग्रहं संलिखामि ॥

×

×

×

मध्य भाग—

अथातः संश्वश्यामि तिथीशवलमुत्तमम् ।

प्रथमायां तिथौ व्याधिर्नृपन्नश्चेत्तादाहतः ॥

मालवेन्द्र से सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रराजिपितामह गण्डविमुक्त, अनेक राजाओं से  
 भवित अभयवद्र, देवपार्य के पुत्र, अभयचन्द्र सूरि के शिष्य पय विजयनगर के देवराय-  
 सम्मानित नेमिचन्द्र, विजयनगर के देवराय के श्याति प्राप्त आस्थान-कवि मेम्मडि मर्द,  
 नरसिंहनृपति द्वारा प्रशस्ति पण्डितार्य, कल्याणनाथ के पुत्र स्याज महाराज क आस्थान-  
 विद्वान् अभयवद्र सूरि, महिराय के हृदयरूपी कमल की विरचित करनेवाले आदिनाथ,  
 पेशपुर के भयों के द्वारा भवित, तँ छत्राधीश बन्ध समन्तभद्र, अनेक गुणाल पृष्ठ, माल्य  
 महिराय के शास्त्र विद्यागुरु देवरत्न सूरि, इनके पुत्र अनेक गुणभूषित सार्वदेवराय के  
 आस्थान रत्न पय विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस आदि आचार्य, कवि, विद्वान् तथा विदुषियाँ,  
 देवराय, वृष्णराय, रामराय, वृष्णराय के भाई, रगराय के पुत्र पय नृसिंह के नाती  
 सदाशिव, पाण्डुराज की महिषी जिनमला भैरवाम्बा, मगिराय की भगिनी पमाम्बा,  
 मानुनायक के पुत्र और सगीतनगर (हाडुहळिळ) में प्रशि श्रेष्ठी के द्वारा निर्मापित विनालय  
 को ताम्रपत्र में आच्छादित करनेवाले सातुय नायक, जिन मन्दिर निर्माता कामराय और  
 देवरस, महान् धीर पर्यं गुणगणालंकृत होत्रय नायक, सम्भक्तबचूडामणि, सातुय वृष्णदेव  
 राय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति निपुण दैवण नायक, विद्वाना क शिष्य कलतरक  
 तुल्य और वृष्णदेवराय के दक्षिण हस्त तिम्भ नायक, वेल्गाय के शासक, महाम्मु लुम्पण  
 आदि राजा, महाराज, सामन्त पय राज महिषियाँ, विद्यानन्द के निकट दर्शनशास्त्र को  
 अभ्ययन करनेवाले, सगीतपुर के सातुवेन्द्र भूपाल के आस्थान-भूषण, वैयाकरण और  
 महावादी मन्ना वेतरस, प्रधानतिलक, देवराय के दुर्गपति से सम्मानित सुकवि तथा धृत  
 कीर्ति के शिष्य मन्नी जैतरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नापरस विद्वान्य शासक के  
 द्वारा रचित, मन्नी देवरत्न, महिकानुन राय के महामन्त्री महत्प्य नायक, सत्यवादी, सातुय  
 महिराय के मन्त्रिप्रवर पय धीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यैभव सङ्करस वेवराय  
 पट्टण सम्बन्धा राजमल्लमा के सम्बर्द्धक तथा मन्त्रिश्रेष्ठ नेमिचन्द्र, अभयराजिपत्तन (१)  
 मुकुन्द, महान् धीर, अमात्यश्रेष्ठ गुम्भय, राजसभाभा म सम्मानित, बोम्मरस के लघुप्राता  
 सामभूपाल के मन्त्रितिलक नेवरस आयुर्वेद विज्ञान, धीरपृथ्वीश सचिव धरणि पण्डित,  
 मन्त्रिशेखर पद्मराज श्रेष्ठी, रामराज क अमात्य सरणमरि नायक, देवि श्रेष्ठी के पुत्र चेला  
 दरा के भक्त पय महापराक्रम, मन्वीश तिम्भ श्रेष्ठी, कोसिंजाली, लोकविख्यात पय धरणीश  
 प्रदत्त सौभाग्य दण्डनाथ चैसप्य, करणिक-तिलक आदिनाथ आदि मन्त्री, महामन्त्री,  
 दण्डनायक रुशणिक, विजयनगर पय तँ छत्रशासकों के द्वारा सम्मानित, वीरसेन और  
 मुनि विद्यानन्द के वरणसेवक, सिद्धसेव्य पय विद्वानों के आश्रयदाता, सतुरा-दत्त, साहित्य-  
 कोषिद् पर्यं टकसाला के अभ्यक्त बोभि श्रेष्ठी, देवराय की ममा म श्रेष्ठी पद की सुशोभित

करनेवाले, विख्यात दानी और धर्मभूषण के शिष्य सङ्कल्प, विजयकीर्ति के पादाराधक, कुवेरसदृश अतुल पेश्वर्यशाली तथा अनेक सुपात्रों के पोषक पायण्य श्रेष्ठी, नेमिचन्द्र को व्रतगुरु एवं विद्यानन्द को शिक्षागुरु माननेवाले नागण्य श्रेष्ठी और इनके पिता तम्मरण्य श्रेष्ठी, आयुर्वेद-मर्मज्ञ, देवेन्द्र के अनुज, नंजराय नृप से अतुल पेश्वर्य को पानेवाले, पण्डित देवरस के पुत्र एवं गोविन्दराज-प्रशंसित विजयण्य, चेल श्रेष्ठी की दौहित्री, नेमिनाथ चैत्यालय के सामने लौहमानस्तम्भ बनवानेवाली देवरसी, वणिक्-प्रवर, महादानी, दुग्गूरु में जिनमन्दिर बनवाने वाले वोम्मण श्रेष्ठी, पायि श्रेष्ठी के पुत्र चेश्यातटाक (?) एवं पोम्बुच्च में पंचवस्ति निर्माण करानेवाले पाथरण्य, सालुव मल्लिराय के शास्त्र-विद्यागुरु, साहित्य-विद्यावर देवरस तथा विजया के पुत्र, सालुव देवराय के आस्थान-कवि और विद्यानन्दि-शिष्य वोम्मरस आदि विख्यात श्रेष्ठी पद श्रेष्ठि-महिलायें विशेष उल्लेखनीय हैं ।

(३६) ग्रन्थ नं० २५५  
ख

## सारसंग्रह

कर्ता—विजयराण उपाध्याय

विषय—वैद्यक

भाषा—संस्कृत

लग्नाई १२ इञ्च

चौड़ाई ६ ॥ इञ्च

पत्रसंख्या २३८

प्रारम्भिक भाग—

श्रीमञ्चातुनिकायाप्रखचरवरं नृत्यसंगीतकीर्तिम्  
-व्याप्त .....शालं सुरपटहादिसत्प्रातीहार्यम्  
नत्वा श्रीवीरनाथं भुवि सकलजनारोग्यसिद्धयै समस्तै-  
रायुर्वेदोक्तसारैरिहममल(?) महासंग्रहं संलिखामि ॥

×

×

×

मध्य भाग—

अथातः संश्रवक्ष्यामि तिथीशवलमुत्तमम् ।

प्रथमायां तिथौ व्याधिरुत्पन्नश्चेत्तादृशः ॥



मान्येन्द्र से सेवित माणिक्यनन्दी, मन्त्रादिपितामह गण्डरिमुल, अनेक राजाओं से  
 भविष्य भ्रमयचन्द्र, देवराय के पुत्र, भ्रमयचन्द्र मूरि के शिष्य पर विजयनगर के देवराय  
 सम्मानित नेमिचन्द्र, विजयनगर के देवराय के श्याति प्राप्त भास्यान-कवि भेम्मडि भट्ट  
 नरसिंहनपति द्वारा प्रगमित पण्डितार्थ, कल्याणनाथ के पुत्र सात्व महाराज के भास्यान-  
 विद्वान् भ्रमयचन्द्र मूरि, महिषाय के इन्द्ररूपी कमल को विकसित करनेवाले भदिनाथ,  
 वेणुपुर के भय्यां के द्वारा भविष्य, तंळराधीन वन्द्य समन्तमड, अनेक गुणालंकार, सात्व  
 महिषाय के शास्त्र विद्यागुरु देवरम मूरि, इनके पुत्र अनेक गुणभूषित सात्वदेवराय के  
 भास्यान-रत्न पर विद्यानन्द के शिष्य बोम्मरस भाद्रि भाचार्य, कवि, विद्वान् तथा विदुषियां,  
 देवराय, वृष्णराय, रामराय, वृष्णराय के भाई, रंगराय के पुत्र एवं नृसिंह के नाती  
 सदाशिव, पाण्ड्यराज की महिषी जिनमत्ता भैरवाम्बा, मंगिराय की मंगिनी पद्मम्बा,  
 मानुनायक के पुत्र और मगोतनगर (हाडुहळिळ) में प्रलि धेष्टी के द्वारा निर्मापित विनालय  
 को ताम्ररत्न से आच्छादित करनेवाले सालुव नायक, जिन-मन्दिर-निर्माता कामराण और  
 देवरम, महान् धीर एवं गुणगणालंकार होत्रय नायक, सम्पत्तचचूडामणि, सालुव वृष्णादेव  
 राय से सम्पत्ति को पानेवाले तथा नीति-निपुण देवराय नायक, विद्वानों के शिष्य कल्याण-  
 तुंग और वृष्णदेवराय के वलिण हस्त तिमम नायक, वेल्पाये के शासक, महाम्मु लुम्पण  
 आदि राजा, महाराज, सामन्त परं राज महिषियां, विद्यानन्द के निकट दुर्गेशाल को  
 अध्ययन करनेवाले, सर्गातपुर के सालुवेन्द्र भूपाल के भास्यान-भूषण, बैशकरण और  
 महायात्री मंत्रां चेतारस, प्रधानतिलक, देवराय के दुर्गपति से सम्मानित मुकरि तथा धृत-  
 कीर्ति के शिष्य मंत्री जैतरस, सौजन्यरत्नाकर, मन्त्रितिलक नागरस, विद्याय शासक के  
 द्वारा रक्षित, मंत्री देवरम, महिकाजुन राय के महामन्त्री मह्य नायक, सत्यवादी, सालुव  
 महिषाय के मन्त्रिप्रवर पर धीर नृसिंहराय के द्वारा प्राप्त भाग्यवैभवं महारम, चन्द्रराय  
 पट्टण-सम्बन्धी राजलक्ष्मी के सम्बर्द्धक तथा मन्त्रिधेष्ट नेमिचन्द्र, भ्रमयरादिपत्तन (?)  
 मुकुन्द, महान् धीर, अमात्यधेष्ट गुम्पय, राजसमाभा में सम्मानित, बोम्मरस के लघुपुत्राता,  
 सोमभूपाल के मन्त्रितिलक देवरस, आयुर्वेद-विगारद, धीरपृथ्वीश सचिव धरणि पण्डित,  
 मन्त्रिगौर परमेश्वर धेष्टी, रामराज के अमात्य सणमरि नायक, देवि धेष्टी के पुत्र, चैत्रा  
 देवी के भक्त एवं महापराय, मन्त्रीश तिमि धेष्टी, कांसिंशाली, लोकविख्यात पर धरणीश-  
 प्रदत्त सौभाग्य द्युडनाथ वैचय्य, करणिक-तिलक भादिनाथ आदि मन्त्री, महामन्त्री,  
 द्युडनायक, करणिक, विजयनगर पर तंळवशासकों के द्वारा सम्मानित, धीरसेन और  
 मुनि विद्यानन्द के वरशमेवक, विद्वत्सेव्य परं विद्वानों के भाध्यदाता, चतुरग-दत्त, साहित्य-  
 कोविद् एवं एकसाला के अत्यन्त योगिन धेष्टी, देवराय की ममा में धेष्टि-पद को सुशोभित

एवं सुन्दर रूप में प्रकाशित करने की ओर जैन वैद्यों का ध्यान अवश्य आकृष्ट होना चाहिये। भवन की प्रति इस समय में स्तम्भ नहीं है। भवन की यह प्रति भवन की ओर से 'भास्कर' में क्रमशः प्रकाशित 'द्वैधसार' में इस ग्रन्थगत पृथ्वीपाद के प्रयोगों को संकलित कर देने के लिये उक्त वैद्यसार-संग्रह के सम्पादक के पास भेज दी गयी है। इसी से इस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका।

(४०) ग्रन्थ नं० २५६  
ख

## हरिवंशपुराण

कतां—श्रुतकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

लम्बाई १३। इञ्च

चौड़ाई ८। इञ्च

पलसंख्या ३१५

प्रारम्भिक भाग—

ससिद्धाद्योमसिद्धं ते हरिवंसिद्धं पावतिमिरहा विमल्यरि गुणगणजसभूसिय तुरयथइ  
सिया सुव्ययणेमिय हलिय हारि ॥३॥ सुरवइतिरोडरयगांकिरणंदुयपवाहसित्तगहचलगां  
पणविवि तं परमजिणां हरिवंसकयत्तणां बुद्धे। हरिवंसु पयोरुहु अइरवण इह भरह-  
वित्तसरवरउवण, तह णाल्लसुकुलणिवणिग्रत्तंगु तं डियउ मणोहक भाइ चंगु, तहकणिय-  
सउणायणिवदसार कुसुमसरपमुहकेसरिकुमार, पंडवजायवभोजयगारेसा ते पत्तमणोहरणिरव  
सेसा, जरसिद्ध द्रुवण तहु गिसिसमाण कौवगिन्देमु जंमरइमाण, तं योमिहलीहरि-  
किरउजोय, सोविलयपत्तु इहमव्वलोय, परसंताविरु पुण अवरुत्ताइ धरयद्वियरावणायमुहराइ,  
हरिवंसु कमलु वियसिउ विसेसा तहु कित्तिसुरहिअलिमहिणारेसा, दुक्किय सोहइ सेविजमाण  
णिसि सामिउं जं उडगणसमाण, तहु कित्तण महु उल्लसइ चित्तु संकमिदायारहुकड्वित्तु,  
पारंभमि जइ हारिवंसु अज्ज णिद्धण कह हुंति अभिट्टकज्ज, जइ महु पसियंतु तिलोयणाह  
'रिसहाइवीर असरणासणाह ॥ वत्ता ॥ डियगांतचउट्टहु महुमइ भट्टहु देहु सुमइ पहु गित्थरमि  
सरसइं सुपसायइं मणि अणुरायइं जिमि हारिवंसु पवित्थरमि ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०२ पंक्ति ५) —

जिणवर चउरीसह पणमिय सीसह चउदिसु गियनसु विल्धरप जिम कसु उवयणउ  
 णिउ अमणयणउ उग्गसेणघघणुकरप ॥ रायधम्मवहुसच्छहु लक्खणु पयडह तह वसुपउ  
 वियम्बणु असिररघणुहवाणगुणमेयइ मुग्गल्लुरिकाचक्रअण्येयइ, हयगयरहिवर ज वाहि  
 ज्जहि धागराग कसअकुसविज्जहि, अररवयरिरणजिण्यणुहेयइ पुद्धिउ उवपसइ इयमेयइ, जे  
 गित्थह खड कम्म मणुणणइ तं उवपसु करइ अणुणइ, पडिम पयदह सावयधम्मइ  
 वसणपमुहउ देसइ रम्मड, धम्मकाणइ य कालु गमतउ पुरपरियणु पिय मणु रजतउ पत्थतरि  
 तह कसु परायउ चल्ण णवेइ वित्तअणुणायउ, सामिय तत्र मिच्चलणु ईहमि आउहु विज्ज  
 सिंसणु समोहमि, ता वसुपर उत्तु अद्धिज्जइ विणविण विजाभासु करिज्जइ धणुगुण  
 वाणविहाण अण्येयइ ते वसुपय कहिय वहुमेयइ असिवरमुग्गल्लुकुतविहाणइ माल्लुम  
 पाइकविणणणइ ॥ घत्ता ॥

×

×

×

×

अन्तिम भाग —

जह कमेण सुयणाणि उद्धिणणइ भगअंगदेसइ घरअणइ पचमकालचलणपादमिल्लइ तह  
 उवण जापरियमहल्लइ कुइकुइगणिणाअणुकम्मइ जायइ मुण्णिगणविधिहसइमइ गणवालतवागे  
 सरिणइ णदिसघमणहरमइसुइर पहाचदगणिणा सुदपुणणइ पोमण दि तह पट्टउणणइ  
 पुण सुभवइदेवकमजायइ गणि जिणचद तहयविन्खायइ विजाणदि कमेण उवयणइ सोलवत-  
 वहुगुणसपुणणइ पोमणविसिसकमिण ति जायइ जे मडलायरिय विन्खायइ मालवदेस धम्म  
 सुपयासणु मुण्णिविदकित्ति मिउभासणु तह सिंसु अमियवाणि गुण णरउ तिहणकित्तपवो-  
 हणसारउ तह सिंसु सुइकित्ति गुरभत्तउ जहि हरिवसुपुराणु वउत्तउ मङ्गरउकिउउद्धिणिही  
 णउ पुव्वयिरिहि वयणपयलीणउ अयउद्धिबुहदोसुप लिल्लउ ज असुदधु त सुदधुकरिध्वउ पयइ  
 सयलगघ सुपमाणहु तेरसद्धसइसइ बुह जाणहु । सयत्तु विक्रमते गणरसह सहसुपवसय  
 वायणसेसह मंडउगडुवर मालवदेसइ साहिगयासु पयाव असेसइ णयरजेरहइजिणहव जगउ  
 येमिणाइजिणाविउ अमगउ मधुसउणणु तत्थ इहु जायहुउ वउविहु ससुणि सुणि अणुणायउ  
 माघकिणहपचमिससिवारइ हत्थयाखत्तसमणुगुणालइ मधु सउणु जाउ सुपवितउ कम्मर  
 कयणिसित्तउत्तउ पदहि सुणहि जे भावण भावहि पयडअङ्गभराहु णिसुणावहि तह  
 सम्मत्तरयणवरलाइइ सम्गपग्गमअचलसुह साइहि ॥ घत्ता ॥ हरिवसुपुराणु तिजपपहाणुइ  
 भाउ करियि जेसइहहि सियपुत्तकलत्तइ लाइमहत्तइ सम्गपग्गणु पुणु लहहि ॥१८॥ दुवई ॥  
 वीरजिणंदचलया पयावेणुणु जिणसासण महत्तहो विसउ समाहिसतिमच्चयणह धम्मणुणाय  
 रत्तहो ।

इय हरिवंशपुराणो मयाहरेस्वरयपुरिसगुणालंकारकलाणो तिरुवशाक्तिसिस्वशय-  
सुदमुदकित्ति महाकव्यु विरयंतो नाम सइंतालिसत्तिमो संधियरिच्छंओ समत्तो ॥

निवनियरुकेसुरट्टो जयसिरिधम्माराणुउ मणिहिद्धो नंदउ जयानउपवरो तुहसंपइरण-  
कणयरो ॥१॥ चउधिहमुणितगासहिओ नंदउ सिरिजंदिंसुंनु सुग्महिओ नंदउ जयसिरिनुत्तो  
सावयगाणु धम्मअणुत्तो ॥२॥ हरिवंशगयगाचंदो जह दंमणसयलभुवरा आगांदो  
तयलोयसुजसुपवरो नेमिजिणो भवियदुरियहरो ॥३॥ रिस्सहु अज्जिउ संभउ जिगांहु  
अभिणंदणु सामिउ सुमतिपहमुणु पुणु मुपाणु ससिपणुसियगामिउ सुधिहु सुसोयलु  
पुणु सिंधंमु वसुपुज्जु गुणोहफ विमल गांनु पुणु धरमसंतिसंनुयइं कंधु अरु महिसुसुव्वउ  
नमिसुनेमिजिणु पाणु पहागाइं वीरसहियभवियगाणु देति सिरिजंति सभागाइं । सिद्धि  
संवत् १५५३ वर्षेकृत्यदि २ वज्रगुरौ दिने अयोह श्रीमगडपाचलगढदुर्गे मुळितान गयासदीन  
राज्ये प्रवर्तमाने श्रीदमोवादेशे महाखानभोजखानवर्तमाने जेरहट्टरयाने सोनीश्रीदिसुरप्रवर्तमाने  
श्रीमूलसंधे बलात्कारगणो सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपन्नन्दिदेव  
तस्य शिष्य मण्डलाचार्यदेविदकीसिंदेव तल्लिष्य मगडलाचार्य धीविभुवनकीर्त्तिदेवान् तस्य  
शिष्य श्रुतकीर्त्ति इदं हरिवंशपुराणं परिपूर्णं कृतम् । भव्यजनपठनार्थं ज्ञानावरणफर्मक्षयार्थं  
श्रीपार्श्वनाथचैत्यालये श्रीचतुर्विंशतितीर्थकरं परमभक्त्या प्रणम्य तथा श्रुतगुरुभक्तिपूर्वकं  
नमस्कृत्य ग्रन्थस्य अविघ्नसमामिनिमित्तम् ।

इस हरिवंशपुराण के रचयिता यज्ञःकीर्त्ति ने अपने को श्रीमूलसंवक्षे, बलात्कारगण  
एवं सरस्वतीगच्छ के प्रातःस्मरणाय आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा में बतलाया है । आप  
के प्रगु मण्डलाचार्य देवेन्द्रकीर्त्ति और गुरु मगडलाचार्य भुवनकीर्त्ति हैं । कुछ विद्वानों  
का खयाल है कि धर्मशार्माभ्युदय के टीकाकार यज्ञःकीर्त्ति और आप एक ही हैं । परन्तु  
यह धारणा भ्रान्त है । क्योंकि धर्मशार्माभ्युदय के टीकाकार यज्ञःकीर्त्ति ललितकीर्त्ति  
के शिष्य हैं, आप भुवनकीर्त्ति के ।

इस ग्रन्थ के अन्त में दो प्रशस्तियाँ दी गयी हैं । पहली अपभ्रंश भाषा में एवं दूसरी  
संस्कृत में । पहली प्रशस्ति में लिखा है कि यह ग्रन्थ वि० सं० १५५२ माघकृष्ण पञ्चमी  
सोमवार मालवदेशान्तर्गत मंगडवगडु में, शाहि गयासुदीन के शासन-काल में जेरहट्ट नगर  
में समाप्त हुआ । दूसरी प्रशस्ति में लिखा है कि सिद्धि संवत् १५५३ आश्विन कृष्ण  
द्वितीय को मगडपाचलगढ दुर्ग में, सुलतान गयासुदीन के राज्यकाल में, दमोवादेश में,  
महाखान-भोजखान की मौजूदगी में जेरहट्ट नगर के पार्श्वनाथ जिनालय में यह ग्रन्थ परिपूर्ण

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०१ पक्ष ५) —

विश्वेश्वर घटशीलर पणमिय सोमर घटविसु विपयसु विन्धरध त्रिम कसु उपयगत  
 गिउ भमणुगणउ उमाभगधधणुकरय ॥ रायधम्मवहुमच्छु लकखणु पयडइ तह वसुपउ  
 विपयसणु भमियरधणुधवाणगुणभेयई मुमागुणिकावउअणुणेयइ, हदगयरदिवर अं वाहि  
 अहि वागदाग कमअंइमदिअहि भयरउपरिउणप्रियणदेयइ दुद्धिउ उरयणइ इयभेउ, जे  
 गित्यइ उउ कम्म मणुगणइ तं उयणु करइ अणुणइ, पडिम ययवई सायधम्म  
 वसनपसुहुउ दमइ रम्मइ, धम्ममाणाइ य काउ गमंतउ पुरपरियण पिय मणु रंजतउ धयतोर  
 तह कसु पयाउ धयण शयेइ विसमणुगयउ, मामिय तय भियतणु इहमि अउडु विउ  
 सिसत्तु समीहमि, ता वसुपय उत भद्विअइ दिगदिण विजामणु करिअइ धणुगुण  
 वाणविहाण भणयइ ते वसुपय कहिय वहुभेयइ भसियरमुणालकृतविहाणइ माल्लुभ  
 पाइकविणायइ ॥ घत्ता ॥

x x x x

\* तम भाग —

अइ कमेण सुयणाणि उद्धिगणइ भगअंगदमइ धरअणइ पचमकालचलणपाडमित्तइ तह  
 उयण भायत्पिमहत्तइ कुंइकुंइगणिगाभणुकम्मइ आयइ मुणिगणयिविहमइमइ गणवाल्लवाणे  
 सतिगद्धइ यदिसधमणहरमइसुअइ पहावइगणिगा सुअुयणइ पोमण दि तह पडउवणइ  
 पुणु सुभउइदेयकमआयइ गणि त्रिणवइ तहयविअतायइ विजाणयि कमेण उयणइ सालवत-  
 वहुगुणसपुणणइ पामणदिमिनइमिण ति आयइ जे मडलायरिय त्रिस्त्रावइ मालउदस धम्म  
 सुपयासणु मुणिदेविअकित्ति मिउमासणु तह मिसु भमियगणि गुण गउउ तिहवणकित्तग-  
 हणसारउ तह सिसु सुदविणि गुरमत्तउ अहि हदिवसुपुराणु पउत्तउ मद्धउमित्तुद्धिविही  
 णउ पुज्यविदिहि वयणपयलीणउ अणवुद्धिवुद्धोसुय लिच्चउ अ मसुअुधु त सुअुपुकरिअउ पयइ  
 सयत्तांघ सुपमाणहु तरमडसहसइ बुइ आणहु । मवतु विअममे गणरमइ सहसुपचमय  
 वायणनसइ मंडगणुवर माल्लवइसइ साहिगयासु पयाइ अमेसइ गयरजेरइइविणइइवगउ  
 येमिणाइत्रिणाविधु अमणउ गधुमउयणु तत्य इहु वायहुउ चउमिहु ससुणि सुणि अणुरायउ  
 मायकिणुपअमिससिगरइ हत्वयाअत्तममसुगुणालर गधु सउणु पाउ सुपचितउ कमर  
 कयशमित्तउत्तउ पदहि सुणहि जे भायण भावहि पयडवद्धमराहु गिसुणावहि तह  
 सम्मत्तरयवाथरलाहइ सम्पपयअचलसुह साहहि ॥ घत्ता ॥ हदियसपुरायाहु तिनयहायाहु  
 भाउ कदिवि जेसइहहि सियपुत्तकणपर लाइमहत्तइ सम्पपयमार पुणु लहहि ॥१८॥ दुयइ ॥  
 धीरत्रिणांइचलया पयावियणु त्रिणसासण महत्तहा दिमउ समाहिमतिमध्ययाह धम्मणुराय  
 रत्तहो ।

## रामपुराण

कतां—सोमसेन

विषय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च

चौड़ाई ७ इञ्च

पत्रसंख्या २४६

प्रारम्भिक भाग—

वन्देऽहं सुव्रतं देवं पञ्चकल्याणनायकम् ।  
देवदेवादिभिः सेव्यं भव्यवृन्दसुखप्रदम् ॥१॥  
शेषान् सिद्धान् जिनेान् सूरीन् पाठकान् साधुसंयुतान् ।  
नत्वा वरुणे हि पद्मस्य पुराणं गुणसागरम् ॥२॥  
वन्दे वृषभसेनादीन् गणाधीशान् यतीश्वरान् ।  
द्वादशाङ्गं श्रुतं यैश्च कृतं मत्तस्य हेतवे ॥३॥  
वन्दे समन्तभद्रान्तं श्रुतसागरपारगम् ।  
भविष्यत्समये योऽन्न तीर्थनाथो भविष्यति ॥४॥  
कुन्दकुन्दं मुनिं वन्दे चतुरं गुणाचारणम् ।  
कलि-काले कृतं येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु ॥५॥  
आचार्यं जिनसेनाख्यं वन्दे ग्रन्थस्य सिद्धये ।  
सिद्धान्तत्रयकर्त्तारं मोक्षमागोपदेशकम् ॥६॥  
पूज्यपादप्रभाचन्द्राकलंकादीन् यतीश्वरान् ।  
नमामि धर्मतीर्थस्य कर्त्तृन् प्राणिहितङ्करान् ॥७॥  
रविपेणं महाचार्यं वन्दे शास्त्राधिपारगम् ।  
यत्प्रसादात्करोम्यन्न पुराणं रामसंज्ञकम् ॥८॥  
गुराभद्रं यतिं वन्दे सर्वजीवदयापरम् ।  
महापुराणकर्त्तारं क्षातारं सर्वसंचिरम् (?) ॥९॥  
चाण्कीप्तिमुनीन्द्रं च वन्दे श्रेष्ठार्थसिद्धिदम् ।  
समाधिशीलसम्पन्नं हिताहितोपदेशकम् ॥१०॥

हुमा। समय में नहीं जाता है कि इन प्रशस्तियों में ग्रन्थ-समाप्ति के काल के सम्बन्ध में ऐसा मतभेद क्यों हुआ? यह लेखक की भी मूल नहीं मानी जा सकती। क्योंकि दोनों सभ्यताओं में मास, तिथि भादि भी भिन्न भिन्न की गयी है। क्या इनमें से स० १५५२ को ग्रन्थ-प्रारम्भकाल एवं स० १५५३ को ग्रन्थ समाप्ति-काल माना जा सकता है? अगर प्रशस्तियों से स्पष्टतया इन बातों की सूचना नहीं मिलती है। ऐसी अवस्था में इसका निर्णय और और प्रतियों की छान बीन से ही किया जा सकेगा। साथ ही साथ इस बात का भी पता लगाना है कि जेरहट का वर्तमान नाम क्या है और पहली प्रशस्ति में मालवदेश और दूसरी प्रशस्ति में दमोवा देश कैसे लिखा गया। सुना है कि वर्तमान सागर जिला में भी जेरठ नामक एक प्राचीन स्थान है। मण्डलगड या मण्डपाचलगड वर्तमान मेवाड़ राज्यांतर्गत 'मांडल गढ़ का किला' ही मालूम होता है। शाहि या सुल्तान गयासुद्दीन भी खिलजी वंशज गयासुद्दीन ही छात होता है, जो कि १५ वीं शताब्दी में गुजरात में शासन करता था। क्योंकि भद्रमेर पर मुसलमानों का अधिकार होने पर यह किला भी उनके हस्तगत हो गया था।

दूसरी शुद्ध प्रति मिलने पर भ्रम है कि इन दो प्रशस्तियों की बातों पर मैं कुछ विशेष प्रकाश डाल सकूँ। भ्रम की यह प्रति बहुत अशुद्ध है। 'विगमर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थ-तालिका में निम्नलिखित ग्रन्थ भी हरिवंशपुराण (पाहत) के कर्ता यश कीर्ति के बतलाये गये हैं—

(१) पाण्डवपुराण (पाहत) (२) गौतमचरित्र (३) प्रबोधसार (४) जगत्सुन्दरी (५) शृङ्गारार्णवचन्द्रिका (६) धावकाचार (७) धर्मशर्माभ्युदय की टीका (८) प्रद्युम्नकाव्य की टीका। परन्तु इनमें जगत्सुन्दरी, शृङ्गारार्णवचन्द्रिका एवं धर्मशर्माभ्युदय की टीका तो इनकी हैं ही नहीं। क्योंकि जगत्सुन्दरी के कर्ता यश-कीर्ति विमलकीर्ति के शिष्य हैं। शृङ्गारार्णवचन्द्रिका के कर्ता विजयवर्षी हैं, न कि यश-कीर्ति। धर्मशर्माभ्युदय के टीकाकार ललितकीर्ति के शिष्य हैं—यह बात ऊपर लिख चुका है। गौतमचरित्र एक प्रकाशित हो चुका है। पर इसके कर्ता धर्मचन्द्र हैं। शोलापुर से एक प्रबोधसार भी प्रकाशित हो गया है, इसके कर्ता महापण्डित यश-कीर्ति बतलाये गये हैं। प्रशस्ति नहीं होने से यह कहना कठिन है कि यह यश-कीर्ति यही हैं या दूसरे। इसी प्रकार शेष कृतियों को भी बिना देखे इन्हीं का कहना ठीक नहीं है।

\* देखें—'भनेकान्त' पृ २, विरण १२, पृ ६५।

† देखें—'प्रशस्तिग्रन्थ' पृ ५३।

# रामपुराण

कतां—सोमसेन

पिय—पुराण

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इञ्च

गौडाई ७ इञ्च

पलसंख्या २४६

प्रारम्भिक भाग—

घन्देऽहं सृष्टतं देवं पञ्चकल्याणनायकम् ।  
देवदेवादिभिः सेव्यं भव्यचृन्दमुखप्रदम् ॥१॥  
शेयान् सिद्धान् जिगान् खुरीन् पाठकान् साधुसंयुतान् ।  
नत्वा घश्ये हि पद्मस्य पुराणं गुणासागरम् ॥२॥  
घन्दे घृपभसेनादीन् गणाधीशान् यतीश्वरान् ।  
ढादशाङ्गं श्रुतं यैश्च कृतं मत्तस्य हेतवे ॥३॥  
घन्दे समन्तभद्रान्तं श्रुतसागरपारगम् ।  
भविष्यत्समये योऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ॥४॥  
कुन्दकुन्दं मुनिं घन्दे चतुरं गुणाचारगम् ।  
कलि-काले कृतं येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु ॥५॥  
आचार्यं जिनसेनाख्यं घन्दे ग्रन्थस्य सिद्धये ।  
सिद्धान्तत्रयकर्तारं मोक्षमार्गोपदेशकम् ॥६॥  
पूज्यपादप्रभाचन्द्राकलंकादीन् यतीश्वरान् ।  
नमामि धर्मतीर्थस्य कर्तृन् प्रागिहाहितङ्करान् ॥७॥  
रविपेणं महाचार्यं घन्दे ज्ञात्राग्निपारगम् ।  
यत्प्रसादात्करोम्यत्र पुराणं रामसंज्ञकम् ॥८॥  
शुभाभद्रं यतिं घन्दे सर्वजीवदयापरम् ।  
महापुराणकर्तारं ज्ञातारं सर्वसंचिरम् (?) ॥९॥  
चारुकीर्त्तिमुनीन्द्रं च घन्दे श्रेष्ठार्थसिद्धिदम् ।  
समाधिशीलसम्पन्नं हिताहितोपदेशकम् ॥१०॥



यन्देश्च भानुमुखाय त्रिफालं योगमुनिवत् ।  
 सन्ध्यातमुरीन्द्रैश्च मन्त्रपादश्च योऽमथन् ॥११॥  
 महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रो नमामि कलिशरणां ।  
 ययो पादान् प्रसेवन्ते यत्पादितरुपुंगवाः ।  
 सरस्वतीं नमाध्यात्री विनेन्द्रमुग्रमभंगाम् ।  
 द्वादशाङ्गस्तुष्टिकर्ता श्रीरस्थानसुग्रवशाम् ॥१३॥  
 × × ×

मध्य भाग (परपृष्ठ १२५, पंक्ति ६) —

धनुर्भासेऽथवा ताने गते श्वन्नादिविहारे ।  
 समं गर्तुं समुष्कं दृष्ट्वा यज्ञो यदत्परम् ॥१॥  
 क्षन्तव्यं देव विशिषाविनपाद् दुष्टत मया ।  
 मगदृर्गा नरागाञ्च (?) कं शक्नोतीह सेवितुम् ॥२॥  
 ततो जगाद् रामाऽपि नमोभूतं मुराधिरम् ।  
 यत्रपरायमस्माकं क्षन्तव्यं च त्वया सुर ॥३॥  
 इति धचनमावश्यं मन्तुषो यज्ञनायकः ।  
 नन्या म्नुत्या ध तं रामं पुत्रनिस्म सुभक्तित ॥४॥  
 स्वयं प्रमादिव हार दृष्टो रामाय भंगवः ।  
 कुमाइले लक्ष्मणाय ह्ये शशिभूर्पुत्रमममे ॥५॥  
 × × ×

अन्तिम भाग :—

विव्रमस्य गते शक्ते वोद्वन्द्वनप्रयंके ।  
 पृथ्वज्ञानममायुने मामे धारणिके तथा ॥  
 शुभ्रपत्रे जयोदया सुषयारे शुभे द्विते ।  
 निष्कन्तं धरितं रम्यं रामवन्द्यस्य पावनम् ॥  
 महेन्द्रकीर्तियोगीन्द्रमन्त्राय ह्येन मया ।  
 सोममेतेन रामस्य धरितं पुण्यदेवये ॥  
 धनुक रविपेयोव पुत्राने विमताडरम् ।  
 तदेवात्र च गच्छत्य धत्तिक्रियन्धरिणं मया ॥  
 गौरा न ह्येनं शक्यं नापि कीर्तित्त्यागरे ।  
 केवलं पुण्यहेत्यर्थं मनुजा रामगुणा मया ॥

नाहं जानामि शाखाणि न ह्यन्दो न च फाव्यकम् ।  
अथापि च धिनोदेन कृतं रामपुराणाकम् ॥  
ये सन्ति सुधियो लोके शोधयन्तु च ते मम ।  
शास्त्रं परीपकाराय यत्कृतं ब्रह्मणा भुवि ॥  
कथामात्रस्य पत्रस्य वर्तने वर्णनां विना ।  
अस्मिन् ग्रन्थे तु भो भवशः शृण्वन्तु सावधानतः ॥  
रघिपेगाकृते ग्रन्थे कथा यावत्प्रवर्तते ।  
तावद्य सकलात्रापि वर्तते वर्णनां विना ॥  
विस्तारकथयः शिष्याः ये सन्ति शुद्धमानसाः ।  
ते शृण्वन्तु पुराणं हि रघिपेणस्य निमित्तम् ॥  
रघिपे त्रिपये रम्ये जित्वरे नगरे घरे ।  
मन्दिरे पार्श्वनाथस्य सिद्धो ग्रन्थः शुभे दिने ॥  
सेनगणोऽति विख्याते गुणभद्रोऽभवन्मुनिः ।  
पट्टे तस्यैव संजातः सोमसेनो यतीश्वरः ॥  
तेनेदं निर्मितं शास्त्रं रामदेवस्य भक्तितः ।  
तस्य निर्वाणहेत्वर्थं संक्षेपेण महात्मना ॥  
यस्मिन्निदं पुरं शास्त्रं शृण्वन्ति च पठन्ति च ।  
तत्र सर्वं सुखं क्षेमं परं भवति मद्गुल्फम् ॥  
धर्माह्वयन्ते शिवसौख्यसम्पदः स्वर्गादिराज्यानि भवन्ति धर्मात् ।  
तस्मात्कुरुष्वं जिनधर्ममेकं विहाय पापं नरकादिकारकम् ।  
सेनगणो यतिपरमपवित्रे वृषभसेनगणधरस्तु वंशे ।  
परिडतवर्गसुखकरस्तु जातः सोमसुसेनयतिश्वरमुख्यः ॥  
श्रीमूलसधे वरपुष्कराख्ये गच्छेत्सुजातो गुणभद्रसूरिः ।  
पट्टे च तस्यैव सुसोमसेनो भट्टारकोऽभूद्धिदुषां शिरोमणिः ॥

इति श्रीरामपुराणो भट्टारकश्रीसोमसेनविरचिते रामस्वामिनो निर्वाणवर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽधिकारः ।

प्रशस्ति से सिद्ध होता है कि इस रामपुराण के रचयिता भट्टारक सोमसेन ने इस ग्रन्थ को विक्रम संवत् १६५६ श्रावण शुक्ल त्रयोदशी बुधवार को समाप्त किया था । संभवतः आप के गुरु महेंद्रकीर्ति और योगीन्द्र थे । यह बात प्रारंभिक भाग के १२ वें एवं

अन्तिम भाग के तीसरे श्लोक से व्यक्त होती है। किन्तु प्रस्तुत महेन्द्रकीर्ति सम्वत् १९९२ तथा सम्वत् १८५२ वाले महेन्द्रकीर्ति श्लोक से भिन्न हैं। मालूम नहीं होता कि यह महेन्द्रकीर्ति कौन है। साथ ही साथ उल्लिखित योगीन्द्र का भी पता नहीं लग पाया क्योंकि अभी तक इनको कोई साहित्यिक हृति मेर दृष्टिगोचर नहीं हुई है। प्रत्यक्ष अन्त में सोमसेन ने लिखा है कि मैंने यह रामपुराण रचियेणाचार्य वृत्त पद्यपुराण आधार पर बनाया है। साथ ही साथ यह भी बताया है कि मैंने पद्यपुराण के अन्त भाग को द्योत्रकर के केवल उसके कथा भाग का ही आश्रय लिया है।

इस ग्रन्थ की समाप्ति प्रयोक्ता न रचिये (?) देशान्तर्गत जितवर नगर के पार्श्वका नान्दर में की है। पर पता नहीं लगता है कि रचिये देश एवं जितवर नगर वर्तमानकाल किस प्रान्त या स्थान का नाम है। बल्कि 'रचिये' यह नाम अशुद्ध ज्ञात होता है। इस प्रति में इसका प्रकृत पता लगाना परमावश्यक है। 'दिग्दर्शक जैन ग्रन्थ-कर्ता और उन ग्रन्थ' इस ग्रन्थ सूची से रामपुराण के रचयिता सोमसेन के निम्नलिखित ग्रन्थों का पता लगता है —

(१) स्थाण्डिल्य होमपूजा (२) शुक्लपञ्चम्युत्थापन (३) प्रद्युम्नचरित (४) समर्पि-यू (५) मत्स्यरोघापन (६) यशोधरचरित (७) त्रिवर्णाचार (८) दशरत्नपूजाविधान (८) का वहन-व्याख्यान (१०) लघुनास्तिक। ये सभी ग्रन्थ इन्हीं की हृतियाँ हैं या कतिपय इस बात का निर्णय सभी ग्रन्थों के अश्लोकन से ही किया जा सकता है। बल्कि प्रद्युम्नचरित के कर्ता सोमसेन (वि० स० १६२५ लगभग) काष्टासही थे। परन्तु रामपुराण के रचयिता सोमसेन अपने को मूलसद्य पुष्करगच्छ एवं सेनगण के सुविख्या आचार्य गुणभद्र के पट्टधर बतलाते हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह ग्रन्थ साधारण धर्म का है। पर्यायों के सन्देह में कोई साहित्यिक दृष्टि नहीं दी जाती है।

(४२) ग्रन्थ नं० २६३  
ख

## रत्नत्रयोद्यापनपूजा

कर्ता—भट्टारक विश्वभूषण

विषय—पूजा

भाषा—संस्कृत

चौड़ाई ८ इञ्च

लम्बाई १० इञ्च

पत्रसंख्या ३२

प्रारम्भिक भाग—

श्रीविद्धमानमानम्य गौतमादींश्च सद्गुरुन् ।  
रत्नत्रयविधि वक्ष्ये यथाम्नायं विमुक्तये ॥१॥  
परमेष्ठी परंज्योतिः परमात्मा जगद्गुरुः ।  
ज्ञानमूर्त्तिरमूर्त्तोऽपि भूयान्नो भवशान्तये ॥२॥  
निर्विकल्पं निराबाधं शाश्वदानन्दमन्दिरम् ।  
तोष्टुवीमि चिदात्मानं स्वस्वरूपोपलब्धये ॥३॥  
यस्य ज्ञानान्तरिक्षैकदेशे सर्वं जगत्त्रयम् ।  
एकमृत्तमिवाभाति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥  
अनन्तानन्तसंसारपारावारैकतारकम् ।  
परमात्मानमव्यक्तं ध्यायाग्रहमनारतम् ॥५॥  
अनन्यशरणीभूयात्तद्गुणप्रामलब्धये ।  
स्फुरत्समरसीभावमितोऽ चिद्घनं स्तुवे ॥६॥

x x x

मध्य भाग (परपृष्ठ २०, पंक्ति ४)—

यत्सत्त्वसन्तानविचित्रमेतत्त्रैलोक्यमण्याशु वशीकरोति ।  
घात्सल्यमात्मोदयकारणं तत् सुदर्शनांगं हृदये ममास्ताम् ।  
ॐ ह्रीं वात्सल्यांगाय नमः ।  
सम्यक्त्वभावेन सुदृष्टिजातं शान्त्यष्टकं स्तोत्रं(?) विधाय यत्न ।  
वात्सल्यतां प्राह मनीषिकीभिः रसालहव्यैः प्रयजामि साधुम् ॥  
ॐ ह्रीं पूज्यपादकं (?) वात्सल्यांगाय जलम् ।

एकादशगिन निरूपित यन् ह्यरुम्पनेनापि प्रकाशित च ।  
 तदशर्वयामि सद्यै रमात्रे मुनीन्द्ररन्ध्र गतकल्पय यत् ॥  
 ॐ ह्रीं अरुम्पनावयप्रकाशितं कादशाङ्गुवाटसन्ध्याय जलम् ।  
 सान्तर्येन पूर्वोत्थि चतुर्ंश प्रकाशितम् ।  
 तद्वात्सद्वयुर्धर्शनं स्तुर्वेने मयजे फले ॥  
 ॐ ह्रीं चतुर्दशवाटसन्धिसहितसाधुभ्यो जलम् ।  
 वरांगदन्वेषणापि ध्यायकावारभापितम् ।  
 सोऽद्यापि वर्तते एके त यजे तिन्दुनिम्बके ॥  
 ॐ ह्रीं वरांगदन्वेषोपाम् काचारवात्सल्यांगाय नमः ।  
 धृतवाह्याजिमे प्रोक्तं चतुर्विंशतिरन्ध्रनात् ।  
 तत्र वात्सल्यकं जातं तत् यजे यमुद्रभ्यै ॥  
 ॐ ह्रीं धृतवाह्यचतुर्विंशतिवाटसन्ध्यांगाय जलम् ।  
 × × ×

प्रथम भाग—

प्रजापतिभाद्रसिते द्वितीयाया पडेव (पडेभ) समशशिवत्सरेषु । एतन्नय पाठ (?)  
 चकार पूर्णं भडिल (?) पूजां मुनिविश्वभूय ।

शोधयन्तु महापाठ वाग्मीकमुगिरा चिरम् ।  
 सन्ध्यां सन्ध्यां देवि । यद्विरुद्धं मया कृतम् ॥  
 यावन्मैरुनदीगगा यावत्त्वे च सुनारका ।  
 तावत्सिद्धन्तु मे पाठो मित्थवात्त्वतम (?) भास्कर ॥

इति विशालकीर्त्यात्मजो भट्टारकत्रिभूषणविरचिता एतन्नयोद्यापनपूजा समाप्ता ।

इस एतन्नयोद्यापन के कर्त्ता भट्टारक विश्वभूषण अपने को विशालकीर्ति का आत्मन  
 बतलाते हैं। यह भ० विश्वभूषण वि० सं० १८१०ख म होनेवाले मकामरकथा, पर  
 पुराण, इन्द्रभयजपूजा, पण्यरतिचेक्षिपालशास्त्रि आदि के रचयिता ही प्राप्त होते हैं। इनके  
 वरालक्षयोद्यापन, जिनगुणसम्पत्त्युद्यापन आदि दो-तीन उद्यापन सम्बन्धी ग्रन्थ भी मिलते  
 हैं। इसमें भी उपर्युक्त अनुमान मश्रु प्रतीत होता है। पर एक बात है—प्रस्तुत मंत्र  
 की प्रशस्ति में 'पडेवसप्तशशिवत्सरेषु' पाठ देख कर उस सम्बन्ध पर कोई सन्देह कर सकता  
 है। पर यह लेखक की ही भूल जान होती है। वास्तव में यह मन्त्र है भी बहुत अशुद्ध।  
 मेरे खयाल से इसका पाठ 'पडेभसप्तशशि' होना चाहिये। इस पाठ में उस निर्णीत समय  
 करीब-करीब असन्दिग्ध हो जाता है।

ॐ देखें—'दिव्यर जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' पृष्ठ २७ ।

## प्रतिष्ठा-तिलक

कर्त्ता—ब्रह्मसूरी

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८। इञ्च

चौड़ाई ६।।। इञ्च

पत्र-संख्या ११२

प्रारम्भिक भाग —

जिनाधीशमहं बन्दे विध्वस्ताशेषदोषकम् ।  
सर्वज्ञं सर्वशास्त्रस्य कर्त्तारं त्रिजगत्प्रभुम् ॥१॥  
गणधीशं श्रुतस्कन्धमपि नत्वा त्रिशुद्धितः ।  
प्रतिष्ठातिलकं वक्ष्ये पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥२॥  
जिनेन्द्रप्रतिमान्यासः प्रतिष्ठेति निगद्यते ।  
तत्पूर्विका जिनेज्या हि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥३॥

× × ×

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ६४, पंक्ति १२) —

अथाकारशुद्धिविधानम् ।  
वेदिवाह्यप्रदेशे मरुदमरकुमाराद्युपस्कारयुक्ते  
कूटादानप्रपत्रास्तुजलिखितपरब्रह्ममुख्यामराह्ये ।  
विन्यस्य स्नानपीठे कुशनिहितजिनार्चामुपानीय भक्त्या  
संस्थाप्याप्रस्थकुम्भांशुभिरहमुचिताकारशुद्धि विधास्ये ॥  
ॐ ह्रीं श्रीं क्षीं भूः स्वाहा । जन्माभिपेकस्यानीयमाकार-  
शुद्धयभिपेकप्रारम्भे स्नानपीठाग्रतः पुष्पाञ्जलिं कुर्यात् ।  
मेरीगंभीरनादेत्यादि पद्यपठनानन्तरं बाह्ये पृथग्वाद्यद्योपणम् ।

× × × ×

अन्तिम भाग—

देशेषु सर्वेष्वधिकः सुपाण्ड्यदेशो नदीमातृकदेयमातृकः ।  
बोद्याप्रमोचादिसुपूगवृक्षैः संबद्धमानो बहुशालिमिध्व ॥१॥

नानाविधैर्बद्धितधान्यमूर्ध्वं क्षीरयोपै फलवै सुयोग्यै ।  
 वामाति सत्पन्नसरोररैश्च धीराजहसैर्विहगैर्नरैश्च ॥२॥  
 दोष गुडोपत्तनमस्ति तस्मिन् इर्म्यावलीतोरणराजिगोपुरै ।  
 मनोहपगारसुररत्नसभृतैरुद्यानजैर्भात्यमरावतीव ॥३॥  
 तद्राजराजेन्द्रमुपायव्यभूप क्षीर्या जगद्व्यापितयान् सुधर्मा ।  
 एराज भूमाविति निस्सपन्न कलान्वित सद्भिर्बुधैः परीत ॥४॥  
 तत्रास्ति सद्रत्नसुवर्णतुगवैल्यालये धीवृषभेश्वरो जिन ।  
 विशाखनन्दीनमुनीन्द्रमुख्या सद्यैःखरन्तो मुनयो वसन्ति ॥५॥  
 धीमूलसद्यभ्योमेदुर्भारते भावितोर्धृष्ट ।  
 देशे समन्तभद्रारयो मुनिर्षीयात्पदद्विक ॥६॥  
 सत्यार्थसूत्रव्याख्यानगन्धहस्तिप्ररर्षक ।  
 स्वामी समन्तभद्रोऽभूद् वागमनिदेशक ॥७॥  
 शिष्यो तदीयो शिरकोदिनामा शिष्यायन शास्त्रविद्वां धैर्ययो ।  
 हस्तस्य धृत धीगुरुपावमूले हाधीतरन्तो भवत हृतायै ॥८॥  
 तद्वन्येऽभूद्विदुषां वरिष्ठ स्वादावनिष्ठ सकलागमज्ञ ।  
 धीवीरसेनोऽजनि ताकिञ्चधी प्रप्रस्तवागादिसमस्तदोष ॥९॥  
 तच्छिष्यप्रवरो जातो जिनसेनमुनीश्वर ।  
 वदाड्मथं पुरोरासीन् पुष्यार्ण प्रथम भुवि ॥१०॥  
 तदीयमियशिष्योऽभूत् गुणमद्रमुनीश्वर ।  
 शृगका पुष्या यस्य सृक्तिभिर्भूषिता सदा ॥११॥  
 गुणमद्रगुरोरुत्तस्य माहात्म्य केन वषर्यते ।  
 यस्य वाक्सुधया भूमावभिविका जितेश्वरा ॥१२॥  
 तच्छिष्यानुक्रमे जातेऽसकल्येये विद्यतो भुवि ।  
 गोविन्दमद्र इत्यासीद् विद्यान् मिष्यात्परजित ॥१३॥  
 देवागमनसूत्रस्य धृत्या सदर्शनान्वितः ।  
 अनेकान्तमर्त तस्य बहु मैने विदाश्वर ॥१४॥  
 मन्नास्ति संत्राता वधिताग्विन्कोविदा ।  
 वात्सिणीत्या जयन्त्यत्र स्वर्णवर्तीप्रभात ॥१५॥  
 धीपुमारकवि सत्यवाक्यो देशरथप्रभ ।  
 वधुभूवगनाया स हस्तिमत्तामिद्यानक ॥१६॥  
 वदमानकविश्चेति वदभूवन् कवीश्वरा ॥१६॥





घारांहादितुयादिपरंतपयि सर्वत्रमन्यापक ।

वाग्देवमनतादिनादमरदन् तद्व्यग्रमूरी मुत्र ॥२९॥

सारं मार प्रोक्तमित्यत्र शास्त्रे सयं पश्य सनयन्त्येनदेव ।

छन्दोऽष्टादादितभ्यानघं सञ्जायाहुंके धन्धुर सर्वकालम् ॥३०॥

इति प्रतिष्ठातिलकोदितप्रमान् करोति यो भय्यननप्रमादताम् ।

जिनप्रतिष्ठां परमार्थनिष्ठां सद्ब्रह्म यास्यत्यचिरम् तुसौख्यम् ॥३१॥

इस प्रतिष्ठातिलक के कर्ता ब्रह्मपुरी ने अपनी यह परिचय निम्नलिखित रूप से दिया है—

पाण्ड्यदेश में गुड्डिपत्तन नाम का एक नगर है। यहाँ का राजा पाण्ड्यनेन्द्र है। यह बड़ा ही धर्मिष्ठ, शूर-वीर, कर्ण कुशल तथा पण्डित-सेवी है। यहीं श्रीकृष्ण तीर्थद्वार का एक मनोरंजनमय मन्दिर है। इसमें विद्यालक्ष्मी भादि अनेक विद्वान् मुनिगण वास करने हैं। कवि ने आगे प्रख्यात पुराणप्रणेता मगरजिनसेनाचार्य की परम्परागत धर्मोपनिषद् को ही अपनी पुर्यम्ब बतलाकर निम्न प्रकार से अपनी वंश-तात्पर्य अंकित की है—

गोविन्दमठ के धोकुमार, सत्ययाकथ, देवयज्ञन, उदयभूषण, हस्तिमल और यक्ष्मान नाम के छ लड़के थे। सुप्रसिद्ध कवि हस्तिमल के पुत्र पण्डित पार्वं द्वय। यह अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मात्मा पर शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे पार्वं पाण्ड्य देश में काश्यप, यशोष्ठ आदि अपने गोत्रज धनुषों के साथ होय्सलदेश में आकर रहने लगे। यह होय्सलदेश पश्चिमी घाटी की पहाड़ियों में बहुर निले के मद्गिरि ताडुक में अगडि नामक स्थान में प्रोदुर्भूत हुआ था। इसका प्राचीन नाम शरकपुर है। यहाँ पर सळ नामक एक समन्त ने एक व्याघ्र में जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु होय्सळ नाम प्राप्त किया था। विद्वाना का कहना है कि प्रारम्भ में होय्सळदेश पहाडी था। पीछे त्रिनयादित्य के उत्तराधिकारी ने अपनी राजधानी शरकपुरी से बेटूर में हटाली। द्वारसमुद्र (हेट्टेवीडु) में भी उनका राजधाना थी। इस धन के विष्णुवर्द्धन के समय होय्सळ नरेशों का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इसी समय गंगराजि का पुतना राज्य सब उनके अधीन हो गया था और इन्होंने कई अन्य प्रदेशों को भी जीत लिया था। प्रारम्भ में विष्णुवर्द्धन जैनधर्मावलम्बी रहा; किन्तु पाट्ट वैष्णव हो गया था। फिर भी जैनधर्म से उसकी सहानुभूति यनी हा रही। होय्सळ राज्य पहले बालुष्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। पीछे नरसिंह के पुत्र धारण्डाल के समय में यह स्वतन्त्र हो गया। यह धन जैनियों का विशय रूप में पृष्ठपोषक था।

उल्लिखित राज्य की राजधानी मन्वराजा ने हज्जतपुरी स्थित की है। ऐतिहासिक प्रमाणों से इस राज की राजधानी केवल तीन स्थानों में थी, जिनके नाम क्रम से मन्वरापुर, वैश्वर और ज्ञानपुर थे। पता नहीं कि हज्जतपुरी में मन्वराजी की किस स्थान का स्थान करने है। बहुत संभव है कि ज्ञानपुर की ही इन्हीं हज्जतपुरी स्थित किया हो।

अतः, एक पार्श्वसंग्रह की मन्वरा, मन्वराज और वैश्वर नाम के तीन पुत्र थे। इनमें से मन्वराज और इनके परिवार वैश्वर हेमराज में जा गये। जोर दो भाई मन्वराज स्थानों में गये। मन्वरा के पुत्र जितेन्द्र हुए और इन्हीं के लड़के इस ग्रन्थ के रचयिता परम धार्मिक नरेंद्र-निष्ठात एवं धार्मिकनैतिक धर्मप्रवर्तक हैं।

(११) ग्रन्थ नं० १५  
क

## प्रतिष्ठाकल्प

रत्न—महाकल्पक

विषय—प्रतिष्ठा

भाषा—संस्कृत

पन्ना २। १५५

वैश्वर १॥ १५५

पत्र-संख्या २०

धार्मिक भाग—

विद्वानं विद्वानं यस्य विद्वानं विश्वमोक्षम् ।  
 नमस्तस्मै जितेन्द्राय गुणेन्द्राभ्यर्चिताप्रये ॥१॥  
 धर्मिण्या च गणार्घीं धनरत्नप्रमुपास्य च ।  
 पेर्युगोनानाचार्यान्पि भक्त्या नमाम्यहम् ॥२॥  
 अथ धार्मिकनैतिकप्रतिष्ठानागममार्गः ।  
 प्रतिष्ठायास्तद्विद्युत्तरांगानां स्वयमङ्गिनाम् ॥३॥  
 इन्द्रप्रतिष्ठायभृथायन्तानां वृद्धस्वकर्मणाम् ।  
 श्रयान्तर्प्रियाणां च वृत्तणप्रतिपादकः ॥४॥  
 प्रतिष्ठाकल्पनामार्गो ग्रन्थः सारसमुच्यते ।  
 महाकल्पकदेवेन साधु संग्रह्यते स्फुटम् ॥५॥

घारांशानिपुशाश्चिर्षतवधि सर्वज्ञगंध्यापन ।  
 वाग्नेयोमननादिनांममरन् तद्भ्यग्युती मुता ॥२९॥  
 सारं सार प्रोक्तमित्यत्र शास्त्रे सत्यं सत्य लक्षणव्येनदेव ।  
 ह्युनोऽन्तुतादित्वात्तर्ष मन्नागतोके यन्तुं सर्वज्ञानम् ॥३०॥  
 इति प्रतिष्ठातिलकचोदितकमान् करोति यो भयङ्गनयमोदताम् ।  
 जिनप्रतिष्ठां परमार्थनिष्ठां सद्भ्यः वास्यत्यधिरान् सुसौख्यम् ॥३१॥

इस प्रतिष्ठातिलक के कर्ता ह्यग्युती ने माना यंत्र परिचय विमललिखित रूप से दिया है :—

पाण्ड्यदेश में गुडिपत्तन नाम का एक नगर है। यहाँ का राजा पाण्ड्यनरेन्द्र है। यह बड़ा ही धर्मिष्ठ, शूर-वीर, कला बुद्धि तथा पण्डित-मेवी है। यहीं श्रीकृष्ण लीपेंद्र का एक मनोरंजन दिन सुवर्णमय मन्दिर है। इनमें विद्यासनन्दी भारि अनेक विज्ञान मुनिगण वास करते हैं। कवि ने आन प्रख्यात पुराणग्रन्थेता भगवद्भिनमेनाचार्य की परम्परागत श्रीगोविन्द मठ को ही अपना पूर्वज बतलाकर निम्न प्रकार से अपनी वंश-तालिका अंकित की है —

गोविन्दमठ के श्रीकृष्ण, सत्ययाज्य, देवरायलम, उदयभूषण, हस्तिमल और वर्द्धमान नाम के छ लड़के थे। गुणसिद्ध कवि हस्तिमल के पुत्र पण्डित वार्ष्णेय। यह अपने पिता के समान यशस्वी, धर्मोत्सा वय शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् थे। पीछे वार्ष्णेय पाण्ड्य देश से काश्यप, पशिष्ठ भारि अपने गोत्रज बन्धुओं के साथ होय्सलदेश में आकर रहने लगे। यह होय्सलवंश पश्चिमी घाटी की पहाडियों में कडूर जिले के मडुगिरि तालुक में अंगडि नामक स्थान में प्रादुर्भूत हुआ था। इसका प्राचीन नाम शरकपुर है। यहाँ पर सळ नामक एक सामन्त ने एक ध्याप्र से जैनमुनि की रक्षा करने के हेतु होय्सळ नाम प्राप्त किया था। विद्वानों का कहना है कि भारत में होय्सळवंश पहाड़ी था। पीछे त्रिनयादित्य के उत्तराधिकारी ने अपनी राजधानी शरकपुरी में धेरू में हटा ली। द्वारसमुद्र (हल्लेबीडु) में भी उनकी राजधानी थी। इस वंश के विष्णुवर्द्धन के समय होय्सळ नरेश का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इसी समय गंगराडि का पुतना राज्य सब उनके अधीन हो गया था और इन्होंने कई अन्य प्रदेशों को भी जीत लिया था। भारत में विष्णु-वर्द्धन जैनधर्मावलम्बी रहा; किन्तु पीछे वैष्णव हो गया था। फिर भी जैनधर्म से उनकी सहायुभूति बनी ही रही। होय्सळ राज्य पहले चालुक्य-साम्राज्य के अन्तर्गत था। पीछे, नरसिंह के पुत्र धारवह्णल के समय में यह स्वतन्त्र हो गया। यह वंश जैनीयों का विशेष रूप से पूज्योपक था।

इति संकल्प्य पुत्रपतेः कियमाने तदन्तरे ।  
 चान्नि शिष्यादिनेत्रैः न्यायप्रतिष्ठिते ॥  
 शोनुमाननयिन्याम पुनरात् प्राप्तिनि पश्यते ।  
 तस्य बुद्धयश्च येनैवमदुभयैः सन्तमान्ते ॥  
 प्रथमं प्रनार्ये ज्ञानानां सत्पूर्वं महाद्वयानि ।  
 तत स्वरिनक्यादिभ्यस्तोष्ट्रार्थावन्पुष्टयम् ॥  
 मायात्तरं पूर्वं तत्र तैर्ध्यायुपरिपूरितम् ।  
 पश्चात्तर्जुशोभाद्वयान्युपपाद्यताञ्जितम् ॥  
 तदुत्तमानात्प्रतिष्ठितं पुनरुत्तमं तद्विद्यम् ।  
 श्रेयस्वत्प्राप्तं पश्चात्तदाद्वयानिर्गतम् ॥  
 धीमत्सर्वकारं तदाद्वयानिर्गतं पश्यति ॥  
 धीमत्सर्वकारं तदाद्वयानिर्गतं पश्यति ॥

× × ×

प्रतिष्ठा भाग—

इत्यारं धीमत्सर्वकारं कदेयमंशुहोने प्रतिष्ठाकरानामिन् प्रत्ये श्रुत्वापाने प्रतिष्ठाहिनोप-  
 ह्नीयवियस्यिभिन्नरुपाणां यो नामैकौनयिनः पश्यत्येवः ।

प्रतिष्ठाकर, अक्षयद्वयसंहिता अथवा अक्षयद्वयप्रतिष्ठापाठ के नाम में प्रसिद्ध यह ग्रन्थ राज्यातिक, अष्टशती आदि ग्रन्थों के रचयिता प्रथम की श्रुति प्रतापों के विद्वान् भट्टाकलङ्कदेव की श्रुति माना जाता है । इन ग्रन्थ में तो इनकी रचना का समय नहीं दिया है, परन्तु ग्रन्थों की सन्धियों में ग्रन्थकर्ता का नाम 'भट्टाकलङ्कदेव' आशय दिया है । सन्धियों में ही नहीं, पद्यों में भी ग्रन्थकर्ता ने अपना नाम भट्टाकलङ्कदेव प्रकट किया है । इस ग्रन्थ के सम्यग्य में पवित्र जगन्निशीर जी मुग्धार का कहना है कि सन्धियों और पद्यों में भट्टाकलङ्कदेव का नाम लगा होने में ही यह ग्रन्थ राज्यातिक के कर्ता का घनाया हुआ समझ लिया गया है । अन्यथा, ऐसा समझने में और कथन करने की कोई दूसरी बजह नहीं है । भट्टाकलङ्कदेव के थाए होनेवाले किसी माननीय प्राचीन आचार्य की श्रुति में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं मिलता है । प्राचीन शिखालेख भी इस विषय में मौन हैं । साथ ही साथ भट्टाकलङ्कदेव के साहित्य और उन की कथन-शैली से इस ग्रन्थ के साहित्य और कथनशैली का कोई मेल नहीं है । इसका अधिकांश साहित्य-शरीर अपने ग्रन्थों के आधार पर घना हुआ है, जिनका निर्माण भट्टाकलङ्कदेव के अवतार से बहुत पीछे के समयों में हुआ है ।

पुरातनेषु तत्रेषु किञ्चित्सूत्रसमुच्चितम् ।  
 किञ्चित्प्रयोगसिद्ध किञ्चित्कर्मान्तरस्थित ॥६॥  
 मन्त्रकाण्डगत किञ्चिन् किञ्चित्स्नानान्तरोदितम् ।  
 इत्येव विप्रशीर्णं तल्लक्ष्म नैकत्र सञ्चितम् ॥७॥  
 भवगम्य तदेकत्र नेय प्रवृत्तकर्मण ।  
 सिद्धार्थं प्रौढसाध्यं तमद्धानां नैत्र गोचर ॥८॥  
 भूतो मन्दाययोधार्थं लक्ष्म यद्यत्र योजितम् ।  
 तत्रैव त्रियतेऽनेति सफलो मे परिधम ॥९॥  
 श्लोका पुरातना केचिद्विग्रिय लक्ष्मयोधका ।  
 प्रायस्तदनुसारेण मदुक्ताश्च क्वचित्क्वचिन् ॥१०॥  
 यस्तात्ताद्यश्च लक्ष्मेयद्वयवधानेऽप्यपेक्षितम् ।  
 सगृह्यते तदेवान्न न पारपर्ययाञ्छितम् ॥११॥  
 पारम्पर्यारवेणात्र सहिता शास्त्र भाषितम् ।  
 नोच्यते किन्तु तद्वैव (?) यच्छास्त्रातरगोचर ॥१२॥  
 तथाहीह प्रतिष्ठांगकियानिर्बहूणाय हि ।  
 तत्कतुर्नियमेनात्तोपासकाध्ययनागमे ॥१३॥  
 पुराणाद्यात्मशकनरास्तुज्योतिपशास्त्रगम् ।  
 सामान्यैरपि राजाद्यै महामुकुण्डशोभिभि ॥१४॥  
 ज्ञानमावदयक तसु सख्या व्याकरणादिना ।  
 न भवेदिति तल्लक्ष्म वेद्य तत्रैव नात्र तु ॥१५॥  
 × × ×

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ३१, पंक्ति ६) —

अथैवमङ्कुरारोपस्तद्रात्रौ होमकर्म च ।  
 इत्युक्तं प्राक् ततोऽत्रैव तद्विधानं निरूप्यते ॥  
 मण्डपस्य च वेद्याश्च कण्डानां चापि लक्षणम् ।  
 वक्ष्यतेऽग्रे प्रपञ्चेन यागशालाप्रवेशने ॥  
 अत्र कर्मानुपूर्वीं च तत्तल्लक्ष्म च केवलम् ।  
 पूर्वसुरिवचो ब्रूय्या कथ्यते साधु तपया ॥  
 होमकर्मणि पूर्वांगत्वेन पुनर्याहवाचना ।  
 कर्तव्या सापिस्तकल्पपूर्विका नयकेयला ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०, पंक्ति ८)---

कैवर्तगिर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनिः ।  
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् (?) ॥१०४॥  
 उर्वशीगिर्भसंभूतो वशिष्ठस्तु महामुनिः ।  
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०५॥  
 चागङ्गालीगिर्भसंभूतो विश्वामित्रमहामुनिः ।  
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०६॥  
 शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं  
 कुलेन किं शीलविवर्जितेन ।  
 बहो (?) नरा नीचकुलेषु जाताः  
 स्वर्गं गताः शीलगुणस्य धारिणः ॥१०७॥

इति मार्कण्डेयपुराणे, भविष्यपुराणे, विष्णुपुराणे, पद्मपुराणे (च) ऋषिकुलाधिकारः ।

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां व्रतधारिणाम् ।  
 ब्रह्मचर्यस्य भगे तु सर्वं व्रतं (व्रतं सर्वं) निरर्थकम् ॥१०८॥  
 सुखशय्यासनं वस्त्रं तांबूलं स्नानमण्डनम् ।  
 दन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१०९॥  
 पकृतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यन्तु पकृतः ।  
 पकृतः सर्वपापानि मद्यं मांसं च पकृतः ॥११०॥  
 भारभे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठिर ।  
 गृहस्थस्य कुतः शौचं मैथुनाभिरतस्य च ॥१११॥  
 मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारि(चर्य)दृढव्रताः ।  
 ते संसारस्तमुद्रस्य पारं गच्छन्ति मानवाः ॥११२॥

इति शिवपुराणे ब्रह्मचर्याधिकारः ।

x x x

अन्तिम भाग---

मूर्खास्तपोभिः क्लृपयन्ति देहं ।  
 बुधा मनोदेहविकारहेतुम् ॥  
 श्वा क्षिप्तमस्त्रं प्रसते हि फोपात् ।  
 क्षेप्तारमस्त्रस्य च हन्ति सिंहः ॥११०॥

मुख्यतः साह्य ने अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिये भगवद्गीता (वि० ११<sup>वीं</sup> शताब्दी)-प्रणीत भास्तिपुराण, आचार्य शुभचन्द्र (लगभग वि० ११<sup>वीं</sup> शताब्दी)-वृत्त भास्तिपुराण, भट्टारक एकसन्धि (वि० १३<sup>वीं</sup> शताब्दी)-रचित एकसन्धि संहिता, पण्डित अनामक (वि० १३<sup>वीं</sup> शताब्दी)-प्रणीत जिनपञ्चदश, धीमत्सुरि (लगभग वि० १५<sup>वीं</sup> शताब्दी)-विरचित प्रतिष्ठापाठ, धीनेमिचन्द्र (लगभग वि० १६<sup>वीं</sup> शताब्दी) अर्चित प्रतिष्ठातिलक, धीसोमसेन (वि० १७<sup>वीं</sup> शताब्दी)-प्रणीत त्रिगुणाचार के पद्यों को उद्धृत किया है। इन पद्यों में मंगलाचरण भी गभित है। पं० शुभल किशोर जी के ख्याल से इसकी रचना विक्रम की १६<sup>वीं</sup> या १७<sup>वीं</sup> शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है और यह भक्तलोक या भक्तलोकदेव नाम के किसी भट्टारक या विद्वान् की रचना है। मालूम होता है कि इन्होंने अपने नाम के साथ स्वयं ही 'भट्ट' की महत्वसूचक उपाधि को धारण करना पसन्द किया है। इस सम्बन्ध में विशेष बात जानने के लिये 'ग्रन्थ-परिज्ञा' भाग ३५ का अवलोकन करना चाहिये।

(४५) ग्रन्थ नं०  $\frac{५७}{५५}$

## परसमय ग्रन्थ

कल<sup>१</sup>—(संगृहीत)

विरच—जैनाचार्यमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इंच

चौड़ाई ६॥॥ इंच

पल-संख्या १०

पारम्भिक भाग—

धूपतां धमसर्वस्यं धुत्वा वैरावधार्यताम् ।  
 आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥  
 कथमुत्पद्यते धर्मः कथं धर्मो विन्दते ।  
 कथं संस्थाप्यते धर्मः कथं धर्मो विनश्यति ॥  
 सत्येनेत्यद्यते धर्मो इत्यादानेन धर्द्धते ।  
 क्षमया स्थाप्यते धर्मः क्रोधलोभादिनश्यति ॥  
 अहिंसासत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम् ।  
 यद्वस्वेतेषु धर्मेषु सर्वे धर्माः प्रतिष्ठिताः ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ १०, पंक्ति ८) —

कैवर्तीगर्भसंभूतो व्यासो नाम महामुनिः ।  
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् (?) ॥१०४॥  
 उर्वशीगर्भसंभूतो वशिष्ठस्तु महामुनिः ।  
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०५॥  
 चारुडालीगर्भसंभूतो विश्वामित्रमहामुनिः ।  
 तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥१०६॥  
 शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं  
 कुलेन किं शीलविवर्जितेन ।  
 बहो (?) नरा नीचकुलेषु जाताः  
 स्वर्गं गताः शीलगुणस्य धारिणः ॥१०७॥

इति मार्कण्डेयपुराणो, भविष्यपुराणो, विष्णुपुराणो, पद्मपुराणो (च) ऋषिकुलाधिकारः ।

ब्रह्मचर्यं भवेन्मूलं सर्वेषां व्रतधारिणाम् ।  
 ब्रह्मचर्यस्य भंगे तु सर्वं व्रतं (व्रतं सर्वं) निरर्थकम् ॥१०८॥  
 सुखशय्यासनं वस्त्रं तांबूलं स्नानमण्डनम् ।  
 दन्तकाष्ठं सुगन्धं च ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥१०९॥  
 पकतश्चतुरो वेदा ब्रह्मचर्यन्तु पकतः ।  
 पकतः सर्वपापानि मद्यं मांसं च पकतः ॥११०॥  
 भारभे वर्तमानस्य हिंसकस्य युधिष्ठिर ।  
 गृहस्थस्य कुतः शौचं मैथुनाभिरतस्य च ॥१११॥  
 मैथुनं ये न सेवन्ते ब्रह्मचारि(चर्य)द्वृढव्रताः ।  
 ते संसारसमुद्रस्य पारं गच्छन्ति मानवाः ॥११२॥

इति शिवपुराणो ब्रह्मचर्याधिकारः ।

× × ×

अन्तिम भाग —

मूर्खास्तपोभिः कृशयन्ति देहं ।  
 बुधा मनोदेहविकारहेतुम् ॥  
 श्वा क्षिप्तमस्त्रं प्रसते हि फोपात् ।  
 क्षेप्तारमस्त्रस्य च हन्ति सिंहः ॥११३॥



मुख्तार साहय ने अपनी इस बात को प्रमाणित करने के लिये भगवज्जिनसेन (वि० ११ शताब्दी) प्रणीत भाद्रिपुराण भाचार्य शुभचन्द्र (लगभग वि० ११वीं शताब्दी)-कृत मन्त्रार्थ भट्टारक एकसन्धि (वि० १३वीं शताब्दी)-रचित एकसन्धि संहिता, पण्डित मन्मथ (वि० १३वीं शताब्दी)-प्रणीत जिनयज्ञकल्प, श्रीब्रह्मसूत्रि (लगभग वि० १५वीं शताब्दी)-विरचित प्रतिष्ठापाठ, धीनेमिचन्द्र (लगभग वि० १६वीं शताब्दी) अङ्कित प्रतिष्ठातिलक, श्रीसेन (वि० १७वीं शताब्दी)-प्रणीत त्रिरसांचार के पद्यों को उद्धृत किया है। इन पद्यों मंगलाचरण भी गर्भित है। प० जुगल किशोर जी के खयाल से इसकी रचना विक्रम १६ वीं या १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है और यह अकलक या अकलकदेव नाम किसी भट्टारक या विद्वान् की रचना है। मालूम होता है कि इन्होंने अपने नाम क सं स्वयं ही 'मट्ट' की महत्वसूचक उपाधि को धारण करना पसन्द किया है। इस सम्बन्ध में विशेष बात जानने के लिये 'प्रच परीक्षा' भाग ३ का अग्रलोकन करना चाहिये।

(४५) ग्रन्थ नं० ५७  
क

## परसमय ग्रन्थ

कल—(संगृहीत)

विषय—जैनाचारमण्डन

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८॥ इंच

चौड़ाई ६॥ इंच

पत्र-संख्या २०

पारम्भिक भाग—

धूपतां धमस्यस्य धुत्या वैजायपार्यताम् ।  
 भारतमन प्रतिहृतानि परेण न समाचरन् ॥  
 कथमुत्पद्यते धर्मं कथं धर्मो विद्यते ।  
 कथं संस्थाप्यते धर्मं कथं धर्मा विनश्यति ॥  
 सत्येनोत्पद्यते धर्मो ह्यात्मानं धर्मते ।  
 समया स्थाप्यते धर्मं बोधयोगेन विनश्यति ॥  
 अहिंसासत्यमस्वयं स्थाप्या मैपुनरर्जकम् ।  
 पश्यस्तेषु धर्मेषु सर्वे धर्मा प्रतिष्ठिताः ॥

के साथ मिलते हैं। फिर भी परसमयग्रन्थ के कर्त्ता वेदाङ्कुश के कर्त्ता से भिन्न ज्ञात होते हैं। प्रतिपादित विषयों का क्रम भी दोनों का भिन्न भिन्न है। वल्कि वेदाङ्कुश में परसमयग्रन्थ की अपेक्षा विषय का बाहुल्य है। वेदाङ्कुश में जहाँ कमशः परोपकार, धर्म, सत्य, निन्दा, दया आदि २५ विषयों पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ परसमयग्रन्थ में उपर्युक्त कतिपय परिमित विषयों पर ही प्रकाश डाला गया है। वेदाङ्कुश में सर्वप्रथम परोपकार पर प्रकाश डाला गया है और परसमयग्रन्थ में अहिंसा पर। हाँ, जैसे मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग, रात्रिभोजनत्याग और ब्राह्मणत्वं आदि कतिपय विषयों के पद्य दोनों में एक से मिलते हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि इस परसमयग्रन्थ को किसी दिगम्बर विद्वान् ने संग्रह किया हो। सुदूरवर्ती दक्षिण भारत में प्राप्त इस ग्रन्थ की प्रति भी इसी बात की ओर संकेत करती है। क्योंकि दक्षिण भारत में कल तक दिगम्बर जैनों का ही बोलवाला रहा है। हाँ, उपलब्ध प्रति अधूरी मालूम होती है। समग्र प्रति मिलने पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जा सकता है। जिन्हें इसकी समग्र प्रति उपलब्ध हो उन्हें इस पर अवश्य विशेष प्रकाश डालना चाहिये।

(४६) ग्रन्थ नं०  $\frac{५८}{८५}$

## कषायजयभावना या कषायजयचत्वारिंशत्

कर्त्ता—कनककीर्ति मुनि

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८५ इञ्च

चौड़ाई ६॥ इञ्च

पत्रसंख्या ६

प्रारम्भिक भाग—

येन कषायचतुष्कं ध्वस्तं संसारदुःखतक्वीजम् ।

प्रणिपत्य तं जिनेन्द्रं कषायजयभावनां वक्ष्ये ॥१॥

कोपी नाशयति क्षणेन विपुलां संसंचितं (?) संपदं ।

कोपी च त्यजति द्रुतं प्रणयिनीं भार्यां स्वकीयामपि ॥

कोपी पुण्यजनोचितान् सुखकरान्..... ॥

.....॥२॥

कायस्थिप्यर्षमाहार काय ज्ञानार्थमिष्यते ।  
 ज्ञान कर्मविनाशाय तत्राग्रे परम परम् ॥१९१॥  
 मार्थं पश्यात्परमपि भवति त्वरीयो  
 म्याद्यन्ते विनृपनाम म (घ) धन्वुयर्ग ॥  
 वीर्षे पपि प्रवसतो भवतस्सत्यैक ।  
 पुपय भविष्यति ततः त्रियतां तदेव ॥१९२॥  
 मष्टे वस्तुनि शोभनेऽपि हि तथा शोकः समाख्यते ।  
 तात्तामोऽप्य यतोऽप्य सौख्यमथवा धर्माऽप्यया श्याद्यदि ॥  
 यद्येकोऽपि न जायते कथमपि स्वार्थे प्रयत्नैरपि ।  
 प्रायमन्त्र सुधीर्मुंघा भवति क शोकोमरक्षोविश (?) ॥१९३॥  
 त्वं शुद्रात्मा शरीर सकलमल्पुत त्व सज्ञानन्मूर्ति ।  
 देहो दु लैकगेह त्वमसि कलावित्कायमज्ञानपुत्रम् ॥  
 त्व नित्यः धीनिवास सणकचित्तदृशा शशयनेकाङ्गमङ्ग ।  
 मा गा जीयाऽऽन्न राग वपुषि भज निज्ञानन्सौख्योदयं त्वम् ॥१९४॥  
 निश्चेष्टानां धधो राजन् कुत्सितो जगतीपते ।  
 मनुमध्योपनोतानां पशुनामिष रायय ॥१९५॥

यह 'परसमयग्रन्थ' एक सप्रहग्रन्थ है। इसे मने राजकीय प्राच्यपुस्तकागार में से लिखवाया था। यहाँ की मुद्रित ग्रन्थतालिका में यह इमी नाम से अङ्कित है। इस ग्रन्थ में सप्रहकर्त्ता ने जैनधर्म में प्रतिपादित मघत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग, नवनीतत्याग, कन्दमूलत्याग, रात्रिमोघनत्याग, अलगाहन, आहारदान, प्रद्वयर्ष और अहिंसा आदि मां आचारों को द्विदुआ के पत्रपुराण, विष्णुपुराण, शिथपुराण, लिंगपुराण भगवद्गीता आदि महाभारत आदि ग्रन्थों के प्रमाणोद्धरणपूर्वक पुष्ट किया है। हाँ एक बात है। वह यह है कि इस ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों का हवाला दिया गया है उनके नाम और पद्य मां विद्ये गये हैं। अध्याय, प्रकरणा, पृष्ठ आदि को इसमें कुछ भी निर्देश नहीं मिलता है। अतः मूलग्रन्थों से अगर कोई इन प्रमाणों को मिलान करना चाहे वह सहज नहीं है।

अस्तु सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्रजी के द्वारा रचित 'वेदाङ्कश' नामक एक छद्मकेशव ग्रन्थ वि० सं० १९७३ में अहमदाबाद में छपा है। यह 'धीमेमन्वराचार्य-ग्रन्थावली' का पाँचवाँ ग्रन्थ है। वेदाङ्कश और परसमयग्रन्थ ये दोनों ग्रन्थ एक ही विषय के हैं। वरिष्ठ वेदाङ्कश के बहुत से पद्य परसमयग्रन्थ में यथावत् और बहुत से पाठभेद

के साथ मिलते हैं। फिर भी परसमयग्रन्थ के कर्त्ता वेदाङ्गुश के कर्त्ता से भिन्न ज्ञात होते हैं। प्रतिपादित विषयों का क्रम भी दोनों का भिन्न भिन्न है। वलिक वेदाङ्गुश में परसमयग्रन्थ की अपेक्षा विषय का चाहुल्य है। वेदाङ्गुश में जहाँ क्रमशः परोपकार, धर्म, सत्य, निन्दा, दया आदि २५ विषयों पर प्रकाश डाला गया है, वहाँ परसमयग्रन्थ में उपर्युक्त कतिपय परिमित विषयों पर ही प्रकाश डाला गया है। वेदाङ्गुश में सर्वप्रथम परोपकार पर प्रकाश डाला गया है और परसमयग्रन्थ में अहिंसा पर। हाँ, जैसे मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग रात्रिभोजनत्याग और ब्राह्मणात्वं आदि कतिपय विषयों के पद्य दोनों में एक से मिलते हैं। बहुत कुछ सम्भव है कि इस परसमयग्रन्थ को किसी दिगम्बर विद्वान् ने संग्रह किया हो। सुदूरवर्त्ती इक्ष्वाणु भारत में प्राप्त इस ग्रन्थ की प्रति भी इसी घात की ओर संकेत करती है। क्योंकि वक्षिणा भारत में कल तक दिगम्बर जैनों का ही बोलबाला रहा है। हाँ, उपलब्ध प्रति अधूरी मालूम होती है। समग्र प्रति मिलने पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जा सकता है। जिन्हें इसकी समग्र प्रति उपलब्ध हो उन्हें इस पर अवश्य विशेष प्रकाश डालना चाहिये।

(४६) ग्रन्थ नं० ५८  
क

## कपायजयभावना या कपायजयचत्वारिंशत्

कर्त्ता—कनककोर्ति मुनि

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई ८१ इंच

चौड़ाई ६॥ इंच

५ प्रसंख्या ९

प्रारम्भिक भाग—

येन कपायचतुष्कं ध्वस्तं संसारदुःखतफन्वीजम् ।

प्रणिपत्य तं जिनेन्द्रं कपायजयभावनां वक्ष्ये ॥१॥

कोपी नाशयति क्षणेन विपुलां संसंचितं (?) संपदं ।

कोपी च त्यजति द्रुतं प्रणयिनीं भार्यां स्वकीयामपि ॥

कोपी पुण्यजनोचितान् सुखकरान्..... ॥

.....॥२॥

भ्रूमगभगुरितभोमल्लाडपट्टं । एवं विरूपमपि कपितसर्वगतम् ।  
 प्र(१)प्रखलद्वयनमुदगतलोलदृष्टि । कौप करोति मर्दिव अन विवल् ॥  
 नो सधुणोति परिधानमपि स्वकीय । भागशानि चूर्णपति हन्ति पिष्टुष्ट  
 स्वात्म(१) पर परिभवत्यपि मुक्तकेश । कोपी ।  
 कोपेन कश्चिद्वर ननु हन्तुकामस्तसायस स परिशुद्ध करेण मुद ॥  
 स्व निर्दहत्यपरमत्र विकल्पनीय । किंवा विडम्बनमस्तौ न करोति कोप ॥

X X X X X

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ५, पक्ति ५) —

व्याघ्री नो कुपिता न चापि शरणी नैवान्तकी दाससी ।  
 शस्त्रेणापि तथा न पावकशिखा नो शाकिनी डाकिनी ॥  
 नो यन्नाशनिष्ठमार्गपतितो सर्वस्य हानि तथा ।  
 दु ख भूरि यथा करोति श्विता माया मुष्ठां ससुती ॥२१॥  
 त्यक्तश्रेणपरिग्रहा अपि सदा विनातशाखा अपि ।  
 शश्वद्ब्राह्मभेदतमतपसा सपीहितंगा अपि ॥  
 केचिदुपाएव(१)गौरवाद्धिहितया दुर्लक्षयामायया ।  
 मृत्वा यान्ति कुदेरयोनिमवशा माया न किं दु खदा ॥२२॥  
 द्विद्रावलोकनपर सतत परेषां जिह्वाडयेन भयदा न विद्यानरसम् ॥  
 भतद्विपाकद्वय च खलस्वमाध । माया करोति हि नर स मुक्तगणेषु ॥२३॥  
 घोरोऽपि चाद्वरितोऽपि विचक्षणोऽपि ॥  
 शीलालयोऽपि सतत विनयान्वितोऽपि ॥  
 बुद्धोऽपि बुद्धघनवानपि धामनोऽपि ।  
 मायासख सदासि याति ह्युत्त्वमेव ॥२४॥  
 आराभ्यमानस्य च देववृन्द । प्रपूज्यमानस्य हि साधुवृन्दम् ॥  
 निवेद्यमानस्य तु राजलोकं । न मायिन सिद्धयति कार्यजात(४)म् ॥२५॥

X X X X X

शारङ्गिक भाग —

इमे कथाया मुखसिद्धिवाधना इमे कथाया भयवृद्धिसाधका ॥  
 इमे कथाया नरकादिदुःखदा इमे कथाया बहुकल्पप्रदा ॥२६॥  
 कथायवान्तो हम्ने सुदर्शन कथायवान् ज्ञानमवैति नोऽऽबलम् ॥  
 कथायवान् चाद्वरितमुष्णति (१) कथायवान् मुष्णति शोभन तप ॥२७॥

यतः कपायैरिह जन्मवासे समाप्यते दुःखमनन्तपारम् ॥

हिताहितप्राप्तविचारदर्शरतः कपायाः खलु वर्जनीयाः ॥४०॥

इति कनककीर्तिमुनिना कपायजयभावना प्रयत्नेन ।

भव्यचित्तशुद्धयै (?) विनयेन समासतो रचिता ।

इति कपायजयचत्वारिंशत्समाप्तः ।

यह कपायजयभावना या कपायजयचत्वारिंशत् ४० पद्यों की एक छोटी सी रचना है । रचना छोटी होने पर भी साहित्यिकदृष्टि से भी इसके पद्य सुन्दर हैं । इसमें क्रोध, मान आदि कपायों से होने वाली अवस्था एवं हानि का दिग्दर्शन कराया गया है । इसके कर्ता कनककीर्ति मुनि हैं । मालूम नहीं होता है कि यह कनककीर्ति मुनि कौन हैं ? क्योंकि इस रचना में कहीं भी आप की गुरुपरम्परा आदि का कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है । सम्भव है कि 'अष्टाह्निकोद्यापन' आदि के कर्ता कनककीर्ति भट्टारक ही इसके रचयिता हों ।

(४७) ग्रन्थ नं०—६१  
क

## प्राकृतव्याकरण

कर्ता—श्रुतसागर

विषय—व्याकरण

भाषा—संस्कृत एवं प्राकृत

जम्माई ८॥ इच्छ

बीडार्ड ४॥ इच्छ

पत्रसंख्या १५२

प्रारम्भिक भाग —

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्दास्पदप्रदम् ।

पूज्यपादं प्रवक्ष्यामि प्राकृतव्याकृतं सताम् ॥

तवार्प च बहुलं तत्प्राकृतमृषिप्रणीतमार्पमनापं च बहुलमित्यधिकृतं वेदितव्यं । तत्र

अ श्रु ल ल् ए ऐ ओ ङ ञ ण व प्लुतविसर्गौ स्वरव्यञ्जनद्विवचनचतुर्थीबहुवचनानि

x

x

x

x

x

मध्यम भाग (पूर्व पृष्ठ ७३, पंक्ति २)—

श्रीकुंदकुंदसूरेर्विद्यानन्दिप्रभोश्च पादकंजम् ।

नत्वा च पूज्यपादं संयुक्तमतः परं वक्ष्ये ॥

स्रुंगमंगुक्तिभीमः लाटपहं । एतं विक्रममपि कथितसर्वगतम् ।  
 प्र(?)यस्तत्त्ववचनमुद्गातलोऽदृष्टि । कोपः करोति मविष्व जन विरेकः ॥  
 मो संशृणोति परिधानमपि श्यकांयं । भावदानि शूर्यापति हति क्रिपुः सुद  
 स्यात्सं(?) परं परिभयत्यपि मुक्तकेशः । कोपः विशावसदृगे स्वामनः ॥  
 कोपेन कश्चिद्वारं ननु हस्तुकामस्तनापसं स परिगृह्य कोपः मूढः ॥  
 स्थं निवेह्यपरमत्र विकल्पनीये । क्रिया विद्वःधनमसौ न करोति कोपः ॥

X X X X X

मध्य माग (पूर्व पृष्ठ ५, पक्ति ४) —

श्यामी नो कुपिता न चापि शरभी नैवान्तकी रासमी ।  
 द्रष्टव्येषां तथा न पावकशिखा नो शाकिनी डाकिनी ॥  
 नो वस्त्रानिहस्यमागपतितो सर्वस्य हानिं तपः ।  
 दुःखं भूरि यथा करोति रचिता माया मुष्णां सखती ॥२१॥  
 त्यनाशेषपरिग्रहा अपि संज्ञा विक्रान्तशाला अपि ।  
 शरवद्वारावशभेवतस्तपसा सपीडिताया अपि ॥  
 केचिद्गौरव(?) गौरवाद्धिहितया दुर्लस्यमायाया ।  
 मृत्वा यान्ति कुदेवयोनिमपया माया न किं तु तदा ॥२२॥  
 द्विद्रावलोक्तपरं सततं परेषां जिह्वाव्यंन भयदा न रिधान्वतम् ॥  
 भन्तविपाकहृदयं च खलस्वभावा । माया करोति हि नरं स भुजगचेष्टम् ॥२३॥  
 घोरोऽपि चाद्वरितोऽपि विवस्त्रणोऽपि ॥  
 शीलान्योऽपि सततं विनयान्वितोऽपि ॥  
 बुद्धोऽपि वृद्धधनवानपि धीधनोऽपि ।  
 मायासक्तः सवसि याति लघुत्वमेव ॥२४॥  
 आराध्यमानस्य च देवतुर्नः । प्रपूज्यमानस्य हि स्ताशुतुर्नम् ॥  
 निवेद्यमानस्य तु राजनीकं । न यादिन सिद्धयति कार्यजात(ल)म् ॥२५॥

X X X X X

प्राथमिक माग —

इमे कपाया सुखसिद्धिवाधका इमे कपाया भयवृद्धिसाधका ॥  
 इमे कपाया नरकाविदुःखदा इमे कपाया बहुकल्पप्रदा ॥३०॥  
 कपायवान्नी लभते सुवर्गल कपायवान् ज्ञानमवैति नोग्धलम् ॥  
 कपायवान् चाद्वरितमुष्णति (?) कपायवान् मुष्णति शोमनं तप ॥३१॥

की किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। क्योंकि पूर्व में ईडर, सुरत, सोजिना आदि कई स्थानों में भट्टारकों की गद्दियां रहीं हैं। हां, यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनन्दी भट्टारक थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्रुतसागरजी ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। वैराग्यमणिमाला के रचयिता श्रीचन्द्र आप ही के शिष्य हैं। आराधनाकथाकोष, नेमिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी श्रुतसागर को गुरुभाव से स्मरण किया है।\* नेमिदत्त ने भी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। श्रुतसागर की यशस्तिलक-चन्द्रिका, महाभिषेकटीका, तत्त्वार्थटीका, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका आदि अनेक रचनायें मिलती हैं। इनके सिवाय तर्कदोषक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कंधावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोष आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुये कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने उपलब्ध किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है। पं० नाथूरामजी प्रेमी का कहना है कि आप विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। प्रेमीजी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हेतु उपस्थित करते हैं—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिये दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोष के कर्त्ता व० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुये हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द्रजी की सं० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सं० १५५० लिखा हुआ है।

४—पट्टाभूतटीका में जगह जगह लौकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

अस्तु, श्रुतसागरजी के इस प्राकृतव्याकरण की यह भवन की प्रति अधूरी है। इस प्रति में द्वितीय अण्वाय के बाद केवल एक पत्र है। अतः समग्र प्रति को खोजने की जरूरत है।

\* देखें—'आराधनाकथाकोष' की प्रशस्ति।



को वा मृदुत्वकृष्णदण्डमुक्तशक्तेषु । मृदुत्वाविषु पञ्चसु शब्देषु य सयुक्तो धर्षस्तस्य  
ककारो भवति वा । मृदुत्व माउत्तण माउकण । कज्यतेस्म कृष्ण भुष्णपपयि (?)  
रोमादिना षक्रोभूते लुगो लुक्को दृष्ट । दण्ड दहो डक्को । मुक्त मुक्ता मुक्को ।  
शक्त सकना सकको ॥१॥ ए तस्य कृच्छौ च ष्वचित्त्तकारस्य खकारो भवति कृच्छौ  
षा ष्वचिद्ववत । लक्षण लखण । तय खड क्षीयते । रिज्जद् च्छिज्जद् खिज्जद् ।  
क्षीय रोण क्षीय खीय ॥२॥

x x x x x x

अन्तिम भाग —

इत्युभयभाषाकविवक्त्र रतिव्याकरणकमलमार्त्तगडतार्किकशिरोमणिपरमागमप्रधीणसूरि-  
श्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रशिष्यमुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिमट्टारकान्तेवासिश्रीमूलसद्यपरमात्मविदुस्वसुरिधीश्रुत  
सागरविरचिते श्रीशार्यचिन्तामणिनाम्नि स्वोपश्रवृत्तिनि प्राकृतव्याकरणे सयुक्ताव्ययनिरूपणो  
नाम द्वितीयोऽध्याय ।

इसके कर्त्ता आचार्य श्रुतसागर एक बहुश्रुत विद्वान् थे । पट्टाभूत की टीका से  
पत्र यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से ज्ञात होता है कि यह कलिकालसर्वज्ञ, कलिकालगौतम  
स्वामी उभयभाषाकविवक्त्रवर्ती आदि उपाधियों से विभूषित थे । इन्होंने ९९ महाराष्ट्रियों  
को पराजित किया था । श्रुतसागर जी मूलसद्य, सरस्वतीगण्ड और बलात्कारगण के  
आचार्य पत्र विद्यानन्दिमट्टारक के शिष्य थे । इनको गुरुपरम्परा इस प्रकार है—पद्मनन्दी-  
देवेन्द्रकीर्ति-विद्यानन्दी ।

प० नाथुरामजी प्रेमी का अनुमान है कि विद्यानन्दी भट्टारक के पट्ट पर भाषकी  
स्थापना नहीं हुई थी । क्योंकि प० आशाधर के महाभिषेक नामक ग्रन्थ की इनकी टीका  
के अन्त में विद्यानन्दी के वाद् की गुरुपरम्परा इस प्रकार है—विद्यानन्दी महिभूषण  
लक्ष्मीचन्द्र । इसमें विदित होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर महिभूषण की और  
उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी । यशस्तिलकटीका में श्रुतसागर ने महिभूषण  
को अपना गुरुज्ञाता लिया है । इसमें भी सिद्ध होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी  
महिभूषण ही हुए हैं ।

यशस्तिलकचन्द्रिकाटीका से मालूम होता है कि उस समय गुजरात देश के पट्ट पर  
भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र विराजमान थे और महिभूषण का प्रायः स्पर्धात्मक हो चुका था ।  
लक्ष्मीचन्द्र के वाद् भी श्रीश्रुतसागर के पट्टाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता  
है । सम्भव है कि यह मिहासनामीन हुये ही नहीं । उल्लिखित पद्मनन्दी, विद्यानन्दी  
आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुये हैं । परन्तु यह मालूम नहीं होता है कि गुजरात

की किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था। क्योंकि पूर्व में ईडर, सूरत, सोजित्ता आदि कई स्थानों में भट्टारकों की गद्दियां रहीं हैं। हां, यशस्तिलक की रचना के समय मालवे के पट्ट पर सिंहनन्दी भट्टारक थे। इन्हीं की प्रेरणा से श्रुतसागरजी ने नित्यमहोद्योत या महाभिपेक की टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे। वैराग्यमणिमाला के रचयिता श्रीचन्द्र आप ही के शिष्य हैं। आराधनाकथाकोष, नेमिपुराण आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी श्रुतसागर को गुरुभाव से स्मरण किया है।\* नेमिदत्त ने भी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। श्रुतसागर की यशस्तिलक-चन्द्रिका, महाभिपेकटीका, तत्त्वार्थटीका, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका आदि अनेक रचनार्य मिलती हैं। इनके सिवाय तर्कदोषक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कंधावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, वृहत्कथाकोष आदि और भी कई ग्रन्थ इनके घनाये हुये कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने उपलब्ध किसी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है। पं० नायूरामजी प्रेमी का कहना है कि आप विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। प्रेमीजी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित हेतु उपस्थित करते हैं—

१—ऊपर जिस महाभिपेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिये दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोष के कर्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुये हैं और वे श्रुतसागर के गुरुव्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द्रजी की सं० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० सं० १५५० लिखा हुआ है।

४—पट्टप्राभृतटीका में जगह जगह लौकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये।

अस्तु, श्रुतसागरजी के इस प्राकृतव्याकरण की यह भवन की प्रति अधूरी है। इस प्रति में द्वितीय अध्याय के षाड् केवल एक पत्र है। अतः समग्र प्रति को खोजने की जरूरत है।

\* देखें—'आराधनाकथाकोष' की प्रशस्ति।

(४८) ग्रन्थ नं०—६२  
क

## तत्त्वाथवृत्ति

कथा—भास्करानन्दी

विषय—दर्शनादि

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १३। ६५५

चौडाई ८॥ ६५५

पक्षपत्न्या १५४

प्रारम्भिक भाग—

जयन्ति पुनतध्यान्तपाटने पदुभास्करा ।

विद्यानन्दास्सती मान्या पूज्यपादा जिनेश्वरा ॥

अथातिविस्तारमन्तरेण विमतिप्रतिषेधनायापिष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरं तत्त्वार्थसूत्रपर  
विश्वरथ कियते तत्रादौ नमस्कारश्लोक —

मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार कर्मभूताम् ।

ज्ञातार विश्वतत्त्वानां धन्दे तदुगुणलब्धये ॥

× × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ८३, पंक्ति ६)—

“स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त पुद्गला”टोका—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्र स्पर्श, स च मूलभेदापेक्षयाष्टविधो सूक्ष्मकठिनगुणलघु  
शीतोष्णश्लिग्धकृत्तरिकृत्वात् । रस्यते रसनमात्र वा रस, स द्विपञ्चविध तिलाभ्रकटु  
कषायमधुरभेदात् । गन्धते गन्धनमात्र वा गन्ध, स द्विधा सुगन्धिरसुगन्धिभेदात् । ध्वस्यते  
ध्वसनमात्रं वा ध्वस, स पञ्चधा वृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् । त दत्ते भेदा उत्तरभेदोक्त  
रोत्तरभेदापेक्षया सरुयेयास्वरुयेयानन्तविकल्प्याश्च जायन्ते ।स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्ते सन्ति तेषां पुद्गलानां ते स्पर्शरस  
गन्धवर्णवन्त इति नित्ययोगेऽत्र मत्वर्थयित्स्य विद्यानं यथा स्त्रीरिणो न्यमोघा इति । ननु  
'रूपिण पुद्गला' इत्यत्र रूपाविनाभाविनां रसादीनामपि महणास्तेनैव सूत्रेण पुद्गलानां  
रूपादिमत्त्वे सिद्धे अनर्थकमिदं सूत्रमिति । नैव दोष । 'नित्यावस्थितान्यरूपाया' इत्यत्र सूत्रे  
धर्मादीनां नित्यत्वादिप्ररूप(या)या पुद्गलानामरूपत्वे मान्ते तान्निरासार्थं रूपिया पुद्गला

इत्युक्तम् । इदं तु सूत्रं परमतनिराकरणाच्चिकीर्षया पृथिव्यादीनां सर्वेषां पुद्गलादि-  
जातिविशेषाणां प्रत्येकं रूपादिचतुष्टयं साधारणं स्वरूपमित्येतस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थं कृतम् ।  
परमते हि स्पर्शरसगन्धवर्णावती पृथिवी । स्पर्शरसवर्णावत्यः आपः । स्पर्शवर्णावत्तेजः ।  
स्पर्शवानेव वायुरिति चत्वारश्चैक्यगुणाः जात्यन्तरेण स्थिताः पृथिव्यादय इत्युक्तम् । तच्च  
युक्त्यानुपपन्नमिति स्वप्नसाधनद्वारेण निराक्रियते । तथा ह्यापो गन्धवत्यः । तेजोगन्ध-  
रसवत् । वायुर्गन्धरसवर्णावान् स्पर्शनत्वात्पृथिवीपर्यायवदिति । एवमुक्तं तावद् युक्तिबला-  
त्पृथिव्यादीनां पुद्गलपर्यायत्वं पुद्गलानां च स्पर्शादिसाधारणगुणात्वमिदानीमसाधारणा-  
पर्याययोगिनः पुद्गलानाह ।

× × × × × × ×

अन्तिम भाग—

इति यः मुखबोधार्थां वृत्तिं तत्त्वार्थसङ्गिनीम् ।  
पद्सहस्रां सहस्रोनां विद्यात्संमोक्षमार्गं चित् ॥१॥  
यदत्र स्वलितं वात्र विद्वांसो देशप्राख्ययोः ।  
तद्विचार्यैव धीमन्तश्शोधयन्तु विमत्सराः ॥२॥  
नो निष्ठीव्येन्त शेते वदति च न परं ह्येहि पाहि तु याहि  
नो कण्डूयेत गात्रं व्रजति न नाशिनोद्ग्रह्येद्वानसे (?)  
नावष्टभ्नाति रेषुं निधिरिति . . . . . यो बद्धपर्यकयोगः ।  
कृत्वा संन्यासमन्ते शुभगतिरभयन् सर्वसाधुस्तपूज्यः ॥३॥  
तस्यासीत्सुविशुद्धदृष्टिविभवः सिद्धान्तपारङ्गतः ।  
शिष्यः श्रीजिनचन्द्रनामकलितश्चारित्रभूगन्वितः ॥  
शिष्यो भास्करनन्दिनामविद्युधस्तस्याभवत्तत्त्ववित् ।  
तेनाकारि मुखादिबोधविषया तत्त्वार्थवृत्तिः स्फुटम् ॥४॥

शशधरकरनिकरतारनिस्तलतरतलमुक्ताफलहारस्फुरत्तारानिकुरम्बविम्बनिर्दलतर-  
परमोदारशरीरशुद्धध्यानानलोज्ज्वलज्वालाज्वलितघनधाति घनसंघोतसकलविमलकेवललाव-  
लोकितसकललोकालोकस्वभावश्रीमत्परमेश्वरजिनपतिमतविततमतिचिदचित्स्वभावभावा-  
मिधानसाधितस्वभावपरमतमहासैद्धान्तजिनचन्द्रभट्टारकस्तच्छिष्यपण्डितश्रीभास्करनन्दि-  
विरचितमहाशास्त्रतत्त्वार्थवृत्तौ मुखबोधार्थां दशमोऽध्यायः समाप्तः ।

वृत्तिगत प्रशस्ति से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वृत्तिकार, परिडितवर भास्करनन्दी के  
श्रद्धेय गुरु श्रीजिनचन्द्र भट्टारक हैं । परन्तु इस नाम के कई आचार्य और भट्टारक हो

गये हैं, इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करजन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। प्रायुतः ५० नायूराम जी प्रेमा का अनुमान है कि सम्बन्धत धरणधेलोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करजन्दी के गुरु हैं।<sup>१३</sup> किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात को प्रेमा जी ने २२-१-४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं, जो 'धर्मसप्रहृष्याकावार' के कर्ता ५० मेधावी के गुरु और शुभचन्द्राचार्य के शिष्य थे। यह शुभचन्द्राचार्य परमेश्वर आचार्य के पट्टधर थे और पायडवपुराण आदि ग्रन्थों का रचयिता शुभचन्द्र से पहले हो गये हैं। ५० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रभृति' ग्रन्थ की दानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।<sup>१४</sup> इसी प्रकार एक भास्करजन्दी और हुए हैं, जिनका उल्लेख 'न्यायसुमुचन्द्र' की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिसध के आचार्य देवजन्दी के शिष्य एवं सौरभ्यजन्दी के प्रशिष्य हैं।<sup>१५</sup> इस समय मेर सामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करजन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति को प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि में भी यह वृत्ति श्रेष्ठ है। वास्तव में इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाँच हजार श्लोका में है। इसका प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अथवा, फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, बात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेंन्ट भोरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लक्ष्मप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् ५० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर हैं। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भट्टाकलक का 'कर्णाटकराजानुगासन,' करिमावंशमौम पत्र का 'आदिपुराण', नवसेन का 'धर्मावृत्त', जन्म का 'अनन्तनाथपुराण' आदि कई महत्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु मस्कृत ग्रन्था में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के सबध में मैसूर-सरकार जा उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन समाज मैसूर-सरकार का अथवा प्रगणो रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन कार्य और द्रुत गति में चलेगा। अब मेरे मन में आशा

\* 'नेत्र'—'सिद्धान्तसारादिमण्ड' में 'व धर्मावृत्त' परिचय'।

† यह 'प्रशस्ति' भवन में मौजूद है।

; देवे—'अनेकान' ४५१ पृ० १३३।

का संवार हो रहा है कि, मैसूर-ओरियन्टल-लायब्रेरी को उदार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्वार्यसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें ( प्रभाचन्द्रकृत आदि ), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति, विद्यानुशासन, एकसंधिसंहिता, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, संत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की द्वि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी ।

(४६)ग्रन्थ नं०  $\frac{६३}{५}$

## हरिवंशपुराण

कतां—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

मापा—अपम्रंश

जम्वाई १३॥ इञ्च

चौडाई ८॥ इञ्च

पत्रसंख्या १२१

प्रारम्भिक भाग —

पयडियजयहंसहो कुणयविहंसहो ।  
 भवियकमलसरहंसहो पणचिविजयहंसहो ॥  
 मुणयणहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो ॥  
 जय विसह विसंकियविसययास ।  
 जय अजिय अजिय ह्यकम्मपयास ॥  
 जय संभव भवतंवरकुठार ।  
 जय लोकनंदन परिसेसियकुणारि ॥  
 सुमई सुमयपयडियपयत्य ।  
 जय पउमहिप्पहि गाम्भियकुतित्य ॥  
 जय जय मुपाम ह्यकम्मपास ।  
 जय चंदप्पह ससितास तास ॥  
 जय सुविहि सुविहिपयडगपवीणा ।  
 जय सीयल जिनवाणिपवीणा ॥

गये हैं; इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करनन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। श्रौतुत पं० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवतः ध्वजध्वेनोल के ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करनन्दी के गुरु हैं।<sup>७</sup> किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस बात का प्रेमी जी ने २२-१-४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं, जो 'धर्मसंग्रहधावकाचार' के कर्ता पं० मेधावी के गुरु और शुभवन्द्राचार्य के शिष्य थे। यह शुभवन्द्राचार्य पद्मनन्दी आचार्य के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभवन्द्र से पहले हो गये हैं। पं० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रभृति' ग्रन्थ की दानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।<sup>८</sup> इसी प्रकार एक भास्करनन्दी और हुए हैं, जिनका उल्लेख 'न्यायकुमुदचन्द्र' की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिसय के आचार्य देवनन्दी के शिष्य एवं सौरज्यनन्दी के प्रशिष्य हैं।<sup>९</sup> इस समय मेर सामने और कोई सामग्रियाँ न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करनन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि से भी यह वृत्ति प्रौढ है। वास्तव में इसका मुखबोध नाम अन्वय है। वृत्ति लगभग पाँच हजार श्लोका में है। इसका प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य, फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, बात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेन्ट-ओरियन्टल-सायन्सरी की ओर से यह ग्रन्थ गीम ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लघ्वप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् पं० शान्तिराज जी गाल्खी, मैसूर हैं। यों तो उक्त सायन्सरी की ओर से अभी तक भद्रकालक का 'कर्णाटकशास्त्रानुशासन,' कविसार्धभौम पप का 'भाद्रिपुराण,' नयमेन का 'धर्मामृत,' जल्ल का 'अन्तनाथपुराण' आदि कई महत्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु मसूत ग्रन्था में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के मन्त्र में मैसूर-सरकार जो उदारता दिखला रही है, उसके लिये जैन समाज मैसूर-सरकार का भयद्वय कर्णी रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से भव यह प्रकाशन-कार्य और द्रुत गति में चलेगा। भव मेर मन में आशा

\* देखें—'मिश्रालम्बारादिकण्ड' में 'प वकलाभोंका परिचय'।

† यह 'प्रशस्ति' अन्न में मौजूद है।

: देखें—'अनेकी' का १ पृ० १११।

का संचार हो रहा है कि, मैसूर-ओरियन्टल-लायब्रेरी को उदार पत्र गुणग्राहिणी कमेटी तत्त्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें (प्रभाचन्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति, विद्यानुशासन, एकसंधिसंहिता, सिद्धिविनिश्चयटीका, न्यायविनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की द्वि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तसमुच्चय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी ।

(४६)ग्रन्थ नं०  $\frac{६३}{५}$

## हरिवंशपुराण

कर्ता—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

तम्बाई १३॥ इञ्च

चौड़ाई ८॥ इञ्च

पत्रसंख्या १२१

प्रारम्भिक भाग —

पयडियजयहंसहो कुणयविहंसहो ।  
 भवियकमलसरहंसहो पगविविजयहंसहो ॥  
 मुगयणहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो ॥  
 जय विसह विसंकियविसययास ।  
 जय अजिय अजिय ह्यकम्मपयास ॥  
 जय संभव भवतरुंवरकुठार ।  
 जय लोकनंदन परिसेसियकुणारि ॥  
 सुमई सुमयपयडियपयत्थ ।  
 जय पउमहिप्पहि गासियकुत्तित्थ ॥  
 जय जय सुपास ह्यकम्मपास ।  
 जय चंदप्पह ससितास ताम ॥  
 जय सुविहि सुविहिपयडणपवीण ।  
 जय सीयल जिनवाणपवीण ॥



गये हैं; इसलिये निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि भास्करनन्दी के गुरु जिनचन्द्र कौन हैं। श्रेष्ठ पं० नाथूराम जी प्रेमी का अनुमान है कि सम्भवतः अथर्ववेदके ५५वें शिलालेख में अंकित जिनचन्द्र भास्करनन्दी के गुरु हैं।<sup>७</sup> किन्तु यह केवल अनुमानमात्र है। इस घात को प्रेमा जी ने २२-१-४१ के अपने हाल के पत्र में भी स्पष्ट कर दिया है।

जिनचन्द्र नाम के एक और आचार्य हो गये हैं, जो 'धर्ममंग्रहध्यायकाचार' के कर्ता पं० मेधावी के गुरु और शुभवन्द्याचार्य के शिष्य थे। यह शुभवन्द्याचार्य पद्मनन्दी आचार्य के पट्टधर थे और पाण्डवपुराण आदि ग्रन्थों के रचयिता शुभवन्द से पहले हो गये हैं। पं० मेधावी ने 'त्रैलोक्यप्रसूति' ग्रन्थ की दानप्रशस्ति में उनका विशेष परिचय दिया है।<sup>८</sup> इसी प्रकार एक भास्करनन्दी आरु हुए हैं, जिनका उल्लेख 'न्यायकुमुदचन्द्र' की वृत्ति में उपलब्ध होता है। यह नन्दिस्य के आचार्य देवनन्दी के शिष्य एवं सौख्यनन्दी के प्रशिष्य हैं।<sup>९</sup> इस समय मेरे नामने और कोई सामग्री न होने के कारण तत्त्वार्थवृत्ति के रचयिता भास्करनन्दी के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालने में मैं विवश हूँ। अस्तु, इसमें शक नहीं है कि प्रस्तुत तत्त्वार्थवृत्ति की प्रतिपादनशैली सुन्दर और सुगम है। भाषा की दृष्टि में भी यह वृत्ति प्राढ है। वास्तव में इसका सुखबोध नाम अन्वर्थ है। वृत्ति लगभग पाँच हजार श्लोकों में है। इसकी प्रतिपादनशैली प्रायः राजवार्तिक से मिलती-जुलती है। राजवार्तिक से यह ग्रन्थ छोटा है अवश्य, फिर भी उसमें अनुपलब्ध कुछ वाक्य इसमें मिलते हैं।

बड़े हर्ष की बात है, ज्ञात हुआ है कि मैसूर-गवर्नमेन्ट-ओरियन्टल-लायब्रेरी की ओर से यह ग्रन्थ जीव ही प्रकाशित होने वाला है। इसके सम्पादक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् श्रीमान् पं० शान्तिराज जी शास्त्री, मैसूर हैं। यों तो उक्त लायब्रेरी की ओर से अभी तक भद्रकालक का 'कर्णाटकशास्त्रानुशासन', कविसावंभौम पप का 'आदिपुराण', नयसेन का 'धर्माश्रित', जन्न का 'भर्तृहरिसुपुराण' आदि कई महत्वपूर्ण कन्नड जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु मस्हत ग्रन्थों में यह तत्त्वार्थवृत्ति ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। जैनसाहित्य प्रकाशन के सबध में मैसूर सरकार जो उदारता दिखाना रही है, उसके लिये जैन-समाज मैसूर-सरकार का अवश्य ऋणी रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि उपर्युक्त मान्य शास्त्री जी के सहयोग से अब यह प्रकाशन कार्य और द्रुत गति में चलेगा। अब मेरे मन में आशा

\* देने — 'सिद्धान्तपारादिमण्ड' में 'प्रयत्नार्थोका परिचय'।

† यह प्रशस्ति भवन में मौजूद है।

‡ देने — 'अनेकान' पृ १ १० ११३।

का संचार हो रहा है कि, मैसूर-ओरियन्टल-लायब्रेरी को उदार एवं गुणग्राहिणी कमेटी तत्त्वार्थसूत्र की अन्य अप्रकाशित टीकायें (प्रभान्द्रकृत आदि), शाकटायनन्यास, शाकटायनमहावृत्ति, विद्यानुशासन, एकसंधिसंहिता, सिद्धिचिनिश्चयटीका, न्यायचिनिश्चय-विवरण, सत्यशासनपरीक्षा, लोकविभाग, सिद्धान्तसारदीपक, द्विसंधानकाव्य की दि० जैन टीका, वसुनन्दि-प्रतिष्ठापाठ, सटीक प्रायश्चित्तममुचय आदि महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर भी अवश्य ध्यान देगी।

(४६)ग्रन्थ नं०  $\frac{६३}{८८}$

## हरिवंशपुराण

कतां—यशःकीर्ति

विषय—पुराण

भाषा—अपभ्रंश

नम्बई १३॥ इब्च

चौडाई ८॥ इब्च

पारम्भिक भाग —

पयडियजयहंसहो कुणयविहंसहो ।  
 भवियकमलसरहंसहो पणविजयहंसहो ।  
 मुणायणहंसहो कह पयडमि हरिवंसहो ॥  
 जय विसह विसंकियविसययास ।  
 जय अजिय अजिय हयकम्मपयास ॥  
 जय संभव भवतखरकुठार ।  
 जय लोकरन्दन परिसेमियकुणारि ॥  
 सुमडं सुमयपयडियपयत्थ ।  
 जय पउमहिप्पहि गामियकुतित्थ ॥  
 जय जय सुपास हयकम्मपास ।  
 जय चंडप्पह ससितास ताम ॥  
 जय सुविहि सुविहिपयडणपवीण ।  
 जय सीयल जिनवाणपवीण ॥

जय मेघ मेघकिय त्रिगयमेघ ।  
 जय वासुपुत्र तरजलहिसेव ॥  
 जय विमल विमलगुणगण महत ।  
 जय सत वत जिगशर अनत ॥  
 जय धम्म धम्मविसहरित ताव ।  
 जय मति ममिधम्मसारताव ॥  
 जय कुंध सुरकियानुहुमयाणि ।  
 जय भरि जिगचक्रो सयलणाणि ॥  
 जय मलि गिहयति गोकमह ।  
 जय मुणिसुब्बय चूरिय तिमह ॥  
 जय गमि जिग विसरहचक्रणोमि ।  
 जय जहियराय रायमइणीमि ॥  
 जय पास पापरजअपरबाल ।  
 कुल गयणि दिगोसग सुरणिभमहियमाण ॥  
 जय बीर विहानिपणयपमाण ।  
 × × ×

मध्य भाग (पृष्ठ ५४, पंक्ति ४) —

मन्त्रंक्षय्य पर्वभाजे सर्वदा ध्रमरायते ।  
 भाव पुर्ममं साधु (?) घोटाक्यो र्वंदां चिरं ॥  
 स अण्णे वामरे उग्गण्णे सरं ।  
 पडु सहाडरविट्टु ता एक्के दूर्णं सपिणयभूर्यं ॥  
 करमउलेणुण विट्टु विणवय सो जि भो मिसुखि देव ।  
 मड्डिणार गाहहि विहिय सेव माय दिक्खरि  
 पडु दुमहु राउ पिय सुन्दरि ।  
 देरहि वद्धराउ हं पेसिउ तुम्हह पासु तेण ॥  
 मिसुणहं आयउ कज्जो ण जेण ।  
 दुमयहो सुय बीरइ अय विणीय  
 क्वेषो पीइ मीलेण मीय वाणहं वड्डहं जणमणहं इड  
 सिगारु करति णव्वंण दिट्ठि  
 जेवणरति य जाणो विराउ

परिणावमि यद्देह बहु भाउ  
 गोमितिय वयणो गाड चल्लेइ  
 जोपहावे ह्य तासु देइ  
 अमंतिय गारवइ सब्ब आय  
 तुम्हह आपसिय आम्हि राय  
 गिय गांवरु लेप्पिय वेइ चल्लेइ  
 पह्ठु अण्णमत्तु मा कियि करइ  
 बद्धाहरणाहि पुज्जियउ दूउ  
 दुमयहे सहाप जो सारभूउ  
 पुण्ण पंडवियरु सरम्भुह विचरकु  
 चल्लिय कंतिययो सिय सपरकु  
 पंडय<sup>१</sup>कुमायंदि पाइं संपता सम्माणियन्न ताइं  
 × × ×

श्रुतिम भाग—

द्विवादा जसमुणि पत्यय विचुवि ।  
 फाणाविउ हरिवंस चरित्तु वि ॥  
 जामहिणाहु सायक चंडु दिवावरु ।  
 तागांदउ द्विवादाहु कुल्लु जे विराहु हि चरियउ कुरुवं सहंसहियउ  
 फाराविउ ह्यपायमालु ॥२२॥

इय हरिवंस पुराणे कुरुवंसाहिद्विप विवुहुचिच्चारंजणे ।  
 सिरि गुणकित्तिसीसमुणिजसकित्तिविरिद्वये ॥  
 साहु द्विवादा गाम किप गोम पांह जुधिष्ठिर भीमज्जुण गिच्चारण गमणं ।  
 णिकुल सहदेव सब्बट्ट सिद्धिगमगावणोते रह सो सम्भो

समत्तो ॥ सधि ॥

इस हरिवंशपुराण के रचयिता, गुणकीर्त्ति के शिष्य यशःकीर्त्ति हैं । श्रवणवेल्लोल के शिलालेखों में गुणकीर्त्ति नाम के दो व्यक्तियों का उल्लेख उपलब्ध है अवश्य, परन्तु उन लेखों में इनका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता । इस नाम के और भी कई व्यक्ति हो गये हैं, किन्तु हरिवंश-पुराण के कर्त्ता इन यशःकीर्त्ति से उनका सम्बन्ध देखने में नहीं आता । ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता है कि यशःकीर्त्ति ही हरिवंश-

जय मेय मेयक्रिय शिष्यमेय ।  
 जय घासुपुत्र तरङ्गलहिमेय ॥  
 जय त्रिमल त्रिमलगुणगण महत् ।  
 जय सत दत्त त्रिगुणवत् अनन्त ॥  
 जय धम्म धम्मत्रिमहरित ताव ।  
 नय मति समियसत्सारताव ॥  
 जय कुच सुरक्रियतुहुमयाणि ।  
 जय भरि त्रिगुणवक्त्री स्वयल्लयाणि ॥  
 जय महि गिहयति लोकमहत् ।  
 जय मुणिसुख्य शूरिय तिमहत् ॥  
 जय गमि त्रिण विसरह्वक्त्रणोमि ।  
 जय जहिपराध रायमङ्गोमि ॥  
 जय पाम पापत्रजभयवत्वाल ।  
 कुल गयणि त्रिणोसरा सुरगिम्महियमाण ॥  
 जय वीर विहासियणयपमाण ।  
 × × ×

मध्य भाग (पृष्ठ १४, पक्ति ४) —

सर्वशस्य पदाभाजे सर्वदा समरायने ।  
 भानु पुर्मम साधु (?) घोटाण्यो = कृतां चिर ॥  
 स भ्रमणे धामर उगाहणे सरे ।  
 पङ्क सहाउपचिह्नत ता मक्के दूय सविणयभूयं ॥  
 करमउलेपुण दिह्ण त्रिणय सौ जि भो शिसुणि देव ।  
 मङ्गिणार गाहहि विहिय मेव माय विगयदि  
 ण्ह दुमहु राउ पिय सुन्दरि ।  
 देवहि चक्रराउ ह पेसिउ तुम्हह पानु तेण ॥  
 गिसुणहुं आयउ कजा ण जेण ।  
 दुमयहो सुय दोयइ अय विणीय  
 रुवेण पीइ सीलेण नीय पाणह धरुह जणमणह इह  
 सिमारु करति एवेण दिदि  
 जेवणयति य जाणे पिराउ

अजितं जितकन्दर्पं तं नमामि जगद्धितम् ।  
 यो जितो नेत्रे पृतात्मा रागद्वेषादिशत्रुभिः ॥५॥  
 सम्भवं भवसन्तापसन्दोहक्षयकारकम् ।  
 वन्देऽभिनन्दनं देवं देवदेवाधिनायकम् ॥६॥  
 संस्तुवे सुमतिं देवं भव्यानां सुमतिप्रदम् ।  
 पद्मप्रभं प्रमाधीशं प्रसिद्धमहिमास्पदम् ॥६॥  
 श्रीसुपोश्वं जगत्सारं सम्पदा शर्मसाधनम् ।  
 चन्द्रप्रभं प्रमासारं सर्वसंक्लेशनाशनम् ॥२०॥  
 पुष्पदन्तं लसत्कुन्दपुष्पसत्कान्तिसुन्दरम् ।  
 वन्देऽहं शीतलं देवं शीतलोत्तमवाग्भरम् ॥११॥  
 श्रेयोजिनं नमाम्युच्चैः सारश्रेयोनिबन्धनम् ।  
 वासुपूज्यं जगत्पूज्यं प्रबुद्धकमलाननम् ॥१२॥  
 नमामि विमलाधीशं केवलज्ञानभास्करम् ।  
 वन्देऽनन्तजिनं भक्त्यानन्तानन्तसुखाकरम् ॥१३॥  
 धर्मं सद्धर्मतीर्थेशं सुरासुरसमर्चितम् ।  
 शान्तिनाथं भजाम्येतं सर्वभयैकसम्मतम् ॥१४॥  
 वन्दे कुन्धुजिनाधीशं कुंश्वादीं च दयास्पदम् ।  
 श्ररं देवं सदा वन्दे सारं साररमाप्रदम् ॥१५॥  
 मल्लिं मोहारिसन्मल्लं वन्दे निःशल्यधामकम् ।  
 सुवतं तं नमाम्येतं मुनिसुवतनायकम् ॥१६॥  
 श्रीनेमिं संस्तुवे देवं नमद्देवन्द्रसंस्तुतम् ।  
 नेमिनाथं जगन्नाथं वन्दे सर्वामराचितम् ॥१७॥  
 प्रसिद्धमहिमासारं पाण्डवनाथं जिनेश्वरम् ।  
 वन्दे श्रीवीरतीर्थेशं वीरवीरं सुखाकरम् ॥१८॥  
 एते तीर्थकराधीशाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः ।  
 सन्तु मे शान्तिकर्त्तारश्चान्ये कालत्रयोद्भवाः ॥१९॥  
 त्रैलोक्यशिखरारूढाः सिद्धाः संसारपारणाः ।  
 ते मे नित्यं समाराध्याः सन्तु सत्कार्यसिद्धिदाः ॥२०॥  
 वन्देऽहं भारतीं जैनीं जगद्गुह्यान्तविनाशिनीम् ।  
 भासिनीं सर्वतत्त्वानां भानुभामिव निर्मलाम् ॥२१॥

पुराण के प्रणेता यशकीर्ति क गुरु हैं। इसी प्रकार यश कीर्ति नाम के भी अनेक ३ हों गये हैं, जैसे—एक गोपबन्दी के शिष्य ४ दूसरे धर्मशर्माम्बुद्वय के टीकाकार हर्ष कीर्ति के शिष्य। सारांश यह है कि इस हरिवंश पुराण के रचयिता यशकीर्ति क उनके गुरु गुणकीर्ति का विशेष परिचय मुझे प्राप्त नहीं हो सका, इसलिये ३ सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला जा सका।

(५०) ग्रन्थ नं० ६६  
क

## नेमिपुराण

कृत्ता—प्रज्ञवादी नेमिदत्त

विषय—उपदेश

भाषा—संस्कृत

लम्बाई १२ इंच

चौड़ाई ६॥ इंच

पत्रसंख्या १६

प्रारम्भिक भाग—

धीमन्नेमिनिर्न नन्वा लोकालोकप्रकाशकम् ।  
तत्पुराणमहं वक्ष्ये भगवतां मौल्यव्यायकम् ॥१॥  
नमद्देवेन्द्रमौलीनां नमस्कान्तिसरोजले ।  
यस्य वाङ्मयं प्राप प्रोहमत्कमलधियम् ॥२॥  
मर्ममौल्यसन्तोहं मर्मज्ञसमर्पित ।  
योऽमरमर्ममौल्यानां कारणं मध्यदेहिनाम् ॥३॥  
यस्य नामस्मृतिश्चापि करोति परमं सुखम् ।  
प्रभा या भास्करस्योच्चैर्धिकाश कमलाकरे ॥४॥  
त नमामि जगत्सारं श्वर्गमोहमुत्प्रशम् ।  
नेमिनार्यं प्रशामनया तत्पुराणमसिद्धये ॥५॥  
एन्द्रे धोवृषभापीनां सुरार्थिणां विनयमम् ।  
येनाग्येषापि मद्धर्मा विनेयानां विनायकम् ॥६॥

अजितं जितकन्दर्पं तं नमामि जगद्धितम् ।  
 यो जितो नैव पूतात्मा रागद्वेषादिशत्रुभिः ॥५॥  
 सम्भवं भवसन्तापसन्दोहक्षयकारकम् ।  
 वन्देऽभिनन्दनं देवं देवदेवाधिनायकम् ॥६॥  
 संस्तुवे सुमतिं देवं भव्यानां सुमतिप्रदम् ।  
 पद्मप्रभं प्रभाधीशं प्रसिद्धमहिमास्पदम् ॥६॥  
 श्रीसुषोडशं जगत्सारं सम्पदा शर्मसाधनम् ।  
 चन्द्रप्रभं प्रभासारं सर्वसंक्लेशनाशनम् ॥१०॥  
 पुष्पवन्तं लसत्कुन्दपुष्पसत्कान्तिसुन्दरम् ।  
 वन्देऽहं शीतलं देवं शीतलोत्तमवाग्भरम् ॥११॥  
 श्रेयोजिनं नमाम्युच्चैः सारश्रेयोनिबन्धनम् ।  
 वासुपृज्यं जगत्पृज्यं प्रबुद्धकमलाननम् ॥१२॥  
 नमामि विमलाधीशं केवलदानभास्करम् ।  
 वन्देऽनन्तजिनं भक्त्यानन्तानन्तसुखाकरम् ॥१३॥  
 धर्मं सद्धर्मतीर्थेशं सुरासुरसमर्चितम् ।  
 शान्तिनाथं भजाम्येतं सर्वभयैकसम्मतम् ॥१४॥  
 वन्दे कुन्धुजिनाधीशं कुंथ्वाद्यौ च दयास्पदम् ।  
 अरं देवं सदा वन्दे सारं साररमाप्रदम् ॥१५॥  
 मल्लिं मोहारिसन्मल्लं वन्दे निःशल्यधामकम् ।  
 सुव्रतं तं नमाम्येतं मुनिसुव्रतनायकम् ॥१६॥  
 श्रीनेमिं संस्तुवे देवं नमद्देन्द्रसंस्तुतम् ।  
 नेमिनाथं जगन्नाथं वन्दे सर्वाभिरार्चितम् ॥१७॥  
 प्रसिद्धमहिमासारं पार्वनाथं जिनेश्वरम् ।  
 वन्दे श्रीवीरतीर्थेशं वीरवीरं सुखाकरम् ॥१८॥  
 एते तीर्थकराधीशाः सर्वदेवेन्द्रवन्दिताः ।  
 सश्रु मे शान्तिकर्तारश्चान्ये कालत्रयोद्भवाः ॥१९॥  
 त्रैलोक्यशिखरारूढाः सिद्धाः संसारपारगाः ।  
 ते मे नित्यं समाराध्याः सन्तु सत्कार्यसिद्धिदाः ॥२०॥  
 वन्देऽहं भारतीं जैनीं जगद्भ्रान्तविनाशिनीम् ।



रत्नत्रयपरिज्रायां मुनीनां शर्मकारिणाम् ।  
 पादाम्भोजद्वय यन्ने ससाराभ्युधितारणम् ॥२२॥  
 शुद्धश्रीमूलसहाय्यं प्रोक्तुङ्गोदयभूधरे ।  
 भानुर्महार्क स्वामा जीयान्मे मल्लिभूषण ॥२३॥  
 × × × ×

मध्यभाग—( पूर्व पृष्ठ ७१, पक्ति १० ) \*

गाढडोपपत्रौघे प्रमूने पद्मरागजे ।  
 धर्मो चैत्यद्रुमो नित्य भवधानां विश्वरज्जक ॥  
 तत्पुष्पप्रचुरामोदससनम्रमरारथे ।  
 सन्तापार्चनैत्यवृत्तोऽसी चक्रो वा सस्तुति प्रमो ॥  
 महाघग्निनादेन घोषयन्निध निर्मलम् ।  
 मोहारातिजयाज्ञात यशो नेमिजिनेशिन ॥  
 ध्वजांशुर्गजोकोऽसौ पयनान्दोलितैर्मुदा ।  
 स्फेदयन् वा धर्मो गाढ जनानां पापसञ्चयम् ॥  
 × × × ×

अन्तिम भाग—

गच्छे धीमतिमूलसद्यतिलके सारस्वतीये शुभे  
 विद्यानन्दिप्रपट्टशुक्लकमलोद्भासप्रदा भास्कर ।  
 ज्ञानध्यानरत प्रसिद्धमहिमा चारित्र्यव्यूडामयि  
 धीमहार्कमाल्लिभूषणशुक्लजीयात् सतां भूतले ॥  
 प्रोद्यत्सम्पत्तवरणो जिनकथितमहासतभगोतरणै-  
 निर्धूतैकान्तमिथ्यामतमलनिकरकोधनवादिदूर ।  
 धीमग्नेनेन्द्रधाक्यामृतविशद्वरस धीजिनेन्द्रप्रवृद्धि  
 जीयान्मे सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपण्य- धृताग्नि ॥  
 मित्यादादायकारक्षयकरणादि धीजिनेन्द्रमिषय  
 हृद्वे निर्द्धमर्त्तिजिनगदितमहाज्ञानविज्ञानसिन्धु ।  
 चारित्र्योत्कृष्टभारो भवभवहरणो भव्यलोकैकबधु  
 जीयादाचार्यवर्या विशदगुणनिधि सिंहनन्दी मुनीन्द्र ॥

\* मध्य भाग और अन्तिम भाग भवन की १११ नं० वाली प्रति से ली गई है, क्योंकि प्रस्तुत प्रति बहुत थगुद है ।

यस्योपदेशवगतो जिनपुंगवस्य  
 नेमेः पुराणमतुलं शिष्यमौग्यकारि  
 चक्रु मयापि अतितुच्छतयाव भक्त्या  
 कुर्याद्विदं शुभमतं मम मङ्गलानि ॥  
 शान्तिं कान्तिं सुकीर्त्तिं सकलसुखयुतां सम्पदाञ्चायुरुच्चैः  
 सौभाग्यं साधुसंगं गुरुपतिमहितं मारजैनेन्द्रधर्मम् ।  
 विद्यां गोत्रं पवित्रं मुज्जनजन .....  
 श्रीनेमेः सत्पुराणम् ..... ॥

भुवनेकचूडामणिश्रीनेमिजिनपुराणे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणशिष्याचार्यश्रीसिंहनन्दि-  
 नामाङ्किते ब्रह्मनेमिदत्तचिरचिते श्रीनेमितीर्थद्वारपरमदेवपञ्चमश्लयाणकव्यावर्गानो नाम  
 पद्मनाभनवमबलदेवरुणनाभनवमनारायणजगसन्धनामप्रतिनारायणचरित्रत्रयावर्गानो नाम  
 षोडशोऽधिकारः समाप्तः ।

यह ब्रह्मचारी नेमिदत्त वि० सं० १५७५ के हैं। इन्होंने वर्धमानपुराण, धर्मपीयूषवर्षण-  
 श्रावकाचार, आराधनाकथाकोष, श्रीपालचरित्र, प्रियंकरचरित्र आदि कई ग्रन्थों की रचना  
 की है। इनमें से एक-दो ग्रन्थ छप भी चुके हैं। मूलसंघ एवं सरस्वती गच्छवाले  
 श्रीभट्टारक मल्लिभूषण के यह शिष्य हैं। प्रशस्ति में इन्होंने सिंहनन्दी जी की बड़ी प्रशंसा  
 की है और लिखा है कि इन्हीं की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का मैंने प्रणयन किया है।  
 नेमिदत्त जी ने आराधनाकथाकोष की प्रशस्ति में 'यशस्तिरुचन्द्रिका' आदि के कर्त्ता,  
 श्रीश्रुतसागरसूरि को गुरुभावना से स्मरण किया है और इन्होंने इस ग्रन्थ में मल्लिभूषण  
 की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है। नेमिदत्त जी की  
 रचनायें साहित्यिक दृष्टि से सुन्दर एवं सरल हैं।

(५१) ग्रन्थ नं० ६८  
क

## वर्द्धमानकाव्य

कृता—जयमित्र

विषय—काव्य

भाषा—अपभ्रंश

नं वाई १२। इ०८

चौडाई ६॥ इ०८

पत्रसंख्या ५६

प्रारम्भिक भाग—

सिरि परमप्ययभारण सुहगुणपारण ।

त्रियक्षिय चम्भ चरामरण ॥

सासयसिरसुदक पणयपुरदक ।

रिसदु गणिवि तिहुयणसरण ॥

पणवेणिसु पुण अरहंताण दुक्कम्ममहात्कियताण ।

यसुगुणमजेयसमिद्धाण सिद्धाण त्रिययपसिद्धाण ॥

मूराण सुद्धमरित्ताण ययनचमभारियचित्ताण ।

पयडियसममासस्मायाण भययणहो गिठउक्कायाण ॥

माहुण साहिय भाक्खाण सुगिसुद्ध भ्रुणगिदि द्धक्खाण ।

समत्तणाणसुवरित्ताण मति सुद्धप गवमि पयित्ताण ॥

धसहाइसुगातमणा भाण सुगणाण सज्जम धामाण ।

अरहारियेवल्लयताण ॥ पुर रिरप गिस्ताल महत्ताण ॥ यत्ता ॥ जल्लोयहो मडगा  
कुणायरिहउगा ॥ तिहिसमयहि पयडिय सम्भय ॥ अवररि सिच्छुकर तिययसुहुकर ॥ तिप्य  
सुर सिय गपरिया ॥ १॥ पयणपचिति यत्ता दुम्भेदह वितामणि यममल समीहहं ॥ रिय  
दित्त यतमभरणि यासिण जण गिय धदिय सुर कुट्टामणि ॥ सण महिय सुरसब्ब  
रिहसिया गिरिभूयचिक्काहिहुल्लहिसमामिय ॥ भोट धराय हस गयमामिणी कोमुणं कुवण्य  
निरिदाविणी ॥ अक्खियण मुहन सासण देयिउ कामेसउ त्रियार पयमेरिउ ॥

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ २७, पंक्ति ५) —

तुं सुणिवि पयंपर मगहराउ किं साहुलपियकह बहु पलाउ ॥ मुणि कि अयाणु अर्हाह  
कि असंक्कु जं दुख सहेसइ तजि थक्कु ॥१०॥ तां चेलणाह जंपिउ गारेंदु गाउ तजइ  
नाणडिउ मुणिडु ॥ जद्वि रगु वक्कुगुरुवतगजेम कुडिच्छ दिविस गुरुण जाइ तेम ॥  
उवसणु होंतुमणे विलाहु दुक्खवि सुक्खोगमुमुणइ साउ ॥ गाउ सिंदइ मद्धरु मणि धरेइ  
सुरसंसाणा इंतो सुण करइ ॥ तिणु कुवणि अरिसुहिसम गिरांतु तव तवइ थोरु कम्मइ  
हणंतु ॥ वावीस परोसह सहणमल्लु वंभूवय धारउ मुणणिसल्लु ॥ गाणो परियाण इणोय  
मणु णविरो कारिणी उवलंतहु महुपहु ॥

×

×

×

×

प्रन्तिम भाग —

अथ संवत्सरेऽस्मिन् श्रीनृपविक्रमादित्यराज्यसंवत्सर १६०० तत्र वर्षे फाल्गुनमासे  
रुणपक्षे द्वितीयायां तियाँ शुक्रवासरे श्रीतिजारास्थानवास्तव्यो साहि आलमुराज्यप्रवर्त्तमाने  
श्रीकाण्डासंवे माथुरान्वये पुष्करगणो भट्टारकश्रीमलयकोत्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणभद्र-  
देवाः तदाज्ञाये अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे साहु तोल्हा भार्या राणी तस्य पुत्रः जिनदासः तस्य  
भार्या शोभा तत्पुत्राः पञ्च प्रथमपुत्रः साधुमहादासुः द्वितीयपुत्रः साधुगेल्हा तृतीयपुत्रः  
साधनुगराजुः चतुर्थपुत्रः जगराजुः पञ्चमपुत्रः साधुसिंहः जिनदासप्रथमपुत्रः महादासुः तस्य  
भार्या दोदासही तस्य पुत्रः तेजनुः तस्य भार्या लाडो जिनदासद्वितीयपुत्रः गेल्हा तस्य  
भार्या खोमाहो तस्य पुत्रो दोमानुः तस्य भार्या भागो तस्य पुत्रः नगराजः तस्य  
भार्या धणपालही पुत्राः चत्वारः प्रथमपुत्रो जीवन्दुः तस्य भार्या भीख्यो द्वितीयपुत्रः  
अभियपालः तृतीयपुत्रः गजः चतुर्थो दरगहमलुः जिणदासपुत्रः चतुर्थः जगराज्यः तस्य भार्या  
धोनाहो तस्य तृतीयः बुच्छा तस्य भार्या चादिणी द्वितीयपुत्रः मसक् तृतीय तोतू  
जिनदासपञ्चमपुत्रः सोदू तस्य भार्या दूतस्य भार्या लष्मणयही तस्य .....चतुर्थभार्या कपूरी  
पतासां मध्ये साधुसोन्न इन्द्रश्रीश्रेणिक तासु नानोवरणीकर्मक्षत्रियणी तेन (तेयां ज्ञाना-  
वरणकर्मक्षत्रियार्थे) आत्मपठनार्थं कर्मक्षत्रनिमित्तं लिख्यते ।

इस अपभ्रंश काव्य के रचयिता पण्डित जयमित्र मालूम होते हैं। क्योंकि इसमें  
एक जगह सर्ग के अन्त में 'इय पंडिया सिरी जयमितह हल्लवि (?) विरइये बडुमाणकाव्ये'  
यों स्पष्ट अङ्कित है। परन्तु यह जयमित्र कौन हैं, यह पता नहीं लगता। ग्रन्थ में रचयिता  
की प्रशस्ति आदि कुछ भी नहीं है। हां, प्रतिकराने वाले की वि० सं० १६०० की एक  
प्रशस्ति लगी हुई अवश्य। भवन को यह प्रति बहुत अशुद्ध है। इसकी दूसरी शुद्ध  
प्रति की प्राप्ति से संभवतः ग्रन्थकर्ता जयमित्र का कुछ विशेष हाल मालूम हो सकता है।

(५२) ग्रन्थ नं०  $\frac{५९}{६६}$  +

## जिनसहस्रनामटीका

कृत — आचार्य धृतसागर

विषय स्तौत्रविषयिणी टीका

भाषा—संस्कृत

ला०वाई १ ३२५

बीड ई ७ ३२५

पुस्तकालय १२७

प्रगति मन्द —

ध्यात्वा विद्यान् समतभद्र मुनीन्द्रमर्हन्तम् ।

धामत्मसहस्रनाम्नां विवरणमहर्षेभ्यः समिद्धैः ॥

अथ ध्यानदाशाधरसूरिगृहस्थाचार्यवर्या नित्यशास्त्रिकृतदाशायत्रीणस्तर्कलाकरणद्वरे-  
 ऽकारमाहित्यसिद्धातस्वसमयपरममयगमनिपुणतुष्टिः ससारपारायात्पतनभयभीता निप्रघ-  
 लक्षणमोक्षमार्गश्चालुः प्रज्ञापुत्र इति विद्वांसलिरिवाजमानो जिनसहस्रनामस्तयन् विहीर्षुः  
 'प्रमो भर्वांगभाग्यु' इत्यादि स्वाभिप्रायमसूचनपर इलोकमिममाह । धाविद्यानसूरिणां  
 शिष्या धीश्रुतसागरसूरिनामानस्तु तद्विररणं कुर्वन्तीति 'प्रमो भर्वांगभोगेषु निर्विरणो  
 दुःखमारुह । एष विज्ञापयामि त्वां शरस्य करुणाणवम् ॥' हे प्रमो—भुवनेकनाथ, ए  
 काऽपि तार्करपरमदवहनस्यद सवोधनम् । एष — प्रतिपत्तिभूतोऽह आशाधरमहाकवि ।  
 त्वा—भवतम् । विज्ञापयामि—वैशति करोमि । कथंभूताऽह भगवभोग्यु—ससारशरार  
 भोग्यु । निर्विण्ण—निर्वेद प्राप्त ।

X

X

X

X

मन्व भाग १२३ पृष्ठ १३, पक्ष १, —

विमल — विनय मलः कर्ममलकल्का यस्य स विमल अथवा विविधा विविधा वा मा  
 लदमोर्षे वात (?) विमा श्राद्ध्या दवास्तन् लाति निजपादाजातान् कराति विमल, अथवा  
 विगता दूरोक्ता मा लभादेस्त विमा निप्रघमुनयस्तान् लाति स्याकरोति विमल अथवा  
 विगत विनष्टमलमुच्चार प्रस्नावञ्च यस्य जन्म स विमल ॥३॥ अनतजित अनतससार  
 जितवान् अनतजिन् अथवा अनत अनलाकाकारां चितवान् कञ्चलजनेन तत्पार गतवान्  
 अनतजित अथवा अनतजिवि ॥३॥ महाराज — महाशक्तौ घोर महाघोर धेठे  
 महाघोर ॥३॥

X

X

X

+ इमको १५३ न वापो एक प्रति भौर है । पर वद बहुत ग्रीण है ।

+ वाच न वृत्त पद नहीं है ।

अन्तिम भाग—

अग्रहंतः सिद्धनाथास्त्रिविधमुनिजना भारतीवार्हतीद्धा ।

सद्वन्द्यः कुन्दकुन्दो विबुधजनहृदानन्दनः पृज्यपादः ।

विद्यानन्दोऽकलङ्कः कलिमलहरणश्रीसमन्तादिभद्रो-

भूयान्मे भद्रवाहुर्भवभयमथनो मंगलं गौतमाद्यः ॥

श्रीपद्मनन्दिपरमात्मपरः पवित्रो देवेन्द्रकीर्त्तिरय साधुजनाभिवन्द्यः ।

विद्यादिनन्दिवरसूरिरनल्पबोधः श्रीमल्लिभूपण इतोऽस्तु च मंगलं मे ॥२॥

अदः (?) पट्टे भट्टादिकमतपुटीघट्टनपटुर्घट्टद्धर्मध्यानः स्फुटपरमभट्टारकपदः ।

प्रभापुंजः संमाद्धिजितवरस्मरनरः सुधीर्लक्ष्मीश्चन्द्रश्चरणचतुरो मे विजयते ॥३॥

आतं (?) वनं विदुषां हृदयाम्बुजानाम्

आनन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतोः ।

सट्टीकनं विविधशास्त्रविचारचारम्

चेतश्चमत्कृतकृतं श्रुतसागरेण ॥४॥

श्रीश्रुतसागरकृतिवरचचनामृतमन्त्रैर्विहितम् ।

जन्मजरामरणहरं निरन्तरैः शिवं लब्धम् ॥५॥

अस्ति स्वस्ति समस्तसर्वतिलकं श्रीमूलसंघोऽनघं

वृत्तं यत् मुमुक्षुसर्वशिवदं संसेवितं साधुभिः ।

विद्यानन्दिगुरुस्त्रिहास्ति गुणवद्रुच्छे गिरं साम्प्रतम्

तच्छिष्यश्रुतसागरेण रचिता टीका चिरं नन्दतु ॥६॥

श्रीइत्याचार्यश्रुतसागरविरचितायां त्रिनसहस्रनामटीकायामन्तरुच्छतविवरणो नाम  
देशमोऽध्यायः ।

इस त्रिनसहस्रनामटीका के रचयिता श्रीश्रुतसागरसूरि हैं । माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन  
ग्रन्थमाला में प्रकाशित 'पट्टप्राभृतादिसंग्रह' की भूमिका में श्रीयुत पं० नाथूराम जी प्रेमी ने  
इसका जो परिचय दिया है, वही यथावत् नीचे उद्धृत कर दिया जाता है—

पट्टप्राभृत या पट्टपाहुड के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे । इस  
टीका से और यशस्विलक-चन्द्रिका टीका से मालूम होता है कि वे कलिकालसर्वज्ञ, कलि-  
काल गौतमस्वामी, उभयभाषाकवित्रक्रवर्ती आदि महती पदवियों ने अलंकृत थे । उन्होंने

ये मूलसंघ, सरस्वतीगच्छे घोर बलात्कारण के भाचार्य और विद्यान्दी भट्टारक के शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मन्दी—देवेन्द्र कीर्ति—विद्यान्दी।

परन्तु विद्यान्दी भट्टारक के पट्ट पर जान पड़ता है उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यान्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यान्दी—महिभूषण—लक्ष्मी चन्द्र।

स्यर्गाय क्षान्तीर सैठ माणिकचन्द्र जा के ग्रन्थभाण्डार में ९० आठार के महाभियेक नामक ग्रन्थ की टोका है। उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है—

“श्रीविद्यादिगुरोर्बुद्धिगुरो पादपकनन्रमर ।

धीभ्रुतसागर इति देशप्रती तिलकशीकने स्मैर् ॥

इति ब्रह्मधीभ्रुतसागरवृता महाभियेकटीका समाप्ता ॥

धीरस्तु लेखकपाठकयो ॥ शुभ भवतु ॥ध्री।

सन् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्ष पचम्यां तिथौ रवौ धीभादिजिनचैत्यालये धीमूल सये सरस्वतीगच्छे बलात्कारण्ये धीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकधीपद्मनदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकधीदेवेन्द्रकार्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकधीविद्यादिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकधीमहिभूषणदेवास्तत्पट्टे भट्टारकधीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तर्वा शिष्यपरब्रह्मधीज्ञानसागरपठनार्थ ॥ अपां धीत्रिमलधो चेली भट्टारक धीलक्ष्मीचन्द्रदातिना विनयधिया म्यय लिखित्वा प्रदत्त महाभियेकभाष्य ॥ शुभ भवतु ॥ कल्याण भूषात् ॥ धीरस्तु ॥

इससे मालूम होता है कि विद्यान्दी के पट्ट पर महिभूषण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मी चन्द्र की स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटाका म ध्रुतसागर ने महिभूषण को अपना गुरु ध्याता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यान्दी के उत्तराधिकारी महिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीका के तीसरे भाष्यास के अन्त में लिखा है—

“इति धीरमनदिदेवेन्द्रकार्तिविद्यादिमहिभूषणाघ्रायेन भट्टारकधीमहिभूषणगुरुपरमा भीष्टगुरुभ्रात्रा गुर्जरदेशसिंहासनभट्टारकधीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन मालवदेशभट्टारकधीसिंह नदिप्रार्थनया यतिधीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्त नवनवतिमहामहायाद्विस्थाडाव लक्षविषयेन तर्कव्याकरणज्ञेयोऽकारसिद्धान्तसाहित्याविशाखनिपुणमतिना प्राच्यव्याकरणा घनेकशास्त्रचञ्चुना सूरिधीभ्रुतसागरण विरचिताया यशस्तिलकचन्द्रिकाभिधानाया यशो धरमहाराजचरितचम्पुमहाकाव्यटीकाया यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्द्धन नाम तृतीयाश्वत्थचन्द्रिका परिममाता ।”

इससे मालूम होता है कि उस समय गुजरात देश के पट्ट पर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और महिभूषण का शायद स्वर्गवास हो चुका था।

लक्ष्मीचंद्र के बाद भी श्रीश्रुतसागर के पदाधिकारी होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता । जान पड़ता है वे कभी सिंहासनासीन हुए ही नहीं ।

वे पद्मनदी, विद्यानदी, आदि सब गुजरात के ही भट्टारक हुए हैं । परन्तु यह मालूम न हो सका कि गुजरात के किस स्थान की गद्दी को इन्होंने सुशोभित किया था । ईडर, सूरत, सोजित्ता आदि कई स्थानों में भट्टारकों के पट्टे रहे हैं । यज्ञास्तलक की रचना के समय मालवे के पट्टे पर सिंहनदी भट्टारक थे । इन्हींकी प्रेरणा से श्रुतसागरसूरि ने नित्यमहोद्योत या महाभिषेक की भी टीका लिखी थी ।

श्रुतसागरसूरि के भी अनेक शिष्य रहे होंगे । इसी ग्रन्थमाला के तत्वानुशासनादि-संग्रह में इनके एक श्रीचन्द्र नामक शिष्य की रची हुई वैराग्यमणिमाला प्रकाशित हुई है । आराधनाकथाकोश, नेमिपुराण, आदि अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता ब्रह्मचारी नेमिदत्त ने भी—जो मल्लिभूषण के शिष्य थे—श्रुतसागर को गुरुभावना से स्मरण किया है । नेमिदत्त ने भी मल्लिभूषण की वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागर के ग्रन्थों में मिलती है । इन्होंने सिंहनदियों का भी उल्लेख किया है ।

श्रुतसागर का अभी तक टीकाग्रन्थों के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है ।

उनके बनाये हुए ग्रन्थों का परिचय आगे दिया जाता है :—

१ यज्ञस्तलकचन्द्रिका । यह निर्णयसागर प्रेस की 'काव्यमाला' में प्रकाशित हो चुकी है । यह टीका अपूर्णा है—५वें आश्रवास के कुछ अंश की और छठे आश्रवास की टीका नहीं है । जान पड़ता है, यही उनकी अन्तिम रचना है । यह टीका अनेक स्थानों के ग्रन्थभाण्डारों में मिलती है, परन्तु सर्वत्र ही अपूर्णा है ।

२ महाभिषेकटीका । सुप्रसिद्ध पंडित आशाधर जी के बनाये हुए नित्यमहोद्योत या महाभिषेक नामक ग्रन्थ को यह टीका है । इसका अन्तिम अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है । उससे मालूम होता है कि उस समय श्रुतसागर देशवती या ब्रह्मचारी थे, सूरि या आचार्य नहीं हुए थे ।

३ तत्त्वार्थटीका । यह श्रुतसागरी टीका के नाम से प्रसिद्ध है । इस लेख के लिखते समय हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । परन्तु यह दुष्प्राप्य नहीं है—इसका भाषा-नुवाद भी हो चुका है ।

४ तत्वत्रयप्रकाशिका । आचार्य शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णव के अन्तर्गत जो गद्यभाग है,



वे मूलसद्य सरस्वतीगच्छ और धलात्कारण के भाचार्य और विद्यानन्दी महारक के शिष्य थे। उनको गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दी—देवेन्द्रकीर्ति—विद्यानन्दी।

परन्तु विद्यानन्दी महारक के पट्ट पर ज्ञान पडता है उनको स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दी के बाद की गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दी—मल्लिभूषण—लक्ष्मीचन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्र जी के ग्रन्थभण्डार में ५० भाषाघर के महाभियरक नामक ग्रन्थ का टोका है। उसके अन्त में इस प्रकार लिखा है—

“श्रीविद्याविगुरोर्बुद्धिगुरो पादपकजप्रमर ।

श्रीध्रुतसागर इति देशान्तो तिलकछीकने स्मैर्द ॥

इति ब्रह्मश्रीध्रुतसागरवृता महाभियेकटीका समाप्ता ॥

श्रीरस्तु लेखकपाठकयो ॥ शुभ भवतु ॥ श्री ।

सन् १५८२ वर्ष चैत्रमासे शुद्धपक्ष पचम्या तिथी रवौ श्रीभाविजिनचैत्यालये श्रीमूलसद्ये सरस्वतीगच्छे धलात्कारणो श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये महारकश्रीपद्मनदिदेशस्तत्पट्टे महारकभादेवेन्द्रकीर्तिदेशस्तत्पट्टे महारकश्रीविद्यानदिदेशस्तत्पट्टे महारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे महारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यपरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं ॥ आर्यां श्रीधिमलश्रीचेली महारक श्रीलक्ष्मीचन्द्रकीर्तिता विनयश्रिया स्थय लिखित्वा प्रदत्त महाभियेकभाष्य ॥ शुभ भवतु ॥ कल्याण भूयान् ॥ श्रीरस्तु ॥

इसमें मालूम होता है कि विद्यानन्दी के पट्ट पर मल्लिभूषण की और उनके पट्ट पर लक्ष्मीचन्द्र की स्थापना हुई थी। यद्यस्तिलकछीका म ध्रुतसागर ने मल्लिभूषण को भजना गुरु धाता लिखा है। इसमें भी मालूम होता है कि विद्यानन्दी के उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यद्यस्तिलकचन्द्रिका टोका के तीसरे भाष्यास के अन्त में लिखा है—

‘इति धारमनदिदेशेन्द्रकीर्तिविद्यानदिमल्लिभूषणाघ्रायेन महारकश्रीमल्लिभूषणगुरुपरमा भोष्टगुरुनात्ता गुर्जरदेशसिंहासनमहारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकामिमनेन मालयदेशमहारकश्रीसिंह नदिगार्पणया यतिश्रीमिद्वान्तसागरव्याख्यारतिनिमित्त नयनयतिमहामहायादिस्यद्वाद ला श्रिप्रयेन तर्कशकरणद्वीरेऽकारमिद्वान्तमाहित्याविनास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतश्याकरणा चनेकताश्रयश्रुना मूरिश्रीश्रतसागरण विरजितायां यद्यस्तिलकचन्द्रिकाभिधानायां यशो धरमहागात्रचरितचश्रुमहाकाश्र्यटाकायां यशोधरमहाराजराजलक्ष्माविनोदयर्गन नाम कुनीयाश्यामचन्द्रिका परिसमाप्ता ।’

इसमें मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देश के पट्ट पर महारक लक्ष्मीचन्द्र लिखे थे और मल्लिभूषण का नाम स्वर्गपास हो चुका था।

६ प्राकृतव्याकरण । यह ग्रन्थ हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । यशस्तिलकटीका में एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—“प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्र-रचनाबन्धुना” इससे और पट्टपाहुडटीका में जो जगह-जगह प्राकृतव्याकरण के सूत्र दिये हैं, उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृतव्याकरण अवश्य है । इस ग्रन्थ का पता लगाने की बहुत आवश्यकता है ।

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोश आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं ।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है ; परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि वे विक्रम की १६ वीं शताब्दि में हुए हैं । क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभियेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है, वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य प्रह्लाचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है ।

२—आराधनाकथाकोश के कर्त्ता व्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिभूषण के शिष्य थे ।

३—स्वर्गीय वाचा हुलीचन्द्र जी के सं० १९५४ के बनाए हुए हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० संवत् १५५० लिखा हुआ है ।

४—पट्टाभृतटीका में जगह-जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बरसम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी ग्रन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है । अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो चालीस-पचास वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये ।

यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० सठ माणिकचन्द्र जी क प्रथम प्रह म<sup>१</sup> मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिय —

आचार्यैरिह शुद्धतरुमतिभि धार्सिहनद्याह्वयै  
 क्षप्रार्थ्यं श्रुतसागर [रा] वृ [कि] तरु भाष्य शुभ कारित ।  
 गणानां गुणप्रतिप्रिय विनयतो ब्रानार्णयस्यांतर  
 विद्यानदिगुरुप्रसादजनित दयादमेय सुखम् ॥

इति श्रीशानार्णवस्य (१) स्थितगद्यगीका तत्त्वत्रयप्रकाशिना [का] समाप्त [ता]  
 ॥ शुभमस्तु ॥”

५ जिनसहस्रन म टीका । यह प० आणाधरचन जिनसहस्रनाम की विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठ जो क प्रथम प्रह में मौजूद है। शब्दबोध और व्युत्पत्ति बोध के अभिलगपिया के त्रिय बड़े काम की चाज है। इसकी भी प्रशस्ति देखिये —

‘धीरक्षत्रद्विपरमात्मरर परिता देवेंद्रकोर्तिरथ साधुजनामिबध ।

विद्यादिनद्विरररुत्तरनरबाध श्रीमह्निभूषण इतोऽस्तु च मंगल मे ॥२॥

अद (१) पट्ट भट्टादिकमतघटाथहनपट्ट  
 घण्डमभ्यान स्तुत्परमभट्टारकपद् ।  
 प्रभाषज सयद्विजितररीररररर  
 सुधोलक्ष्माच द्रधरणचतुरोऽमौ विजयत ॥३॥  
 आत (१) वन सुविदुषां हृदयांजुजाना  
 आनन्दन मुनिननस्य विमुक्तिहेता  
 सद्दीकन विग्रिधशास्त्रविचारचाह  
 चेतश्चमररुतिरुत श्रुतसागरण ॥४॥  
 श्रु तसागररुतिवररचनामृतपानमत्रयै(१)विहित ।  
 जमजरामरणहर निरतर तै शिय लब्ध ॥५॥  
 अस्ति म्यस्ति ममस्तसघतिलक धीमूलसघोऽनघ  
 वृत्त यत्र मुमुक्षुवगशिउद सम्प्रित साधुभि ।  
 विद्यानदिगुरुस्त्विहास्तिगुणप्रच्छे गिर सांप्रत,  
 तच्छिष्य अतसागरेण रचिता टीका चिर नवनु ॥६॥

इतिशुद्धिभ्रुतसागररिचितायां जिननामसहस्रनाकायामतच्छुद्धतविवरणो नाम  
 हस्योऽध्याय ॥१०॥ श्रीविद्यानदिगुरुकथा नमः ।”

६ प्राकृतव्याकरण । यह ग्रन्थ हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । यशस्तिलकटीका में एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—“प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्र-रचनाचञ्चुना” इससे और पट्टपाहुडटीका में जो जगह-जगह प्राकृतव्याकरण के सूत्र दिये हैं, उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृतव्याकरण अवश्य है । इस ग्रन्थ का पता लगाने की बहुत आवश्यकता है ।

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रमप्रबन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्ध की टीका, बृहत्कथाकोश आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं ।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने समय का उल्लेख नहीं किया है ; परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रम की १६ वीं शताब्दि में हुए हैं । क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीका की प्रति का उल्लेख किया गया है, वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागर के पढ़ने के लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्र का उल्लेख श्रुतसागर ने स्वयं अपनी टीकाओं में कई जगह किया है ।

२—आराधनाकथाकोश के कर्ता प्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे श्रुतसागर के गुरुभ्राता मल्लिषेण के शिष्य थे ।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्द्र जी के सं० १९५४ के वनाप हुए हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची में श्रुतसागर का समय वि० संवत् १५५० लिखा हुआ है ।

४—पट्टप्राभृतटीका में जगह-जगह लोंकागच्छ पर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बरसम्प्रदाय में से यह मूर्तिपूजा का विरोधी ग्रन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है । अतएव श्रुतसागर का समय इसकी स्थापना से अधिक नहीं तो चालीस-पचास वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिये ।

यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० मठ माणिकचन्द्र जी के ग्रन्थ संग्रह में मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिये —

आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभि धार्मिह्नचाह्वयै,  
सप्राप्य ध्रुतसागर [रा] वृ [कि] तरर भाष्य शुभं कारित ।  
गद्यानां गुणप्रद्विय विनयतो ब्रानार्ण्यस्यातरे,  
विद्यानदिगुरुप्रसादनित देयादमैय सुखम् ॥

इति श्रीब्रानार्ण्यस्य (?) स्थितगद्यटीका तत्त्वत्रयप्रकाशिना [का] समाप्त [ता]  
॥ शुभमस्तु ॥”

५ जिनसहस्रनाम टीका । यह प० आशाधरचरण जिनसहस्रनाम की विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठ जी के ग्रन्थ संग्रह में मौजूद है। शब्दबोध और व्युत्पत्ति बोध के अभिलाषिया के लिये घडे काम की बाज है। इसकी भी प्रशस्ति देखिये —

‘श्रीस्यत्रदिपरमात्मर पवित्रो, देवेंद्रकीर्तिय साधुजनामिवध ।  
विद्यादिनदिवरसूरिरनलबोध, श्रीमल्लिभूपथ इतोऽस्तु च मगड मे ॥२॥

अद् (?) पट्टे भट्टादिकमतघटाघट्टनपट्ट,  
घट्टमघ्यान स्फुटपरमभट्टारकपद ।  
प्रभापुज सपद्विजितररीरस्मरणर,  
सुधोर्लक्ष्मीचन्द्रधरणचतुरोऽमो विजयत ॥३॥

आत (?) वन सुविदुषां हृदयांजुजानां  
भानन्दन मुनिजनस्य विमुक्तिहेतो  
भट्टीकन विविधशास्त्रविचारवाह  
चेतश्चमत्कृतिह्न ध्रुतसागरण ॥४॥

ध्रुतसागरकृतिवचनान्मृतपानमन्त्रपै(?) विहित ।  
जन्मजरामरणहर निरतर तै शिव लब्ध ॥५॥

अस्ति स्वस्ति समस्तसघतिलक आमूलसघोऽनघ,  
वृत्त यत्र मुमुक्षुवर्गशिखर ससेवित साधुमि ।  
विद्यानदिगुरुस्त्विहास्मिगुणप्रच्छे गिर साधन,  
तच्छिष्य ध्रुतसागरस्य रचिता टीका चिर नदतु ॥६॥

इति सूरिध्रुतसागरविरचितायां जिननामसहस्रकीकायामतकृच्छकृतविवरणो नाम  
दशमोऽध्याय ॥१०॥ श्रीविद्यानदिगुरुभ्यो नमः ।”

मध्य भाग (पूर्व पृष्ठ ४८, पंक्ति १) —

नमः श्रीभुक्तिकान्ताय काममल्लविनाशिनै ।  
 धीपाश्वर्यस्यामिने सिद्ध्यै जगद्भ्रं चिदात्मने ॥१॥  
 दिग्भिः सार्द्धं नभोऽप्यासीधर्मलं जिनजन्मतः ।  
 बम्बलानशुसुमैश्चक्रुः पुष्पचृष्टिं सुरद्रुमाः ॥२॥  
 यनाहता महाध्याना दधतुर्दिविजानकाः ।  
 यवौ तदा मरुन्मन्दं सुगंधिः शिशिरः स्वयम् ॥३॥  
 धम्बुध्वंशारवोऽतीव गम्भीरो निर्जरान्प्रति ।  
 वदतीव जिनेन्द्रस्य जन्म नाकालये स्वयम् ॥४॥  
 धासनानि सुरेशानामकस्मात्प्रचक्रमिरे ।  
 देवानुच्चासनेभ्योऽधः पातयन्तीव भक्तये ॥५॥  
 शिरांसि प्रचलन्मौलिमणीनि प्रणतिं दधुः ।  
 कुर्वन्तीव नमस्कारं भक्त्या तीर्थेशपादयोः ॥६॥  
 दृष्ट्वेत्यादिमहाश्चर्यं ज्ञात्वा तीर्थेशजन्म ते ।  
 कल्पेशावधिज्ञानाज्जन्मस्नाने मतिं व्यधुः ॥७॥

X X X

शान्तम भाग—

न कीर्त्तिपूजादिमुलाभलोभाच्च वा कवित्वाद्यभिमानतोऽयम् ।  
 प्रत्यः कृतः किन्तु परार्थबुद्ध्या स्वस्यापरेणाञ्च हिताय नूनम् ॥९२॥  
 अक्षरस्वरसुसंधिसुमात्रादिच्युतं यदपि किञ्चिदपीह ।  
 ज्ञानहीनचलच्चित्तप्रमादान्तच्छमस्य जिनवाणि समस्तम् ॥९३॥  
 अथगमजलधिथ्रीपाश्वर्याथस्य दिव्यं  
 सकलविशदकीर्त्तिः प्रादुरासीन्मुनीन्द्रात् ।  
 यदिह वरचरित्रं तद्धि दत्तैः ननंतु (?) [ दत्ताः स्मरन्तु ]  
 यतिसुजन(सु)सेव्यं जैनधर्मोऽस्ति यावत् ॥९४॥  
 सर्वे तीर्थकरा महातिशयिनः सिद्धार्हकर्मातिगाः  
 दिव्याष्टाद्भुतसद्गुणाश्च सहिताः श्रीसाधवश्च त्रिधा ।  
 शुक्लध्यानसुयोगसाधनपरा विद्याम्बुधेः पारगाः  
 ये ते विश्वगुणाकराश्च शिवदं कुर्वन्तु मे मङ्गलम् ॥९५॥

(५३) ग्रन्थ नं०  $\frac{७६}{क}$

## पार्श्वपुराण

कषी—सकलकीर्ति

विरच—पुराण

भाषा—संस्कृत

संख्याई १३ इत्य

चौडाई ७ इत्य

पक्षसंख्या २३

प्रारम्भिक भाग—

नम धीपार्श्वनाथाय विश्वरिप्रौघनाशिने ।  
 त्रिजगत्स्वामिने मृदुर्वा ह्यनतमहिमात्मने ॥१॥  
 त्रित्वा महोपसर्गान्यो ज्यातिर्देवहताभुनि ।  
 स्वरीयै केवलं शक्त चत्रे चेदे तमद्भुतम् ॥२॥  
 यन्नामस्मृतिमात्रेण विद्यां कार्यत्रिनाशिन ।  
 विलापन्तेऽखिला नृणां क्षुमत्रेण विषाणि वा ॥३॥  
 भ्रयो दुर्निजारा हि त्यक्त्वा धैर मङ्गल्यहो ।  
 बन्धुभाव सतां नून यन्नामजपनेन हि ॥४॥  
 क्षुद्रा देवा दुराचारा पीडयन्ति न ज्ञानुचित् ।  
 आर्हिंसिहादयोऽहोयच्छरणान्वितचेतसाम् ॥५॥  
 असाध्या दुष्करा रोगा सर्वे याति सखात्क्षयम् ।  
 यन्नामभेपजेनाऽपि तमांसि भानुना यथा ॥६॥  
 यदुभ्यानेन प्रणश्यन्त्यज्ञानन्ता कर्मरशाय ।  
 यद्यतो परविघ्नादिनाशे को जिस्मय सताम् ॥७॥  
 इत्यादि महिमोपेन जगन्नाथ जगद्गुरुम् ।  
 त धीपार्श्वं स्तुवे वदे प्रारब्धविघ्नशान्तये ॥८॥  
 दिव्यराकिरमौरादौ रागद्वेष तमक्षयम् ।  
 उच्छिद्य सप्रकाशपोच्चैर्मोक्षमार्गं सता चयम् ॥९॥

×

×

×

१०० भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्यः । नाम्नो च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्यः समास-  
ज्ञो भवति । यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थामिधानाद्युक्तार्यः । संज्ञेति  
युक्तार्यस्तु नरसिंहवदखण्डः तदभिधायिषाकयाद्भिन्नः । समासराशिः सिद्धः । तस्यालोप्या  
देभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थोद्भावयमेव वा समासीभवति । नीलोत्पलं । पञ्चगुः । कष्टधितः ।  
चित्रगुः । देवदत्तयज्ञदत्तो । उपकुम्भं । स पुनः समासः क्वचित्शित्यः । कृष्णसर्पः । लोहित-  
शालिः । ग्राहणार्थापूपाः । सप्तर्षयः । क्वचिद्विकल्पः । राज्ञः पुरुषः । राजपुरुषः । पञ्चत्रिन्न-  
भवति । दीर्घश्चारायणः । रामो जामदग्न्यः । व्यासः पारामर्यः । अर्जुनः कार्तवीर्यः । नाम्नामिति  
किं । कार्याणां समासान्तासमीपयोरिति (?) गुल्फविकल्पो न स्यात् । युक्तार्थ इति किं ।  
पश्य कष्टं धितश्चैत्रो राजकुलं । औदस्य [ ऋदस्य ] विशिष्टस्यापत्यमित्यन्वयं विशिष्टापत्य-  
मिति न स्यात् ।

X

X

X

X

अन्तिम भाग —

स्वार्थे श्रणु । तदन्तादिप्रत्ययः । स्वागतादीनां वृद्धिप्रतिषेधो न भवतः । शोभनमागतं  
तदाह स्वागतिकः । सुष्ठु अध्वरः स्वध्वरः । तेन चरति स्वाध्वरिकः । शोभनानि  
तान्यंगानि यस्य स्वांगस्तस्यापत्यं स्वांगिकः । पयं व्यांगिः । व्याडिरिति केचित् ।  
व्याडस्यापत्यं व्याडिः । विगतोऽवहारो विशेषण वावहारः । तेन चरति व्यावहारिकः ।  
व्यायामिकः । स्वागतः । स्वध्वरा । स्वंगा । व्यंगा । व्याडः । व्यवहारः । व्यायामः ।  
स्वादेरिति श्वनशब्दस्यकारादौ तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः ।  
श्वाशीर्षिः । शुनां गणस्थेन चरति श्वागणिकः । श्वायूधिकः । आदिप्रहणात्केवलस्य  
निषेधः । श्वमिश्चरति शौविकः । इकारादाविति किं । शौचादंद्रो मणिः । इणश्चादेः ।  
इणप्रत्ययान्तस्य सद्ये तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रकं । श्वाकर्णेरिदं  
श्वाकर्णकं । अणि लुप्तेऽपि तद्धृतः प्रतिषेधो भवत्येवेति । अन्तर्यकमेतदिति चांद्राः ।  
पदस्यानीति वा । श्वशब्दादेः पदशब्दशानिकारादौ वा वृद्धिर्न भवति । शुनः पदं श्वपदं ।  
तस्येदमित्यण् । शौनपदं । श्वपदं । अनिनोति किं । श्वपदेन चरति श्वापदिकः ।  
श्वनशब्दस्य हारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वाच्चित्त्यं प्राप्ते विकल्पो विधीयते । न्यंकोश्च ।  
सद्ये तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति । न्यंकोरिदं न्यांकवं ।

इति श्रीमत्कारणदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते

दशमप्रकरणं समाप्तम् ।





अपनी लीलासाक्ष से शास्त्रसमुद्र को भले प्रकार घड़ाया है।\* 'प्रश्नोत्तररत्नमाला' में सकलभूषण ने इन्हें 'पुराणमुख्योत्तमशास्त्रकारी' विशेषण के साथ स्मरण किया है। जिनदास ब्रह्मचारी ने अपने 'पद्मपुराण' और 'हरिवंशपुराण' में इनका 'महाकवित्वादि-कलाप्रवीणः' ऐसा विशेषण दिया है। 'पाराडवपुराण' में शुभचन्द्र भट्टारक ने इनकी प्रशंसा में यह वाक्य कहा है—'कीर्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकला पवित्रा।' इसी प्रकार और भी बहुत-से विद्वानों ने इनके महान् ग्रन्थकार होने का उल्लेख किया है। इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि जैन-समाज में सकलकीर्ति के नाम से जो बहुत से ग्रन्थ प्रचलित हैं और जिनपर उनके बनने का संवत् आदि नहीं दिया है उनका अधिकांश भाग इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक का बनाया हुआ है। १६ वीं शताब्दी में सकलकीर्ति भट्टारक नाम के दूसरे भी एक विद्वान् हुए हैं। परन्तु वे इतने अधिक प्रसिद्ध नहीं थे।†

कामराजकृत 'जयपुराण' की प्रशस्ति में सकलकीर्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य दिये हैं:—

आचार्यः कुन्दकुन्दाख्यस्तस्मादनुक्रमादभूत् ।

स सकलकीर्तियोगीशो ज्ञानी भट्टारकेश्वरः ॥१॥

येनोद्भूतो गतो धर्मो गुर्जरे वाग्बरादिके ।

निर्ग्रन्थेन कवित्वादिगुणानेवार्हता पुरा ॥३॥

तस्माद्भुवनकीर्तिः श्रीज्ञानभूषणयोगिराट् ।

विजयकीर्तयोऽभूवन् भट्टारकपदेशिनः ॥४॥

इनसे मालूम होता है कि इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक ने, जिनके पट्ट पर क्रमशः भुवन-कीर्ति और ज्ञानभूषण बैठे थे, गुजरात और वागड़ आदि देशों में जैनधर्म का प्रचार किया है।‡ 'दिग्भर जैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' इस ग्रन्थतालिका में भट्टारक सकलकीर्ति के निम्नलिखित ग्रन्थों के नाम उपलब्ध होते हैं—

सिद्धान्तसार, तत्त्वार्थसारद्वीपक, सारचतुर्विंशतिका, धर्मप्रश्नोत्तर, मूलाचारप्रदीपक, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, यत्याचार, सद्भाषितावली, आदिपुराण, उत्तरपुराण, धर्मनाथपुराण, शान्तिनाथपुराण, मल्लिनाथपुराण, पार्श्वनाथपुराण, वर्धमानपुराण, सिद्धान्तमुक्तावली, कर्मविपाक, देवसेनकृत तत्त्वार्थसारटीका, धन्यकुमारचरित्र, जम्बूस्वामिचरित्र, श्रीपाल-चरित्र, गजसुकुमालचरित्र, सुदर्शनचरित्र, यशोधरचरित्र, अष्टाहिकासर्वतोभद्र, उपदेशरत्न-माला, सुकुमालचरित्र ।

इनमें से प्रश्नोत्तरश्रावकाचार आदि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं ।

\* भट्टारकपदारूढः सकलाद्यन्तकीर्तिभाक् । येन शास्त्राम्बुधिः सम्यग् वर्धितो निजलीलया ॥१४॥

† देखें—'जैनहितैषी' भाग ११, अंक १२ ‡ देखें—'जैनहितैषी' भाग १२, पृष्ठ ६०-६१

विश्वार्थो विश्ववन्द्या सकलवृषधरा मुक्ति कान्ताप्रसत्ता  
 इन्तार कर्मशत्रून्सुगुणजलधयो जाण्डरूपेण नित्यम् ।  
 आराध्या भव्यलोकैरगतिमुखकरास्नीर्यनाथाश्च सिद्धा  
 ये तेऽनन्ता मुनीन्द्रा शुभमुखसदन मङ्गल व प्रदधु ॥१६॥  
 जिनवररुचिमूली ज्ञानसत्पीठवध  
 सकलचरणशाखो दानपात्रप्रसून ।  
 शिवसुखफलनद्यो धर्मकल्पद्रुमो व  
 सुशिर(सु)फलकामै सेज्यमेवेशसिद्धुष्यै ॥१७॥  
 धर्मो शिरसमीहितार्थजनको धर्म व्यधुधार्मिका ।  
 धर्मैशाशु शिव भजन्ति मुनयो धर्माय मुक्तये नम ।  
 धर्माप्राप्त्यपरोऽखिलार्थसुखदा धर्मस्य मूल सुदृग्  
 धर्मे चित्तमह दधेऽन्तकमुखादुधे धर्म रक्षाशु माम् ॥१८॥  
 सर्वे धीजिनपुङ्गवाश्च विमला सिद्धा अमूर्त्ता विद  
 विश्वार्थां गुरवो जितेन्द्रमुखजा सिद्धान्तधर्मादय ।  
 कर्त्तारो जिनशासनस्य सहिता सरन्दिता सधुता  
 ये ते मेऽत्र विशन्तु मुक्तिजनके शुद्धिञ्च रत्नत्रये ॥१९॥  
 पञ्चादशाधिका येवाष्टाविंशतिशतान्यपि ।  
 श्लोकमख्याऽस्य विज्ञेया सर्वप्रन्थस्य लेखके ॥२०॥

इति श्रीपार्श्वनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिरिरचिते श्रीपार्श्वनाथमोक्षगमनो  
 नाम त्रयोविंशतितमः सर्गः समाप्तः ।

ज्ञानभूषण भट्टारक विक्रम की १६ वीं शताब्दी में हुए हैं। ज्ञानभूषण भुवनकीर्ति के पृष्ठ पर, भुवनकीर्ति सकलकीर्ति के पृष्ठ पर और सकलकीर्ति पद्मनन्दी के पृष्ठ पर बैठे थे। १६ वीं शताब्दी के धने पर्व लिखे हुए बहुत से प्रार्थों में इस पद्यावली का उल्लेख पाया जाता है। इससे सहज ही में पद्मनन्दी के पृष्ठ पर प्रतिष्ठित होनेवाले तथा भुवनकीर्ति के गुण सकलकीर्ति भट्टारक का समय विक्रम की १५ वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है। थॉमस डॉ० विन्टरनिट्ज का कहना है कि यह सकलकीर्ति लगभग ई० सन् १४६४ में स्वर्गासीन हुए थे।\*

'ज्ञानार्णव' की प्रशस्ति में इन्हीं सकलकीर्ति भट्टारक के संबंध में लिखा है कि इन्होंने

मध्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्थः । नाम्नां च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थः समास-  
संज्ञो भवति । यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थाभिधानाद्युक्तार्थः । संज्ञेति  
युक्तार्थस्तु नरसिंहवदखण्डः तदभिधायिवाक्याद्भिन्नः । समासराशिः सिद्धः । तस्थालोप्या  
दिभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थद्वैक्यमेव वा समासो भवति । नीलोत्पलं । पञ्चगुः । कष्टध्रितः ।  
वित्रगुः । देवदत्तयज्ञदत्तौ । उपकुंभं । स पुनः समासः क्वचिन्नित्यः । कृष्णसर्पः । लोहित-  
शालिः । ब्राह्मणार्थापूर्वाः । सप्तर्षयः । क्वचिद्विकल्पः । राज्ञः पुरुषः । राजपुरुषः । क्वचिन्न-  
भवति । दीर्घश्चारायणः । रामो जामदग्न्यः । व्यासः पारासरथः । अर्जुनः कार्तवीर्यः । नाम्नामिति  
किं । कार्याणामसासान्तासमीपयोरिति (?) ण्वल्पविकल्पो न स्यात् । युक्तार्थ इति किं ।  
पर्य कष्टं ध्रितश्चैत्रो राजकुलं । औद्धस्य [ ऋद्धस्य ] विशिष्टस्यापत्यमित्यन्वार्थं विशिष्टापत्य-  
मिति न स्यात् ।

×

×

×

×

श्रुतिम भाग —

स्वार्थे श्रण् । तदन्तादिप्रत्ययः । स्वागतादीनां वृद्धिप्रतिषेधौ न भवतः । शोभनमागतं  
तदाह स्वागतिकः । सुष्ठु अध्वरः स्वध्वरः । तेन चरति स्वाध्वरिकः । शोभनानि  
तान्यंगानि यस्य स्वांगस्तस्यापत्यं स्वांगिकः । पवं व्यांगिः । व्याङ्गिरिति केचित् ।  
व्याडस्यापत्यं व्याङ्गिः । विगतोऽवहारो विशेषेण वावहारः । तेन चरति व्यावहारिकः ।  
व्यायामिकः । स्वागतः । स्वध्वरा । स्वंगा । व्यंगा । व्याडः । व्यवहारः । व्यायामः ।  
स्वादेरिति श्वन्शब्दस्येकारादौ तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः ।  
श्वाशीर्षिः । शुनां गणस्थेन चरति श्वागणिकः । श्वायूधिकः । आदिग्रहणात्केवलस्य  
निषेधः । श्वभिश्चरति शौविकः । इकारादाविति किं । शौवादन्द्रो मणिः । इणश्चादेः ।  
इणप्रत्ययान्तस्य सण्ये तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रकं । श्वाकर्णेरिदं  
श्वाकर्णकं । श्रणि लुप्तेऽपि तत्कृतः प्रतिषेधो भवत्येवेति । अनर्थकमेतदिति चांद्राः ।  
पदस्यानीति वा । श्वशब्दादेः पदशब्दश्रयानिकारादौ वा वृद्धिर्न भवति । शुनः पदं श्वपदं ।  
तस्यैदमित्यण् । शौनपदं । श्वपदं । अनिनीति किं । श्वपदेन चरति श्वापदिकः ।  
श्वन्शब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वान्नित्यं प्राप्ते विकल्पो विधीयते । न्यंकोश्च ।  
सण्ये तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति । न्यंकोरिदं न्यांकवं ।

इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते

दशमप्रकरणं समाप्तम् ।

(५४) ग्रन्थ नं० ७८  
क

## कातंत्रविस्तर

वर्णो—वर्द्धमान

विषय—श्याकरण

भाग—सकृत्

सम्बन्ध १२। ६६४

पौडाई ७ ६४

पत्रमस्या २१०

प्रारम्भिक भाग—

जिनेद्वार नमस्कृत्य गीतम् तद्वन्तरम् ।

सुगमं वियतेऽस्माभिरप्य कातंत्रविस्तरं ॥

अभियोगपरां पूर्वं भाग्यां यदुद्यमापिरे ।

प्रायेण तद्विहास्वामि परित्यक्तं न किञ्चन ॥

मिद्धो वर्णसमाह्वयः । सकललोकांसिद्धः प्रसिद्धसंज्ञासहित इह शास्त्रे वर्णसमाह्वये  
वेदितव्यः । वर्णा भकाराद्यः । तेषां समाह्वयः पाठश्रमः । तत्र चतुर्विंशतीं स्वराः । तः  
सिद्धवर्णसमाह्वये आदौ चतुर्विंश वर्णां स्वरसंज्ञा भवन्ति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ  
ए ए ओ औ । लृवर्णस्य स्वरसंज्ञया किं प्रयोजनम् । योऽपि लृकारः पठति लृच्छाद्य  
इत्यादि । स्वरप्रदेशः । स्वरोऽथवा वर्णो नामि इत्येवमाद्यः । द्वयः समानः । तस्मिन् वर्ण  
समानापत्तिपथे आदौ द्वयः समानसंज्ञा भवति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ  
लृवर्णस्य समानसंज्ञया किं प्रयोजनम् । यत् इत्याद्यादौ वर्णस्यैव सन्वन्धो न भवति ।  
समानप्रदेशः । समानः सवर्णो दीर्घो भवति परस्परलोपम् इत्येवमाद्यः । तेषां द्वौ द्वान्वयो  
ऽन्यस्य सवर्णो । तेषामेव दशानां समानानां मध्ये यौ यौ द्वौ द्वौ वर्णां तावन्वोन्यस्य सवर्ण  
संज्ञो भवति । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लृ । द्वयोर्ह स्वयोर्दीर्घयोश्चान्वयैवलाह्यतिक्रमे च  
तेषां प्रहणस्य प्रमथितार्थत्वात्सवर्णसंज्ञा सिद्धेति । लृवर्णस्य सवर्णसंज्ञया किं प्रयोजनम् ।  
शङ्कनाद इति लृत् न भवति । सवर्णप्रदेशः । समानः सवर्णो दीर्घो भवति परस्पर लोपम्  
इत्याद्यः । ऋकारलृकारौ च । अन्वोन्यस्य सवर्णसंज्ञो भवति ।

x

x

x

x

मध्य भाग—(पूर्व पृष्ठ १२६, पंक्ति १०)

नाम्नां समासो युक्तार्थः । नाम्नो च नामानि च (?) नाम्नां समुदायो युक्तार्थः समास-संज्ञो भवति । यदि वा युक्तश्चासावर्थश्चेति शब्दोऽपि तथार्थाभिधानाद्युक्तार्थः । संज्ञेति युक्तार्थस्तु नरसिंहवदखण्डः तदभिधायिषावयाद्भिन्नः । समासराशिः सिद्धः । तस्वाल्लोप्या विभिर्विभक्तिलोपविधानादर्थोद्घातमेव वा समासो भवति । नीलोत्पलं । पञ्चगुः । कष्टधितः । विन्नगुः । देवदत्तयजदत्तो । उपकुंभं । स पुनः समासः क्वचिन्नित्यः । कृष्णसर्पः । लोहितशालिः । ब्राह्मणार्थापूर्वाः । सत्पर्ययः । क्वचिद्विकल्पः । राज्ञः पुरुषः । राजपुरुषः । क्वचिन्न-भवति । दीर्घश्चारायणः । रामो जामदग्न्यः । व्यासः पारासर्यः । अर्जुनः कार्तवीर्यः । नाम्नामिति किं । कार्याणां समासान्तासमीपयोरिति (?) गल्पविकल्पो न स्यात् । युक्तार्थ इति किं । पश्य कष्टं धितश्चेन्नो राजकुलं । बौद्धस्य [ ऋद्धस्य ] विशिष्टस्यापत्यमित्यत्रार्थे विशिष्टापत्य-मिति न स्यात् ।

X X X X

धन्तिम भाग —

स्वार्थे श्रृणु । तदन्तादिप्रत्ययः । स्वागतादीनां वृद्धिप्रतिषेधो न भवतः । शोभनमागतं तद्वह स्वागतिकः । सुष्ठु धध्वरः स्वध्वरः । तेन चरति स्वाध्वरिकः । शोभनानि तान्यंगानि यस्य स्वांगस्तस्यापत्यं स्वांगिकः । पवं व्यांगिः । ध्याडिरिति केचित् । व्याडस्यापत्यं व्याडिः । विगतोऽवहारो विशेषेण वाचहारः । तेन चरति व्यावहारिकः । व्याप्रायिकः । स्वागतः । स्वध्वरा । स्वंगा । व्यंगा । व्याडः । व्यवहारः । ध्यायामः । स्वादेरिति श्वनशब्दस्येकारादौ तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वभस्त्वस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः । श्वाशीर्षिः । शुनां गणस्येन चरति श्वागणिकः । श्वायूथिकः । आदिप्रहणात्केवलस्य निषेधः । श्वभिश्चरति शौथिकः । इकारादाविति किं । शौधादंष्ट्रो मणिः । इणश्चादेः । इणप्रत्ययान्तस्य सण्ये तद्धिते वृद्धिरागमो न भवति । श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रकं । श्वाकर्णेरिदं श्वाकर्णकं । अणि लुप्तेऽपि तत्कृतः प्रतिषेधो भवत्येवेति । अनर्थकमेतदिति चांद्राः । पदस्यानोति वा । श्वशब्दादेः पदशब्दश्यानिकारादौ वा वृद्धिर्न भवति । शुनः पदं श्वपदं । तस्येशमित्यण् । शौनपदं । श्वपदं । अनिनीति किं । श्वपदेन चरति श्वापदिकः । श्वनशब्दस्य द्वारादिपाठात् तत्र तदादिविधेर्ज्ञापितत्वाश्रित्यं प्राप्ते विकल्पो विधीयते । न्यंकोश्च । सण्ये तद्धिते वृद्धिरागमो वा भवति । न्यंकोरिदं न्यांकवं ।

इति श्रीमत्कारणदेवोपाध्यायश्रीवर्द्धमानविरचिते कातन्त्रविस्तरे तद्धिते  
दशमप्रकरणं समाप्तम् ।

इस 'कातन्त्रविस्तर' के मूल सूत्र के रचयिता शंभुजी हैं। ये मूल सूत्र कातन्त्र, कौमार पर कल्याण के नाम से प्रसिद्ध हैं। कातन्त्र में सम्बुद्ध व्याकरण का विषय ऐसे सुन्दर ढंग से सुनिश्चित किया गया है जो अत्रिक विम्बुत न अत्रिक सत्तिन हा कहा जा सकता है। नाय ही साथ मरल भा है। हाँ, इमन बुद्ध श्रुटियाँ भी हैं। छात्रायण, तद्विद आदि बुद्ध श्रयों की मुखियेयता पय सारंगानु धमारंगानु का पार्थक्य आदि ही ये श्रुटियाँ हैं। फिर भी मध्यमकर में व्याकरण की गिज्ञा पाने के लिय यह श्रय बहुत हा उत्तम है। और और प्राम्ता की अपेक्षा धमाः में इमका अधिक प्रचार है। इमके प्रणेता शंभुजी जैन थे या जैनतर यह धर्मो गिज्ञाप्रमत्त है। महाकवि सामदेव मद्र रचित कथा 'सरित्सागर' में इम प्रय की उत्पत्ति का एक कथा मिलता है। उससे इमका निमाता शंभुजी अनेन सिद्ध होने हैं। किन्तु दिग्वराचार्य भास्कर त्रैलोक्य अपनी 'रूपमाला' नामक टीका में कातन्त्र को जैनप्रय घोषित करते हैं। बल्कि 'कातन्त्रविस्तर' और 'रूपमाला' नामक दिगम्बराय श्रकामों के अतिरिक्त कातन्त्र पर श्रवताम्बरों का भी कई टीकाय उपलब्ध होता है। अन्तु, कातन्त्र के रचयिता के संबंध में विशेष खोज करने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त 'कातन्त्रविस्तर' के रचयिता यदुमानका हैं। 'भजन' की यह प्रति अपूर्ण है, इसलिये आपकी गुरुतरणरा आदि का बुद्ध भी पता नहीं लगता। प्रस्तुत प्रति भूदवित्री जैनमठ क प्रय-भाषाकार में वर्तमान एक शालपत्र य प्रति की नकल है। यहाँ की यह प्रति भा अपूर्ण है। स्वर्गीय वा० पुरणानन्दजी नाहर ने 'जैन सिद्धान्त-भास्कर' भाग २ विरय १ में प्रकाशित 'धार्मिक उद्धारता' शार्पक अपने एक लेख में यदुमानका को श्रेयार्थ लिखा है। श्रत नहीं होता है कि आपके इम कथन का आचार क्या है। क्योंकि 'जैन साहित्यको इतिहास' पय 'जैनग्रन्थावली' आदि में इम यात का बुद्ध भी संकेत नहीं मिलता है। बल्कि नाहरजी ने एक लेख म इन्हें सूत्र (आचार्य) के रूप में उल्लेख किया है। पर 'कातन्त्रविस्तर' की इम प्रति में उपर्युक्त किसा भा प्रकरण के अन्त में यदुमान इम नाम के साथ 'मूठे' शब्द नहीं मिलता है। हाँ, 'कर्मद्वयोपध्याय' यह शिरोपय भयस्य मिलता है। पता नहीं लगता है कि यदुमानजी के द्वारा प्रतिपादित यह कर्मद्वय कौन है। इन सब बातों को हल करने के लिये प्रय का अन्तिम प्रशस्ति अन्वयिक अपेक्षाय है। मर्या है कि किसी प्रयालय में 'कातन्त्रविस्तर' का पूर्ण प्रति हो, यहाँ के उद्धार गिज्ञा उत्त प्रशस्ति की अनिच्छ नकल हमारे पास भेजने की कृपा भयस्य करें।

# अनुक्रमणिका

इस अनुक्रमणिका में 'प्रशस्ति-संग्रह' में सम्मिलित आचार्य, मुनि, आर्यिका, संघ, गण, गच्छ, श्रावक, श्राविका, शासक, शासिका, सचिव, सेनानायक, कोपाध्यक्ष, राजश्रेष्ठी, गून्थ एवं स्थल आदि के नाम समाविष्ट किये गये हैं। पृष्ठ-संख्या के बाद तीन संकेताक्षर दिये गये हैं। उनमें 'प्र' से प्रशस्ति, 'प' से परिचय तथा 'कु' से कुम्भोद समझना चाहिये। प्रसंगवश परिचय के अन्दर जो पद्य आये हैं, उनके नामों के आगे भी 'प' संकेताक्षर ही रक्खा गया है।

अ

अकलंक १, २, ६, ३४, ६९, ९९ म १०१,  
१२४ प १५५ प्र।  
अकलंक १३० म १३१, १३२, १४७ प।  
अकलंक (प्रतिष्ठाकार्य के रचयिता) १६७, १६८ प।  
अकलंकप्रतिष्ठापाठ १६७ प।  
अकलंक मठ १५० प।  
अकलंकसंहिता १५०, १६७ प।  
अकल्पनाचार्य १६० म।  
अगस्त्य १६३ म।  
अच्युतराय १४५, १४७ प।  
अजमेर ६३, १५४ प।  
अजित महाचारी ८ प।  
अजितसेनाचार्य या अजितसेन २, ८४, १२८ प।  
अणतण १३७ प।  
अनगारधर्माश्रित ३३ प।  
अनन्तकीर्ति १३३ प।  
अनन्तनाथपुराण १७८ प।  
अनन्त परिदत्त १३५ प।  
अनन्तवीर्य १, २ म १०१ प।  
अनुप्रेक्षे १९ प।  
अनुमकुन्दपुर या अनुमकुन्दपट्टन १२ कु।  
अनेकान्त ४७ प १५४, १७८ कु।  
अप्ययाय ११, १२, ६०, १०४, १०७ प।

अभयचन्द्र (गोगमदसारवृत्ति के कर्ता) ६५ प।  
अभयचन्द्र १०१, १२४ प० १३४ म १४८ प।  
अभयचन्द्रसूरि १३४ कु १३५ प १३५ कु।  
अभयनन्दी १३३ प।  
अभयवादी १३८ कु।  
अभिनवचन्द्र ५६ प।  
अभिनवपाण्ड्यदेव ३७, ३९ प।  
अभिनन्दन मठ १३५ कु।  
अभिमन्यु ८३ प।  
अमचवादिपत्तन १४८ प।  
अमरकीर्ति १२५, १२६, १४७ प।  
अमृतनन्दयोगी, अमृतानन्द या अमृतनन्दी २२,  
२३ म २४, ५६ प।  
अमोघवृत्तियास १२४ कु।  
अमरा १४६ कु।  
अमरगनगर १४६ प।  
अर्जुन १८१, १९९ म।  
अर्जुनदेव ३३ प।  
अर्थप्रकाशिका ६४ प ६६ म ७१ प।  
अर्हदास ३०, ३२ म ३२, ३३, ८७ प  
अलंकारसंग्रह २२, २३ म।  
अल्लियकट्टु १४५ प।  
अष्टपदी ६३ म ६३ प।



अष्टादिकामर्वतोमद १९७ प।  
 अष्टादिकोद्यान १७३ प।  
 अहमदाबाद १७० प।  
 अगडि ८१, १६४ प।  
 अङ्गदेश १५२ प्र।  
 अङ्गुलेखर ३८ कु।  
 अञ्जना ६, ७ प्र १०६ प।  
 अन्त कृदाशाय ८६ प्र।

## आ

आगरा २ प।  
 आग्नेय १६३ प्र।  
 आदम्नाय १३५ प।  
 आदिनाय (नेमिचन्द्र के भाई) १०१ प।  
 आदिनाथ १३५, १३७, १४८ प।  
 आदिपुराण ४, ६५, ७१, १०३, १०६, १११,  
 ११६ १२०, १६८, १७८, १९७ प।  
 आतनरीया १०३ प।  
 आमा १०० प्र १२४ प।  
 आनन्ददास १७५ प १७५ कु १८५, १९१  
 प १९१ कु १९३ प।

आराधनासमूह ८५ प।  
 आर्यदेवी १०१ प।  
 आर्य १० प्र ११, ६० प।  
 आर्यमेन १२८ प।  
 आर्यपुराण १८७ प्र।  
 आराधन १०, प्र ११ प ३१ प्र ३२, ३३ प  
 ३३ कु ६०, ६१, ८४, १०४, १२९, १३४,  
 १४७, १६८, १७४, १७५ प १८८ प्र १९०,  
 १९१, १९२, १९३ प।

## इ

ईदगास १४५ प।  
 इन्द्रावजला १६० प।  
 इन्द्रनदि या इन्द्रनदी १०, प्र ११, ६०, ८९,  
 १०१, १०४, १०७, १२४, १३२ प।  
 इन्द्रनदिविद्यागड १०७ प।  
 ईदधो १८७ प्र।

## ई

ईदर १७५, १९१ प।  
 ईधरद्वारम १४२ प।

## उ

उग्रवंश ३६ प।  
 उग्रमेन १५२ प्र।  
 उग्रान्वय ५०, ५२ प्र ५३, ५४, ५५, ५६, ५७ प।  
 उग्रवीनी ५३ प।  
 उक्कल ६३ प।  
 उत्तरकचड १२३, १४४ प।  
 उत्तरपुराण १२३, १९७ प।  
 उत्तरमपुरा (मथुरा) ३६ प।  
 उत्तरमदति १०० प।  
 उदयचन्द्र १३३ प।  
 उदयनाचार्य ६४ प।  
 उदयभूषण ८०, १६४ प।  
 उदयन्दु ४६ प।  
 उदयेश्वरमाला १९७ प।  
 उदयनाथवन ८६ प्र।

## ऊ

ऊर्जावन्तगिरि १२४ प।

## ए

एकशैल या एकशैलिनगर ११, १२ प १२ कु।  
 एकरुंवि ५८ प्र ६०, ६१, १६८ प।  
 एकमविमहिता १६८, १७९ प।  
 एकीभाषनोद्याना १११ प।  
 एतिमाकिचा-कर्नाटिका ५७ प।

## ओ

ओजवशैली १३७ प।

## औ

औरधवन ५५ प।

कदक ८०, १६४ प।

कङ्कलोर ११५ प।  
 कयासरित्सागर २०० प।  
 कदम्बरजवंश ७८ प।  
 कनककीर्ति १७१, १७३ प्र १७३ प।  
 कनकचन्द्र (गुणचन्द्र का पुत्र) १३२ प १३२ कु।  
 कनकचन्द्र १३३ प।  
 कनकदीपक ५५ प।  
 कनकसेन १२९ प।  
 कनकाचल १२३ प।  
 कलाडकविचरिते २४, १०६ प।  
 कपूरी १८७ प्र०।  
 कमलभद्र १२९, १४७ प।  
 कारकण्डुमहाराजचरित २१ प।  
 करनूल ५४ प।  
 करौली २ प्र।  
 कर्णदेव या कर्णदेवोपाध्याय १९९ प्र २०० प।  
 कर्णाटक १०७ पु १४५ प।  
 कर्णाटककविचरिते १९ प।  
 कर्णाटकप्रांत १०२ प।  
 कर्णाटकमण्डल १०६ प।  
 कर्णाटकशाब्दानुशासन १७८ प।  
 कर्नाटक ५४ प १४६ कु।  
 कर्नाटककविचरिते ४५, ४७ प।  
 कर्मदहनन्याख्यान १५८ प।  
 कर्मविपाक १९७ प।  
 कलचूरि ५४ प ५५ प्र।  
 कलाप २०० प।  
 कलिकुण्डाराधनाविधान ९५ प्र ९६ प।  
 कलिङ्ग ६५ प।  
 कल्याणकारक ५०, ५१, ५२, ५३, ५५ प्र ५५, ५६ प।  
 कल्याणकीर्ति १६, १७, १८ प्र १८, १९, २०, ३८ प।  
 कल्याणकीर्ति १३३ प।  
 कल्याणोनाथ १३५ प १३५ कु १४८ प।

कविचरिते ४७ प।  
 कर्पायजयचत्वारिंशत् या कर्पायजयभाषना १७१ प्र १७३ प।  
 काकतेय या काकतीय १२ प १२ कु।  
 काणूर्गण १३२ प १३२ कु १३३, १४७ प।  
 कातंत्र २०० प।  
 कार्तत्रविस्तर १९८, १९९ प्र २०० प।  
 कादम्बनाथ ७५ प्र।  
 कादम्बवंश २७ प ७४, ७६ प्र।  
 कामनक्ये १९ प।  
 कामराज या कामराय ७५, ७६ प्र ७८, ११९, १९७ प।  
 कामरण्य १४८ प।  
 कामरण्यदेवरस १३९ प।  
 कारकल या कार्कल १८, १९, ३७, ३८, १०६, १०७, १२३, १४७ प १२८ प।  
 कारंजा ११ प।  
 कार्तवीर्य १९९ प्र।  
 कार्तिकेयानुमेला २२ प।  
 कालिदास ६३ प।  
 कावेरी ६५ प १२६ प्र।  
 काव्यमाला १९१ प।  
 काव्यसार १२८ प।  
 काशी ८ प।  
 काशोपति १२९ कु १४७ प।  
 काश्यप ८० प १६३ प्र १६४ प १३८ कु।  
 काष्ठासंघ ५६ कु १११ प १११, प्र १५८ प १८७ प्र।  
 काञ्ची ११५ प्र ११६ प।  
 किट्टुबिल्व ६३ प।  
 कीर्तिवर्मा ५६ प।  
 कुमारकवि (हस्तिमल्ल के भाई) १६२ प्र।  
 कुमारसेन १० प्र ११ प।  
 कुमारसेन २२, २६ प २३ कु।  
 कुमुदचंद्र ४३ प्र ४४, ४५, ४६ प ४५, ४६ कु

कुलवश १५२, १८१ म ।  
 कुबलाज ६५ प ।  
 कुंदकुंदाचार्य या कुंदकुंद ६, १७ म ११९, १२४,  
 १२९ प १३१ म १३२, १४४ प १५२ म  
 १५३ प १५३, १५५ म १७३ प १८९ म  
 १९०, १९७ प ।

कुंदकुंदान्वय १९ प ६३ म ।

कुम्भासव ३ म ।

कुमण या कुमण्य १३१ म १३७ प १३७ कु  
 कृष्णदेव १२६ म १३९ कु १४३ म १२८,  
 १४८ प ।

कृष्णदेवेंद्र १२२ म ।

१२८, १४५ प ।

१२६, १४०, १४२ म १४५, १४८ प ।

१३३ प ।

केरलाधीश १४७ प १३३ कु ।

केवलजानदोरा २५ म २६ प ।

१४४ प ।

१२४ प ।

७६ म ।

कैवर्ती १६९ म ।

कोटीरवर १४० कु ।

कोदण्डराम १०१ प ।

कोपण १२४, १२८, १४४ प ।

कोरवकर्म २४ प ।

कोरुकोल १२ कु ।

कोलार ६५ प ।

कौमार २०० प ।

कौवित्रि १६३ म ।

ख

खर्गेंद्रमणिरुपंथ ५६ प ।

खिलजीवंश १५४ प ।

खीमाही १८७ म ।

ग

जग १८७ म ।

गजपुर १४२ प ।

गजगुक्तमालाचरित्र १९७ प ।

गजेटियर १२३ प ।

गणधरवल्लभचर्य ९६ म ९८ प ।

गणामुरीत १५३ म १५३, १५४ प ।

गर्ग १८७ म ।

गंगडिकार ६५ प ।

गंगनरेश ६५ प ।

गंगवंश ६५, ७७, ७८ प ।

गंगवादि ७७, ८१, १६४ प ।

गंगवाडिकार ६५ प ।

गंगाज्योश १४६ कु ।

गजाम ५४ प ।

गणद्विमुक्त १३३ प ।

गणधरकवि २० प ।

गंगाभट्ट ६४ प ।

गोविधवंश ६३ म ।

गिरिकूट ८३ म ।

गिरिनाथ १४६ कु ।

गीतगोविन्द ६३, ६४ प ।

गीतगीतराग ४ प ६१, ६३ म ६३, ६४, ६५,  
 ७१ प ।

गुजरात ५४, १२०, १५४, १७४ प १९१ म  
 १९७ प ।

गुडिपत्तन ८०, ८१ प १६२ म १६४ प ।

गुणकीर्ति १३३ प १८१ म १८२ प ।

गुणचंद्र १३२, १३३ प १३२ कु ।

गुणमंत्र ९, १० म ११, ६०, १०४, १०५, १२८  
 प १५५, १५७ म १५८ प १६२, १८७ म ।

गुणवदुगव्य १८९, १९२ म ।

गुणवर्मा ७४ म ७८ प ।

गुम्मटदेव १३५, १३७ प ।

गुम्मटश्रेणी १३८ प १३८ कु ।

गुम्मटश्रेणी १३७ कु ।

गुम्मथ १३८ प ।

गुम्मथ १४८ प ।

गुम्मिश्रेणी १३७, १३८, १४० प १४० कु ।

गुरदास ५३ प ।  
 गुरुपात्र १२८ प ।  
 गुरास १४३ प्र ।  
 गुर्जर ११९, १७४, १९०, १५७ प ।  
 गेरे ६३ प ।  
 गेहलोपे १२३, १२८ प १३२ कु १३६ प १३७  
 कु १४४, १४५ प ।  
 गेहवा १८७ प्र ।  
 गोपनन्दी १८२ प ।  
 गोम्मटदेव १५० प ।  
 गोम्मटमार ६५, १०३ प ।  
 गोम्मटेश्वर २० प ।  
 गोयर्दन ६ प्र ।  
 गोविन्दमठ ८०, १०५, १०६ प १६२ प्र १६४ प ।  
 गोविन्दराज १३८ कु १४९ प ।  
 गोविन्दस्वामी १०५ प ।  
 गोर्वच ५६ प ।  
 गोलशङ्कर ७ प्र ८ प ।  
 गौतम ६, ९, १६३ प्र ।  
 गौतमचरित्र १५४ प्र ।  
 ग्रन्थपरीक्षा १६८ प ।

## च

चन्दनश्रेणी १३७ कु ।  
 चन्द्रा ५४ प ।  
 चन्द्रकीर्ति ८४, १३३ प ।  
 चन्द्रगुप्त १४७ प १३२ कु ।  
 चन्द्रगुप्तपुर १४७ प १३२, १४७ कु ।  
 चन्द्रनाथ ८१, १४० प १६३ प्र १७५ प ।  
 चन्द्रप या चन्द्रपार्य ८१, १३५ प १६३ प्र ।  
 चन्द्रपार्य १०१ प ।  
 चन्द्रप्यार्य १३५ प ।  
 चंद्रप्रमकाव्यटीका ४, ६४, ७१ प ।  
 चंद्रप्रमचरित ३ प्र ।  
 चंद्रप्रमदेव १२९, १३० प ।  
 चंद्रप्रमयोगी १३१, १३२ प ।

चंद्रमती १३१, १४७ प ।  
 चंद्रशेखर ७७ प ।  
 चंद्रमेन या चंद्रमेन मुनि २५ प्र २६, २७ प ।  
 चादिगी १८७ प्र ।  
 चामुण्डराय १२४ प ।  
 चाणकीर्ति ४ प ६१ प्र ६३, ६४, ६५ प ६६,  
 ६९, ७० प्र ७१, १३१, ९४७ प १५५ प्र ।  
 चालुक्य या चालुक्यवंश २७, ५६, ८१ प ।  
 चालुक्यनाम्नाम्नाम्न १६४ प ।  
 चिन्तामणि १०१ प ।  
 चिन्मयचिन्तामणि २० प ।  
 चेतनस १३५, १४८ प ।  
 चैतनश्रेणी १३८ प ।  
 चैतनरायपट्टण १३७ कु १४८ प ।  
 चैतनश्रेणी १३८ कु १४९ प ।  
 चैतनदेवी १४० कु १४८ प ।  
 चोलनरेश ६५ प ।  
 चोलराजवंश १०१ प ।  
 चौदरस १३५ प ।  
 चौहान ३३ प ।

## छ

छत्रययपुरी ८१ प १६३ प्र १६५ प ।  
 छन्दःकोष ८४ प ।  
 छन्दःशास्त्र ८४ प ।

## ज

जगकीर्ति १११ प ।  
 जगसुन्दरी ५५, १५४ प ।  
 जगराज १८७ प्र ।  
 जगराज्य १८७ प्र ।  
 जटाचार्य ५५ प ।  
 जटासिंहनन्दी १२४, १३२ प ।  
 जमदग्नि १९९ प्र ।  
 जयकीर्ति १२४, १३०, १४७ प ।  
 जयकेशरी १३२ कु १४७ प ।

जयदेव ६३, ६४ प।  
 जयद्रथ ८३ प्र।  
 जयपुराण ११५, १९७ प।  
 जयमित्र १८६ प्र।  
 जयवर्म ६१ प्र।  
 जयसेन १२९ प।  
 जरामंथ १८५ प्र।  
 जघ ६ प्र।  
 जज्ञ १७८ प।  
 जगन्कुम्भर २४ प।  
 जम्बूत्तामीचरित्र १९७ प।  
 जाबालिपुर या जाबालिगपुर १३२ कु १४७ प।  
 जिणदाप १८७ प्र।  
 जिखरानगर १५८ प।  
 जिन्गुण्यंरस्तुषापन १६० प।  
 जिनचन्द्र १२४ प।  
 जिनचन्द्र १७७ प्र १७७, १७८ प।  
 जिनचन्द्रदेव १३३ प।  
 जिनदत्त या जिनदत्ताय ३६ प्र ३६, ३७, ३९,  
 १२४, १३७ प।  
 जिनदाम १८७ प्र १९७ प।  
 जिनदाम महचारी ११५ प।  
 जिनदेव २३५ प।  
 जिनमलकय १६८ प।  
 जिनमलकलोदय १६, १८ प्र ३८ प।  
 जिनसहस्रनामटीका १७५ प १८८ प्र १८९, १९२ प।  
 जिनसहिता ४३, ४४ प्र ४५, ४७ प ५८ प्र ६०,  
 ६१ प।  
 जिनसंहितामारोद्धार ८० प्र।  
 जिनमेन या जिनमेनाचार्य ६, १० प्र ११, ६०, ८०,  
 ९२, १०१, १०४, १०५, १०६, १११, १२०,  
 १२३, १२४, १२८ प १५५, १६२ प्र १६४,  
 १६८ प।  
 जिनस्तुति १९ प।  
 जिनेन्द्रकन्यायाम्बुदय ९, १० प्र ११, ६०, ६१,  
 १०४, १०७ प।

जीवेन्दु १८७ प्र।  
 जुधिहर १८१ प्र।  
 जेरट या जेरहट १५३ प्र १५३, १५४ प।  
 जैतरस १३६ प।  
 जैनगजट ७१ प।  
 जैनग्रन्थावली २०० प।  
 जैनमन्त्रशास्त्र ८७ कु।  
 जैनशिलाखेससंग्रह १८२ कु।  
 जैन साहित्यनो इतिहास २०० प।  
 जैन-सिद्धान्त-भाष्य ३२ प।  
 जैन-सिद्धान्त-भास्कर १२९, २०० प।  
 जैनहितैसी ३८, १०१, ११९ प १९७ कु।  
 शान्कया ८६ प्र।  
 शानकग्राम्बुदय १९ प।  
 शानभूषण ११९, १९६, १९७ प।  
 शानसंग्रह १७५, १९०, १९३ प।  
 शानार्थ २१ प २१ कु ११९, १६८, १९१।  
 १५२ प्र १९६ प।

ट

टिड्विन ६४ प।

ड

दिल्लिपुर १२५ प।

ड

संशोर ८१ प।

सत्त्वप्रथमकाशिका १७५, १९१, १९२ प।

सत्त्वभेदाष्टक १९ प।

सत्त्वानुशासन १९१ प।

सत्त्वार्थशाका १७५, १९१ प।

सत्त्वार्थशक्ति १७६, १७७ प्र १७८ प।

सत्त्वार्थसारटीका १९७ प।

सत्त्वार्थसारथपत्र १९७ प।

सत्त्वार्थसूत्र १२४, १७९ प।

समिपु (भाषा) १०७ कु।

समिपु (ग्रन्थ) १०७ प।

तम्भरण १३७ प १३७ कु १४९ प ।  
 तर्कदीपक १७५, १९३ प ।  
 तलकाढ ६५ प ।  
 तारादेवता १ प्र ।  
 तिजारा १८७ प्र ।  
 तिमम्भणनायक १३९ प १३९ कु १४८ प ।  
 तिमिश्रेष्ठी १४० प १४० कु १४८ प ।  
 तिरुचनापत्नी २४ प ।  
 तुलुदेश १३२, १४० प ।  
 तुलुराज्य ७७ प ।  
 तेजनु १८७ प्र ।  
 तैलंग १२ प १२ कु ।  
 तोव १८७ प्र ।  
 तौलव १३३, १४५ प ।  
 तौलवदेश ३७ प ।  
 तौलवाधीश १३५ कु १४८ प ।  
 तौलवेरवर १३६ कु ।  
 त्रिकुलिंग ५३ प्र ५४ प ।  
 त्रिपति ५४ प ।  
 त्रिष्पदिरिपुलियूर ११५ प ।  
 त्रिभुवनकीर्त्ति १५३ प्र ।  
 त्रिभुवनचन्द्र १३३ प ।  
 त्रिभुवनमल्ल ७७ प ।  
 त्रियम्बक १३७ कु ।  
 त्रिलोकप्रज्ञप्ति ११६, १२४ प ।  
 त्रिलोकसार ११६ प ।  
 त्रिलोकसारपूजा १११ प ।  
 त्रिवर्णाचार १५८, १६८ प ।  
 त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति १७८ प ।  
 त्रैवर्णिकाचार ७८ प्र ८०, ८१, १००, १०१ प ।  
 त्रैविद्यचक्रेरवर १२९ कु ।  
 त्रैविद्यवासुपूज्य १३३ प ।  
 त्र्यमियपाल १८७ प्र ।

दक्षिणमधुरा (मधुरा) ३६ प ।  
 दण्डनाथ १३६ प ।  
 दमोवादेश १५३ प्र १५३, १५४ प ।  
 दयापाल १६ प्र १९, १२९ प ।  
 दरगहमल्ल १८७ प ।  
 दशभक्त्यादि या दशभक्त्यादिमहाशास्त्र १२०,  
 १२२ प्र १२२, १२३ प १४६ कु ।  
 दशरथ ३३ प्र ५५ प २५, १२८, १३७ कु ।  
 दशलक्षणपूजाविधान १५८ प ।  
 दशलक्ष्योद्यापन १६० प ।  
 दानशासन २८, २९ प्र २९ प ।  
 दि० जैन ग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ २१, २६, ८४  
 ८९, १००, १११, १५४, १५८ प १६० कु  
 १९७ प ।  
 दिल्ली १४५ प १४५, १४६, १४७ कु ।  
 दीपनगुडि ८१ प ।  
 दुग्गणश्रेष्ठी १३९ प ।  
 दुग्गूरु १४९ प ।  
 देवकीर्त्ति १७ प्र १९ प ।  
 देवकीर्त्ति १३२, १३३ प ।  
 देवचन्द्र १६ प्र १९ प ३४ प्र ३७, ३८, ३९,  
 १०६, १३३ प ।  
 देवनन्दी १००, १०१ प ।  
 देवनन्दी १७८ प ।  
 देवप दण्डनाथ १२५, १४६ प १४६ कु ।  
 देवपार्य १३४ कु १४८ प ।  
 देवरवल्लभ ८० प १६२ प्र १६४ प ।  
 देवरस १३४, १३५, १३६, १३८, १४८, १४९ प ।  
 देवरस १३८ कु ।  
 देवरससूरि १३५, १४०, १४८ प ।  
 देवरी १३८ प १३८ कु १४२, १४९ प ।  
 देवराज ६३ प्र ६५ प ।  
 देवराज १४५ प ।  
 देवराय १२६, १२८, १२९, १३१ प १३४, १३५,  
 १३६ कु १४३, १४५, १४७, १४८, १४९ प ।

देवसेन १९७ प।  
 देवागम १६२ प्र।  
 देविन्द्रकीर्ति १५३ प्र।  
 देविश्रेष्ठो १३७, १३८ कु १४०, \*४८ प।  
 देवेन्द्र १०१ प।  
 देवेन्द्र १४९ प।  
 देवेन्द्रकीर्ति ७ प्र ८ प।  
 देवेन्द्रकीर्ति ९२, ९४ प।  
 देवेन्द्रकीर्ति १२२ प्र १२५, १२७, १२८, १४०,  
 १४२, १४३, १४४, १४७ प।  
 देवेन्द्रकीर्ति १५३ प।  
 देवेन्द्रकीर्ति १७४ प्र १७४ प १८९ प्र १९० प  
 १६२ प्र।  
 देवेन्द्र मुनि ५६ प।  
 देवेन्द्रधर्म ६५ प।  
 देशि या देशीगण ३७ प ३८ कु ७०, १३१ प्र  
 १३१ कु।  
 देशीगण १७ प्र १९ प।  
 दोदासही १८७ प्र।  
 दोमानु १८७ प्र।  
 द्राविष ६३ प्र ६४ प।  
 द्वारसमुद्र ८१ प १२३ कु १६४, १६५ प।  
 द्विसंधानकाव्य १०१, १७९ प।  
 द्विसंधानकाम्यटीका १००, १०१ प।

ध

धर्मपाकही १८७ प्र।  
 धनत्रय ३७, ८४, १२४ प।  
 धन्यकुमारचरित १९७ प।  
 धरणि पवित्रत १३८ प।  
 धरसेनाचार्य या धरसेन १० प्र ११, १२, १२८ प।  
 धर्मकीर्ति १३३ प।  
 धर्मकीर्ति भद्रारक ९८ प।  
 धर्मचंद्र ९३, ९४, १५४ प।  
 धर्मचंद्र मुनि १२३ कु।  
 धर्मनाथपुराण १९७ प।

धर्मरीयुवपर्ययमानकाचार १८५ प।  
 धर्मप्रभोत्तर १९७ प।  
 धर्मभूषण ९४ प।  
 धर्मभूषण १२४, १२५ प १३६ कु १४२, १४९ प।  
 धर्मराय १४२ प।  
 धर्मशार्मान्युदय १३४ कु १५३, १५४, १८२ प।  
 धर्मरोखर १३५ प।  
 धर्मसंग्रहधावकाचार १७८ प।  
 धर्मसेन १२९ प।  
 धर्माश्रित १७८ प।  
 धारा(नगरी) ३३ प।  
 धीनाही १८७ प्र।

न

नगर(ताजलुक) १२८ प।  
 नगराज १८७ प्र।  
 नगरि(राज्य) १२८ प।  
 नंजाराय १२८ प १३८ कु १४१ प।  
 नंजिवेराज १२८, १४४ प।  
 नन्दिसंघ ५२, ५७, १२८, १२९, १३३, १४४ प  
 १५२ प्र १५३ कु १७८ प।  
 नमस्कारमेघवलय ४८ प।  
 नयसेन १७८ प।  
 नरसिंह ८१, ११४ प।  
 नरसिंह १२८, १४८ प।  
 नरसिंहकुमार १२८ प।  
 नरसिंहराज १२८ प।  
 नरसिंहराय १२९ कु १४७ प।  
 नरेन्द्र ३४ प्र।  
 नरेन्द्रसेन १२९ प।  
 नलकण्ठपुर ३३ प।  
 नागचन्द्र या नागचंद्रवती ३४ प्र ३७, ३८ प ३८ कु  
 ३९, ८४ प।  
 नागपुर ५४ प।  
 नागप १३१ प।  
 नागपथेही १३७, १४९ प।

नागरस १३६, १४८ प।  
 नागरसी १३७ कु।  
 नागसेन १२९ प।  
 नागाबिका १३८ कु।  
 नागार्जुन १२३ कु।  
 नागिन्नेच्छी १३७ कु।  
 नारणश्रेष्ठी १३७ प।  
 नारसिंह १३५ कु १४२ प।  
 नित्यमहोद्योत १९१ प।  
 निदानमुक्तावली १३ प्र १५ प।  
 निरञ्जन १३८ कु।  
 निवाणकाण्ड १२३ प।  
 निपीधिका १३२ प।  
 नृसिंह १४२, १४५, १४८ प।  
 नृसिंहराय १४८ प।  
 नेमणश्रेष्ठी १३७ प।  
 नेमणश्रेष्ठी १३८ प।  
 नेमिचन्द्र ६ प्र।  
 नेमिचन्द्र ३७ प।  
 नेमिचन्द्र ९८, १०० प्र १००, १०१, १०२ प।  
 नेमिचन्द्र १२४, १२६, १३१, १३२, १३३,  
 १३४ प।  
 नेमिचन्द्र १३५ कु।  
 नेमिचन्द्र १३७ प।  
 नेमिचन्द्र प्रती १३७ कु १४९ प।  
 नेमिचन्द्र १४७ प।  
 नेमिचन्द्र १६५ प्र १६८ प।  
 नेमिजिनमन्दिर ७ प्र।  
 नेमिदत्त १७५ प १८२, १८५ प्र १८५, १९१,  
 १९३ प।  
 नेमिनिवाणकाव्यटीका ४, ६४, ७१ प।  
 नेमिपुराण १७५ प १८२, १८५ प्र १९१ प।  
 नेमिश्रेष्ठी १३७ प।  
 नेल्लूर २४ प।  
 न्यायकुमुदचन्द्र १७८ प।  
 न्यायमण्डिदीपिका २ प्र २, ७१ प।

न्यायविनिश्चयविवरण १७९ प।

प

पटना ११६ प।  
 पण्डिताचार्य ६३, ६६, ६८, प्र १४८ प।  
 पदार्थसार ४६ प।  
 पद्मश्रेष्ठी १३९ कु १३९, १४८ प।  
 पद्मनन्दी ६ प्र।  
 पद्मनन्दी ८९, प्र ८९ प।  
 पद्मनन्दी ११९ प १५२, १५३ प्र १७४ प १८९ प्र  
 १९०, १९१ प १९२ प्र १९६ प।  
 पद्मनन्दी १२४, १३३ प।  
 पद्मनन्दी १७८ प।  
 पद्मनाभ १८५ प्र।  
 पद्मपुराण ११९, १५८, १६० प १६९ प्र १७०,  
 १९७ प।  
 पद्मप्रभ १२४, १२९ प।  
 पञ्चनमस्कारचक्र ४८ प्र।  
 पञ्चयस्ति १४९ प।  
 पद्माकर १३९ कु।  
 पद्मान्वा १२८ प १४३ प्र १४५, १४८ प।  
 पद्मान्वा १३५ कु।  
 पद्मावतीवस्ति १४६ कु।  
 पद्मिनी ३६ प।  
 पनसोमे ३७ प।  
 पं प १७८ प।  
 परमारवंश १४७ कु।  
 परसमयग्रन्थ १६८ प्र १७०, १७१ प।  
 परीक्षामुख १, २, ६६, ७० प्र ७१ प ७२ प्र।  
 पालिकट ५४ प।  
 परलववंश ११६ प।  
 पवनञ्जय १०६ प।  
 पश्चिमी घाटी ८०, १६४ प।  
 पाटलिक ११४, ११५ प्र।  
 पाटलिग्राम ११५ प।  
 पाटलिपुत्र ११५, ११६ प।  
 पाण्य(पाण्ड्य)राष्ट्र ११५ प्र ११५, ११६ प।



पावकपुराण २१, २२, ११९, १५४, १७८,  
 १९७ प।  
 पावकप्रमाणिका ३४, ३६ म ३६ प ३८ कु ३९ प।  
 पावकप्रमाणिका ३७, ३९ प।  
 पावकप्रदेश १७ म १८ प।  
 पावकप्रदेश ३७ प।  
 पावकप्रदेश ८०, ८१, १०६, ११५, १६१ म  
 १६४ प।  
 पावकप्रदेश २० प।  
 पावकप्रदेश ८० १६४ प।  
 पावकप्रदेश १०७ प।  
 पावकप्रदेश ७७ प।  
 पावकप्रदेश ७८ प।  
 पावकप्रदेश १४० कु १६२ म।  
 पावकप्रदेश ३९ प।  
 पावकप्रदेश ३७ प।  
 पावकप्रदेश १६३ म।  
 पावकप्रदेश १०६ प।  
 पावकप्रदेश १२७ म १४५, १४७, १४८ प।  
 पावकप्रदेश १४३ म।  
 पावकप्रदेश ११४ म।  
 पावकप्रदेश १८, ३६ प ७४ म।  
 पावकप्रदेश ५५, १२४ प।  
 पावकप्रदेश ५३, ५५ म।  
 पावकप्रदेश १३७ कु।  
 पावकप्रदेश १३९, १४९ प।  
 पावकप्रदेश १३७ कु  
 पावक या पावकप्रदेश १३७, १४९ प।  
 पावकप्रदेश १३९ कु १४९ प।  
 पावकप्रदेश १९९ म।  
 पावक ८०, १६४ प।  
 पावकप्रदेश ३७ प।  
 पावकप्रदेश ५६ प।  
 पावकप्रदेश १३५ प।  
 पावकप्रदेश १०१ प।  
 पावकप्रदेश १९६ प।

पावकप्रदेश १६३, १९७ प।  
 पावकप्रदेश ८१ म १६३ म १६५ प।  
 पावकप्रदेश १४० प।  
 पावकप्रदेश ४ म।  
 पावकप्रदेश ४, ६४ ७१ प।  
 पावकप्रदेश ६५ प।  
 पावकप्रदेश १३८ म १४७ प।  
 पावकप्रदेश ८५ प।  
 पावकप्रदेश ८४ म ८४ प।  
 पावकप्रदेश ३२ प।  
 पावकप्रदेश १५७ म १५८ प।  
 पावकप्रदेश १११ प १५७ म।  
 पावकप्रदेश या पावकप्रदेश ११, १२ प।  
 पावकप्रदेश १९, ३७ प ३८ कु।  
 पावकप्रदेश १९३ प।  
 पावकप्रदेश १७५ प।  
 पावकप्रदेश १० म ११ प १३, १४ म १४, १५ प।  
 पावकप्रदेश ३४, ५३ म ५५ ६०, ६५, १०४ प  
 १२३ कु १२४ १४४, १५०, १५१ प १५५  
 १५९ म १७३, १७५ प १७६, १८९ म।  
 पावकप्रदेश १२९ कु १४७ प।  
 पावकपुराण ११५ प।  
 पावकप्रदेश १२९ कु १४७ प।  
 पावकप्रदेश १५२ म०।  
 पावकप्रदेश ३६, १२६ प १३९ कु १४७, १४९ प।  
 पावकप्रदेश ८१ प।  
 पावकप्रदेश या पावकप्रदेश ३४, ६३ प।  
 पावकप्रदेश २४ प।  
 पावकप्रदेश ४६, ४७ प १६५ म १६७ प।  
 पावकप्रदेश ४३, ४४ म ४५ प।  
 पावकप्रदेश १०० म १०१ प १६१, १६४ म  
 १६४ प।  
 पावकप्रदेश १०१, १६८ प।  
 पावकप्रदेश १०३ म १०४, १०७ प।  
 पावकप्रदेश ८० प।  
 पावकप्रदेश १५४ प।

प्रद्युम्नचरित्र १५८ प।  
 प्रबोधसार १५४ प।  
 प्रभाचन्द्र १, ६, १५५ प्र १७९ प।  
 प्रभाचन्द्र १२४ कु १२४, १२५ प।  
 प्रभेन्दु १, २, ६६, ६९, ७१ प्र।  
 प्रभेयकण्डिका ७२, ७३ प्र।  
 प्रभेयकमलमार्तण्ड १, ६९ प्र।  
 प्रभेयरत्नमाला २, ६६, ६९, ७० प्र ७१ प।  
 प्रभेयरत्नमालालङ्कार ६४ प ६८ प्र ७१ प।  
 प्रवचनपरीक्षा ९८, १०० प्र १००, १०१, १०२ प।  
 प्रश्रव्याकरणाङ्क ८६ प्र।  
 प्रश्रोत्तरमाला ११९ प।  
 प्रश्रोत्तररत्नमाला १९७ प।  
 प्रश्रोत्तरप्रावकाचार ११९, १९७ प।  
 प्राकृतपिङ्गल ८४ प।  
 प्राकृतव्याकरण १७३, १७५, १९३ प १७४ प्र।  
 प्राणवायुपूर्व ५५ प।  
 प्रायश्चित्तचूला ९३ प।  
 प्रायश्चित्तसमुच्चय १७९ प।  
 प्रियङ्करचरित्र १८५ प।

फ

फणिकुमारचरित २० प।

घ

घंकापुर १२९, १४७ प।  
 घंग ७५ प्र ७७ प।  
 घंगचरित्र ७७ प।  
 घंगभूमीश्वर ७४ प्र।  
 घंगवादि ७४ प्र ७७, ७८ प।  
 घंगवंश ७७, ७८ प।  
 घंगाल ५४ प।  
 बदरीनाथ १०१ प।  
 बदरीपाल २ प्र।  
 बनारस ५४ प।  
 बम्बई ३२ प।

बरा ३३ कु।

बलात्कारगण १२२ प्र १२५, १३३ प १४३, १५३ प्र  
१५३, १७४, १९० प।

बल्लाल ६४, ८१ प।

बल्लालराय ६३ प्र १३१ कु १४७ प।

बागड १२०, १९७ प।

बाण १४४ प।

बाणराष्ट्र ११६ प।

बारकूह ३६ प ३६ कु।

बालग्रहचिकित्सा ५६ प।

बालचन्द्र ३८ कु १३२, १३३ प।

बिदिरे १२८ प।

बिस्नाप १४८ प।

बिलिगे १२८ प।

बिल्हण ३३ प।

बीजकोश ३९ प्र ४१, ४२ प।

बीधा ७ प्र ८ प।

बुद्धा १८७ प्र।

बुन्देलखण्ड १५० प।

बृहत्कथाकोष १७५, १९३ प।

बैंगलूरु ५४, ६५ प।

बेलगावे १३८ कु १४८ प।

बेलूर ८१, १६४, १६५ प।

बेलगुल ७१ प्र।

बेलगुलपुर ७० प्र।

बेलगोल १२४, १२८ प।

बेल्हारि ५४ प।

बैचप १४८ प।

बोम्मणश्रेष्ठी १३९ प १३९ कु १४९ प।

बोम्मरस १३५ प १३८ कु १४१, १४८ प।

बोम्मराज १४० प १४० कु।

बोम्मा १४० कु।

बोम्मिश्रेष्ठी १३६ प १३६, १३८ कु १४८ प।

ब्रह्मदेव १०१ प।

ब्रह्मसूत्रि ८० प्र ८०, ८१, ८२, १०१, १३४  
१६१, १६३, १६४ प्र १६४, १६५, १६८ प

सङ्घान्त ५, ७ प्र ।

सङ्घिधेयी १३५, १४८ प ।

स

सत्तामरवधा १६० प ।

सत्तामरोद्यापन १५८ प ।

सत्तामाला ६३ प ।

सत्तादगीता १७० प ।

सत्कल १२३, १३६ प ।

सत्कलक १२४, १२९ प १६५ प्र १६७, १७८ प ।

सत्काल ६ प्र १२४ प १६५, १८९ प्र ।

सत्कालाभरणशिरा ३०, ३२ प्र ३२, ३३ प ।

सत्कालमुद्रचन्द्रिका ३३ प ।

सत्कालानन्द ३४, ३५, ३६ प्र ३६, ३७, ३८, ३९ प ।

सत्काल ७४ प्र ।

सत्कालरचनी ९ प्र ।

सत्कालगोत्र १४१ प्र ।

सत्कालकीपुर १२३, १२८ प ।

सत्काली १८७ प्र ।

सत्कालीति १३२ प ।

सत्काली १३३ प ।

सत्काल १६३ प्र ।

सत्काल १६३ प्र ।

सत्कालेन श्रैविशदेव २०० प ।

सत्कालनन्दी १७६, १७७ प्र १७७, १७८ प ।

सत्कालकार ५५ प ।

सत्काल १८७ प्र ।

सत्काल १८९ प्र ।

सत्कालीति ११९, १५३, १९६, १९७ प ।

सत्कालचन्द्र १३३ प ।

सत्काल ७ प्र ८ प ।

सत्कालिभट्ट १३५, १४८ प ।

सत्काल ५७ प ।

सत्काल श्रोत्रिय ३७ प ।

सत्काल श्रोत्रिय १८ प ।

सत्काल १८, १९, १२८ प ।

सत्कालवंश १८, ३७ प ।

सत्काल ३७ प ।

सत्काला १४३, १४५, १४८ प ।

सत्काल १७, १२७ प्र ।

सत्काल १५३ प ।

सत्काल ६३ प ।

स

सत्काल ५६ प ।

सत्काली १३७ प्र ।

सत्कालचक्र १५३ प्र १५३, १५४ प ।

सत्कालक (सायककाल) ३२ प ।

सत्कालक या सत्कालक १५३, १५४ प ।

सत्काल ६५ प ।

सत्काल १२९, १४७ प ।

सत्काल ३६ प ।

सत्काल १४ प्र १५ प ।

सत्कालोपाख्याय ३३ प ।

सत्काली १६४ प ।

सत्काल १३, ५६ प ५७ प्र ।

सत्कालान्यतालिका ४७ प्र ।

सत्काली ८१ प ।

सत्काल १०६ प ।

सत्कालान्त, सत्कालभारत व राजपूताने के प्राचीन जैन

सत्काल ३३ प्र ।

सत्काला ३६ प ।

सत्काल ५४ प ।

सत्कालचन्द्रोपाय २४ प ।

सत्कालभूषण, सत्कालभूषण या सत्काला २३ प्र २४ प ।

सत्कालीति २२ प ।

सत्कालीति ८४, ८६ प्र ८७ प ।

सत्कालीति महारक १८७ प्र ।

सत्कालीति ७७ प ।

सत्कालीति १३६, १४८ प ।

सत्कालीति १३६, १४६ प्र १४८ प ।

सत्कालीति १९७ प्र ।

सत्कालीति महारक १७४, १७५ प्र १८४, १८५ प्र

१८५ प्र १८९ प्र १९०, १९१, १९२, १९३ प ।

महाराज १२५ प १३४, १३७ कु १४१, १४५,  
 १४७, १४८ प ।  
 महिषोष्ठी १३७ प ।  
 महिषोष्ठी १३८ प १३८ कु ।  
 महिषेय ८९ प ।  
 महिषेय १९३ प ।  
 महसू १८७ प्र० ।  
 महम्मद १२५ प ।  
 महात्मान १५३ प ।  
 महादानु १८७ प्र ।  
 महापुराण १२० प १५५ प्र ।  
 महाभारत १७० प ।  
 महाभियेक १९१ प ।  
 महाभियेकटीका १७५, १९१, १९३ प ।  
 महेंद्रकीर्ति १५६ प्र १५७, १५८ प ।  
 महेंद्रपुर ७ प्र ।  
 मागोदु १३८ कु ।  
 माघनन्दी २२ प ।  
 माघनन्दी सि० ४३, ४४ प्र ४४ प ४५ कु ।  
 माघनन्दी (श्रावकाचार के कर्ता) ४५, ४६, ४७ प ।  
 माघनन्दी (शास्त्रसार के कर्ता) ४६ कु ४७ प ।  
 माघनन्दी १२४, १३३ प ।  
 माघनन्दिश्रावकाचार ४६ प ।  
 माणिक्यद्रग्रंथमाला ३२, ४४ प ।  
 माणिक्यनन्दि १, ६९, ७० प्र १२४, १३३,  
 १४८ प ।  
 माणिक्यनन्दि १५४ प ।  
 माणिक्यनन्दि १११ प ।  
 माणिक्यनन्दि १८७ प्र ।  
 मादनयज्ञ १२९, १४७ प ।  
 माधवचन्द्र १२४ प ।  
 माधवचन्द्र १३२ प १३२ कु १४७ प ।  
 माधवसेन १२९ प ।  
 मान्यपुर ६५ प ।  
 मानुनायक १३९ कु १४८ प ।  
 मार्तण्डशास्त्र १२४ प ।

मार्कण्डेयपुराण १६९ प्र ।  
 मालवदेश १५२ प्र १५४, १९० प ।  
 मालवपति १२९ कु १४७ प ।  
 मालवा १७५, १९१ प ।  
 मालवेन्द्र १२९, १३३ कु १४८ प ।  
 मुकुन्द १३८ कु १४८ प ।  
 मुनिचन्द्र १३२, १४७ प ।  
 मुनिमुयतकाव्य ३२ प ।  
 मुहम्मद तुगलक १४६ कु ।  
 मूढचिद्री ३, १०४, १२३, १३६, १४०, २०० प ।  
 मूलसंघ १७ प्र १६, ३७, १५३ प १५३, १५७ प्र  
 १५८ प १६२, १७४ प्र १७४ प १८४ प्र १८५  
 प १८९ प्र १९० प १९२ प्र ।  
 मूलाचारदीपक १६७ प ।  
 मयुञ्जयाराधनाविधान ९० प्र ।  
 मेघचन्द्र १२४ प ।  
 मेघनाद ५३ प्र ५५ प ।  
 मेघप्रभ ३८ कु ।  
 मेघार्वा १७८ प ।  
 मेरुतन्त्र ५५ प ।  
 मेरुनन्दी १२५ प ।  
 मेवाड़ १५४ प ।  
 मैथिलीकव्ययाण १०४ प ।  
 मैसूर १९, ३६, ५४, ६५, ७७, ८५, १४४,  
 १५०, १७०, १७८, १७९ प ।

य

यस्याचार १९७ प ।  
 यशःकीर्ति १५३, १५४ प ।  
 यशःकीर्ति १७९ प्र १८१, १८२ प ।  
 यशस्तिलक १७४, १७५, १९१ प ।  
 यशस्तिलकचन्द्रिका १७४, १७५, १८५, १८९,  
 १९०, १९१ प ।  
 यशस्तिलकटीका १९०, १९३ प ।  
 यशोधरचरित ४, १९, २०, ६४, ७१, १५८,  
 १९७ प ।

मुनिविर २७ प ।  
योगसार १२९ कु ।  
योगसार १५३ प ।

र

रघु १४२ प ।  
रंगनाथ १२६ प ।  
रंगराय १४५, १४८ प ।  
रत्नप्रपत्रा १६० म ।  
रत्नप्रयोगान १५९, १६० म १६० प ।  
रत्नमि २ म ।  
रत्नमयूरा ८२ म ८४, ८५ प ।  
रविचन्द्रदेव १३३ प ।  
रविनेत्र १२९ प ।  
रविनेत्र वा रविनेत्राचार्य १५५, १५६, १५७ म  
१५८ प ।  
रविनेत्रेश १५८ प ।  
रसनग्र ५५ प ।  
रसरत्नाकर २४ प ।  
रसहार ५५ प ।  
राधकान्तकीय १३४ कु ।  
राजमत्र १०१ प ।  
राजवार्तिक १६७, १७८ प ।  
राजटोकर ७४ म ।  
राजावलिकथा १०६ प ।  
राजेश्व ७४ म ।  
राणी १८७ म ।  
राधादेवी ६३ प ।  
राधिका ६३ प ।  
रामगिरि ५३ म ५४ प ।  
रामचन्द्र २२ प ७४ म ।  
रामचन्द्र १३२, १४७ प ।  
रामचन्द्र १४३ प ।  
रामदेव ५४ प ।  
रामदेव १५७ म ।  
रामनाथ भरत ३७ प ।

रामपुराण १५५, १५७ म १५८ प ।  
रामराज १३२ कु १४२, १४३, १४८ प ।  
रामराय १४५ प ।  
रामसेन १२९ प ।  
रामायण ४७ प ।  
राधचन्द्रनैराधमाशा २१ कु ।  
राधर्षग ७५, ७६ म ।  
रघुमारा ११ प ।  
रघुदेव १२ प १२ कु ।  
रघुदेव १५० प ।  
रामाभाटीका २०० प ।

स

साधव १३७ प ।  
सध्याय १२४ प ।  
सध्याय १५६ म ।  
सध्यायसेन ६३ प ।  
सध्यायचन्द्र १७४, १७५ प १८९ म १९०, १९१,  
१९२, १९३ प ।  
सध्यायसेन १२९, १४७ प ।  
सध्यायान्ति १५८ प ।  
सहितधर्मि १६, १७ म १८, १९, ३३, ३८ प ।  
सहितधर्मि १०९, १११ म० ।  
सहितधर्मि १५३, १५४, १८२ प ।  
सध्यायही १८७ म ।  
साधो १८७ म ।  
सिद्धपुराण १७० प ।  
सुम्माय १३८, १४८ प ।  
सोक्तारविभाग ११२ म ।  
सोकनाथ देवरस ३७ प ।  
सोक्तविभाग ११५ म० ११६, ११७, ११९ प ।  
सोकसेन १२९ प ।  
सोकगण्ड १७५, १९३ प ।  
सोक्तसरस १३५ प ।

घ

वंग ६३ प ।

वज्रपंजराराधनापूजा ८९ प।  
 वज्रपंजराराधनाविधान ८८ प्र ८९ प।  
 वत्सगोत्र १०५, १०६ प १६३ प्र।  
 वरंगल १२ प १२ कु।  
 वरांग १२३ प।  
 वरांगद्वय १६० प्र।  
 वर्द्धमान ३४ प्र०।  
 वर्द्धमान ( हस्तिमल्ल के भाई ) ८० प १६२ प्र  
 १६४ प।  
 वर्द्धमान ( दशभक्त्यादि के कर्ता ) १२० प्र १२२,  
 १२३, १२४, १२७, १२८, १२९, १३२, १३४,  
 १३५, १३६, १४०, १४२, १४३, १४४ प।  
 वर्द्धमान ( धर्मभूषण के गुरु ) १२५ प।  
 वर्द्धमान १२५, १३३ प।  
 वर्द्धमान भट्टारक १३३ प।  
 वर्द्धमान ( होयसल राज्यस्थापक ) १२४, १३३,  
 १४७ प।  
 वर्द्धमान ( कातन्त्रविस्तर के रचयिता ) १९८, १९९  
 प्र २०० प्र।  
 वर्द्धमानवाण्य १८६ प्र।  
 वर्द्धमानपुराण १८५, १९७ प।  
 वशिष्ठगोत्र ८०, १०५ प १६३ प्र १६४ प १६९ प्र।  
 वसन्तकीर्ति १२४ प।  
 वसुनन्दि या वसुनन्दी १० प्र ११, ५३, ६०, १०४,  
 १२४ प।  
 वसुनन्दिप्रतिष्ठावाङ् १७९ प।  
 वसुपुर १२३ प।  
 वाग्भट ८४ प।  
 वाग्भट १५० प।  
 वाग्बर ( वाग्भट ) ११९ प।  
 वादिकुमुदचन्द्र ४४ प्र ४७ प।  
 वादिराज १०१, १२४, १२८ प १४७ कु।  
 वादीभवेन १०५ प।  
 वासुपूज्य या वासुपूज्य ऋषि २८, २९ प्र २९,  
 १३३ प।  
 वासुपूज्य मुनि ४५ कु।

वासुपूज्य ऋषि १२४ प।  
 विक्रम २७ प।  
 विक्रमप्रबंध १७५, १९३ प।  
 विक्रमभूपति २१ प।  
 विक्रमादित्य १८७ प्र।  
 विक्रान्तकौरव १०४, १०५, १०६ प।  
 विजयकीर्ति ७४, ७६ प्र ७६ प।  
 विजयकीर्ति ( मलयकीर्ति के द्वारा स्मृत ) ८६ प्र  
 ८७ प।  
 विजयकीर्ति ११९, १९७ प।  
 विजयकीर्ति १२९, १३०, १३१ प १३७ कु १४७,  
 १४९ प्र।  
 विजयवर्ण १३७ प।  
 विजयवर्ण १४९ प्र १५० प।  
 विजयनगर १२८, १३८ प १३८ कु १४४, १४५,  
 १४६ प १४६ कु १४८ प।  
 विजयप १०१ प।  
 विजयप १३७ प।  
 विजयप १३८, १४९ प।  
 विजयवर्षी ७३, ७६ प्र ७६, ७८, १५४ प।  
 विजया १४१, १४९ प।  
 विजयावनीश १३६ कु।  
 विजयेन्द्र ८१, १६५ प।  
 विट्टला या विट्टलादेवी ७४ प्र ७७ प।  
 विदर ( स्थान ) ५४ प।  
 विद्यानगर १२५ प १३८ कु १४६ प।  
 विद्यानन्द या विद्यानन्दी १२२ प्र १२३, १२४,  
 १२५, १२६, १२८, १२९, १३२, १३३,  
 १३४, १३५ प १३५, १३६, १३७, १३८ कु  
 १४०, १४२, १४३, १४४, १४५, १४७, १४८,  
 १४९ प।  
 विद्यानन्द सुनीदर ( विद्यानन्द के पुत्र ) १४७ प।  
 विद्यानन्दी भट्टारक ( श्रुतसागर के गुरु ) १७३,  
 १७४ प्र १७४ प १८४, १८८, १८९ प्र १९०,  
 १९१, १९२ प।  
 विद्यानन्दि ७ प्र ८ प।

सुविष्टिर २७ प ।  
योगसाहस्र १२९ कु ।  
योगसार १५३ प ।

ए

रघु १४२ प ।  
रंगनाथ १२६ प ।  
रंगराय १४५, १४८ प ।  
रत्नत्रयपाठ १६० प्र ।  
रत्नत्रयोद्यापन १५९, १६० प्र १६० प ।  
रत्ननन्दि २ प्र ।  
रत्नमञ्जूषा ८२ प्र ८४, ८५ प ।  
रविचन्द्रदेव १३३ प ।  
रविप्रेष १२९ प ।  
रविप्रेष या रविप्रेषाचार्य १५५, १५६, १५७ प्र  
१५८ प ।  
रविप्रेदेश १५८ प ।  
रसतन्त्र ५५ प ।  
रसरत्नाकर २४ प ।  
रससार ५५ प ।  
राधवपाखण्डवीग १३४ कु ।  
राजमल १०१ प ।  
राजवार्त्तिक १६७, १७८ प ।  
राजशेखर ७४ प्र ।  
राजावलिकथा १०६ प ।  
राजेन्द्र ७४ प्र ।  
राणी १८७ प्र ।  
गार्धदेवी ६३ प ।  
राधिका ६३ प ।  
रामगिरि ५३ प्र ५४ प ।  
रामचन्द्र २२ प ७४ प्र ।  
रामचन्द्र १३२, १४७ प ।  
रामचन्द्र १४३ प ।  
रामटेक ५४ प ।  
रामदेव १५७ प्र ।  
रामनाथ सरस ३७ प ।

रामपुराण १५५, १५७ प्र १५८ प ।  
रामराज १३९ कु १४२, १४३, १४८ प ।  
रामराय १४५ प ।  
रामयैन १२९ प ।  
रामायण ४७ प ।  
रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला २१ कु ।  
रायनग ७५, ७६ प्र ।  
रघुकुमार ११ प ।  
रघुदेव १२ प १२ कु ।  
रघुदेव १५० प ।  
रूपमालाटीका २०० प ।

ल

लक्ष्मण १३७ प ।  
लक्ष्मण १२४ प ।  
लक्ष्मण १५६ प्र ।  
लक्ष्मणयैन ६३ प ।  
लक्ष्मीचन्द्र १७४, १७५ प १८९ प्र १९०, १९१  
१९२, १९३ प ।  
लक्ष्मीयैन १२९, १४७ प ।  
लघुरामान्तिक १५८ प ।  
ललितकौत्ति १६, १७ प्र १८, १९, ३७, ३८ प  
ललितकौत्ति १०९, १११ प्र० ।  
ललितकौत्ति १५३, १५४, १८२ प ।  
लक्ष्मणवही १८७ प्र ।  
लाडो १८७ प्र ।  
लिंगपुराण १७० प ।  
लुम्पण १३८, १४८ प ।  
लोकतत्त्वविभाग ११२ प्र ।  
लोकनाथ देवरस ३७ प ।  
लोकविभाग ११५ प्र ११६, ११७, ११९ प ।  
लोकनेत्र १२९ प ।  
लोकानन्द १७५, १९३ प ।  
लोकस्वरस १३५ प ।  
बंग ६३ प ।

वज्रपंजराराधनापूजा ८९ प।  
 वज्रपंजराराधनाविधान ८८ प्र ८९ प।  
 वसुगोत्र १०५, १०६ प १६३ प्र।  
 वरंगल १२ प १२ कु।  
 वरांग १२३ प।  
 वरांगद्वय १६० प्र।  
 वर्द्धमान ३४ प्र०।  
 वर्द्धमान (हस्तिमल्ल के भाई) ८० प १६२ प्र  
 १६४ प।  
 वर्द्धमान (दशमन्यादि के कर्ता) १२० प्र १२२,  
 १२३, १२४, १२७, १२८, १२९, १३२, १३४,  
 १३५, १३६, १४०, १४२, १४३, १४४ प।  
 वर्द्धमान (धर्मभूषण के गुरु) १२५ प।  
 वर्द्धमान १२५, १३३ प।  
 वर्द्धमान भट्टारक १३३ प।  
 वर्द्धमान (होय्मल राज्यस्थापक) १२४, १३३,  
 १४७ प।  
 वर्द्धमान (कातन्त्रविस्तर के रचयिता) १९८, १९९  
 प्र २०० प।  
 वर्द्धमानदाय्य १८६ प्र।  
 वर्द्धमानपुराण १८५, १९७ प।  
 वशिष्ठगोत्र ८०, १०५ प १६३ प्र १६४ प १६९ प्र।  
 वनन्तकीर्ति १२४ प।  
 वसुनन्दि या वसुनन्दी १० प्र ११, ५३, ६०, १०४,  
 १२४ प।  
 वसुनन्दिप्रतिष्ठाशठ १७९ प।  
 वसुपुत्र १२३ प।  
 वाग्भट ८४ प।  
 वाग्भट १५० प।  
 वाग्बर (वागड) ११९ प।  
 वादिकुमुदचन्द्र ४४ प्र ४७ प।  
 वादिराज १०१, १२४, १२८ प १४७ कु।  
 वादीभलेन १०५ प।  
 वासुपुत्र या वासुपुत्र ऋषि २८, २९ प्र २९,  
 १३३ प।  
 वासुपुत्र मुनि ४५ कु।

वासुपुत्र ऋषि १२४ प।  
 विक्रम २७ प।  
 विक्रमप्रबंध १७५, १९३ प।  
 विक्रमभूषति २१ प।  
 विक्रमादित्य १८७ प्र।  
 विक्रान्तकौरव १०४, १०५, १०६ प।  
 विजयकीर्ति ७४, ७६ प्र ७६ प।  
 विजयकीर्ति (मलयकीर्ति के द्वारा स्मृत) ८६ प्र  
 ८७ प।  
 विजयकीर्ति ११९, १९७ प।  
 विजयकीर्ति १२९, १३०, १३१ प १३७ कु १४७,  
 १४९ प।  
 विजययण १३७ प।  
 विजययण १४९ प्र १५० प।  
 विजयनगर १२८, १३८ प १३८ कु १४४, १४५,  
 १४६ प १४६ कु १४८ प।  
 विजयप १०१ प।  
 विजयप १३७ प।  
 विजयप १३८, १४९ प।  
 विजयवर्षी ७३, ७६ प्र ७६, ७८, १५४ प।  
 विजया १४१, १४९ प।  
 विजयावनीश १३६ कु।  
 विजयेन्द्र ८१, १६५ प।  
 विट्टला या विट्टलादेवी ७४ प्र ७७ प।  
 विदर (स्थान) ५४ प।  
 विद्यानगर १२५ प १३८ कु १४६ प।  
 विद्यानन्द या विद्यानन्दी १२२ प्र १२३, १२४,  
 १२५, १२६, १२८, १२९, १३२, १३३,  
 १३४, १३५ प १३५, १३६, १३७, १३८ कु  
 १४०, १४२, १४३, १४४, १४५, १४७, १४८,  
 १४९ प।  
 विद्यानन्द मुनीश्वर (विद्यानन्द के पुत्र) १४७ प।  
 विद्यानन्दी भट्टारक (श्रुतमागर के गुरु) १७३,  
 १७४ प्र १७४ प १८४, १८८, १८९ प्र १९०,  
 १९१, १९२ प।  
 विद्यानन्दि ७ प्र ८ प।





शाकटायनमहावृत्ति १७९ प।  
 शाकटवाट (नगर) २१ प।  
 शान्तिनाथपुराण १९७ प।  
 शान्तिवर्षी ७२, ७३ म।  
 शान्तिपेण २ म।  
 शालाक्य ५३ म।  
 शास्त्रसारसमुच्चय ४५ कु ४६ प ४६ कु ४७ प।  
 शिलालेखग्रंथ ६५ कु।  
 शिवकोटि १६२ म।  
 शिवपुराण १६९ म १७० प।  
 शुक्लपद्मयुष्मापन १५८ प।  
 शुभकीर्ति १२४ प।  
 शुभचन्द्र २०, २१ म।  
 शुभचन्द्र या शुभचन्द्राचार्य (ज्ञानार्णव के कर्ता)  
 २१ प २१ कु १९१, १९७ प।  
 शुभचन्द्र भट्टारक २१ प।  
 शुभचन्द्र (पाण्डवपुराण के कर्ता) २१, ११९,  
 १६८, १७८ प।  
 शुभचन्द्र (संशयिवदनविदारण के कर्ता) २१ प।  
 शुभचन्द्र (करकण्डुचरित्र के कर्ता) २१ प।  
 शुभचन्द्र (गणधरवल्लयपूजा के कर्ता) ९८ प।  
 शुभचन्द्र १५२ म।  
 शुभचन्द्र (जिनचन्द्र के गुरु) १७८ प।  
 शुभचन्द्रदेव २२ प।  
 शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ७३, ७५, ७६ म ७८,  
 १५४ प।  
 शैलराज ७ म।  
 शोलापुर १५४ प।  
 श्रवणवेशगोल १२, २२, २७, ३८, ४६, ५३ प  
 ६३ म ६४ कु ६४, ६५, ७१, १०१, १२३,  
 १४४, १७८, १८१ प।  
 श्रावकाचार १५४ प।  
 श्रीकुमार ८०, १६४ प।  
 श्रीकृष्ण १४२ प।  
 श्रीचन्द्र (श्रीनंदी के शिष्य) ५३ प।  
 श्रीचन्द्र (श्रुतसागर के शिष्य) १७५, १९१ प।

श्रीधर १३३ प।  
 श्रीधरदेव ४५ कु ४६ प।  
 श्रीधरदेव (धियागृह के कर्ता) ५६ प।  
 श्रीधराचार्य १३३ प।  
 श्रीनन्दि (उमाशिव के गुरु) ५२ म ५३, ५४,  
 ५६ प।  
 श्रीनामा १६३ म।  
 श्रीपति (फवि) १३५ कु।  
 श्रीपाल ११, १२ प।  
 श्रीपाल १२४ प।  
 श्रीपालचरित्र १८५, १९७ प।  
 श्रीपुर २१ प।  
 श्रीपुराण ११७ म ११९, १२० प।  
 श्रीपुर ६५ प।  
 श्रीयलादेवी ३६ प।  
 श्रीरंग या श्रीरंगपट्टण १२६, १२८, १४७ प।  
 श्रीराय ७८ प।  
 श्रुतकीर्ति ५५ प।  
 श्रुतकीर्ति (प्रथम) ५६, ५७ प।  
 श्रुतकीर्ति (द्वितीय) ५७, १२५, १३१ प।  
 श्रुतकीर्ति १३४ कु।  
 श्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रधर १४७ प।  
 श्रुतकीर्ति (हरिवंशपुराण के कर्ता) १५१, १५३ म।  
 श्रुतकीर्तिदेव १३३ प १३६ कु।  
 श्रुतसागर १७३, १७४ म १७४, १७५, १८५ प  
 १८८, १८९ म १८९, १९०; १९१, १६२,  
 १९३ प।  
 श्रुतसागरी १९१ प।  
 श्रुतस्कंधावतार १७५, १९३ प।  
 श्रेणिक ९ प।

प

पट्टदर्शनप्रसायप्रमेयानुमवेश २० म २२ प।  
 पट्टपाहुड १८९ प।  
 पट्टपाहुडटीका १९३ प।  
 पट्टामृत १७४ प।



सिगवरम् ६४ प।  
 सिद्धचक्रपूजा १०८ प्र १११ प।  
 सिद्धनागार्जुनकल्प ५५ प।  
 सिद्धराशि १९ प।  
 सिद्धसेन ५३ प्र ५५ प।  
 सिद्धान्तकीर्ति १२४ प।  
 सिद्धान्तमुक्तावली १९७ प।  
 सिद्धान्तरसायनकल्प ५५ प।  
 सिद्धान्तसार १९७ प।  
 सिद्धान्तसारदीपक १७९ प।  
 सिद्धान्तसारादिसंग्रह ४४ प ४६, १७८ कु।  
 सिद्धिविनिश्चयटीका १७९ प।  
 सौंद १८७ प्र०।  
 सुकरयोगरत्नावलि ५६ प।  
 सुकुमालचरित्र १९७ प।  
 सुदर्शनचरित्र १९७ प।  
 सुधर्म ६ प्र।  
 सुधर्मा १६२ प्र।  
 सुन्दरपाण्ड्य १०६ प।  
 सुभद्रनाटिका १०७ प।  
 सुरेन्द्रकीर्ति ७ प्र ९३ प।  
 सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक ११९ प।  
 सुलतान महमूद १४५ प १४५ कु।  
 सुलतान सिकन्दरसूर १४६ कु।  
 सुश्रुत १५० प।  
 सूरत १७५, १९१ प।  
 सेनगण ५५, ५६ कु १०५ प १५७ प्र १५८ प।  
 सोजित्रा १७५, १९१ प।  
 सोमदेव ऋट २०० प।  
 सोमनाथ ५६ प।  
 सोमभूपाल १३८ कु १४८ प।  
 सोमसूर्यकुल २३ प्र २४ प।  
 सोमसेन १२९ प।  
 सोमसेन (रामपुराण के कर्ता) १५५, १५६,  
 १५७ प्र १५७, १५८ प।  
 सोमसेन (त्रिवर्णाचार के कर्ता) १६८ प।

सोलापुर ५६, १०१ प।  
 सौख्यनन्दी (भास्करनन्दी के प्रगुह) १७८ प।  
 स्थाण्डिल्यहोमपूजा १५८ प।  
 स्थानांग ८५ प्र।  
 स्थिरकदम्ब (नगर) १०२ प।  
 स्वस्थारिष्टनिदान १३ प्र।

ह

हणसोगे १९ प।  
 हनुमत् ६ प्र।  
 हनुमचरित्र ५, ७ प्र।  
 हयशास्त्र ५६ प।  
 हरवेमामं १३८ कु।  
 हरि भट्ट १३४ प।  
 हरियण १३८ कु।  
 हरिवंश १५१, १८१ प्र।  
 हरिवंशपुराण ११९ प्र १५१, १५३ प्र १५३,  
 १५४ प १७९, १८१ प्र १८२, १९७ प।  
 हरीत मुनि १५० प।  
 हलेबीह १२३ कु।  
 हस्तिमल्ल १० प्र ११, ६०, ८०, ८१, ९८, १०१ प्र  
 १०३ प्र १०४, १०६, १०७ प १६२, १६३ प्र  
 १६४ प।  
 हाडुहलि १२३, १४५, १४७, १४८ प।  
 हिन्दीविश्वकोष १२ कु ३६, ५४ प।  
 हिमश्रीतल १, ६९ प्र।  
 हरिय भैरवदेव ओडेय ३७ प।  
 हिस्दी आफ इण्डियन लिटरेचर १९६ कु।  
 हीरप २ प्र०।  
 हुम्बुच १४४ प।  
 हेमचन्द्र ८४, १७० प।  
 हेमदेव १२३ प।  
 हेमप्रभ १८ प्र।  
 हेमाचल ८१ प १६३ प्र १६५ प।  
 हैवणनायक १३९ प्र १३९ कु १४८ प  
 होत्रपनायक १३९ प १३९ कु १४८ प।

पद्माम्बुलटीका १७५ प।  
 पद्माम्बुनाथविग्रह १७४ कु १८९ प।  
 पद्माङ्क २२ प।  
 पद्मपतिसेनप्रकाशसन्धि १६० प।

स

संघविद्युत्तविद्यालय २१, २२ प।  
 संस्कृतशास्त्रिका का सचिव इतिहास ६४ कु।  
 सक्कळी ११७ म ११९, १२०, १९४, १९५  
 १९६, १९७ प १९७ कु।  
 सक्कळी १३२ प।  
 सक्कळन्त १३३ प।  
 सरलभूषण ११९, १९७ प।  
 संकल्प १३६, १४९ प।  
 संगरस १३७, १४८ प।  
 संगिताय १४३, १४५, १४८ प।  
 संगीतनगर १३२, १३५, १४८ प।  
 संगीतपुर १२३ व १३५ कु १३६, १४५, १४७ प।  
 सवणमरिनायक या सवणरिनायक १३९ प १३९ कु  
 १४८ प।  
 सवणवाक्य ८०, १६४ प।  
 सवशासनपरीक्षा १०१, १७५ प।  
 सदाशिव १४२, १४५, १४८ प।  
 सदाशिवनायक १२४ प।  
 सद्भाववितायकी १९७ प।  
 सप्तपिंडुला १५८ प।  
 समन्तभद्र ६, ९ म ११ प ३४, ५३ म ५५ प  
 ७४ म १२४, १२८, १४४, १५० प १५५,  
 १६२, १८८, १८९ म।  
 समन्तभद्र १३४, १४८ प।  
 समवनाथ १०१ प।  
 समेश्वरशिवर १२३, १२४ प।  
 सरथवापर १०७ प १६३ म।  
 सरस्वतीकवच ८५ म ८७ प।  
 सरस्वतीकवच १५३, १७४, १८५, १९० प।  
 सर्वानन्दो ११४, ११५ म ११६ प।

सर्वार्थसिद्धि १४ प।  
 सख ८१, १६४ प।  
 सख्यलामाराधना ९२ म।  
 सागर १५४ प।  
 सागरदश १२३ प।  
 सागरप्रमाणित १०३ प।  
 साधनमुद्रा १८७ म।  
 साधुगोष्ठा १८७ म।  
 साधुप्रदादासु १८५ म।  
 साधुसिद्धि १८७ म।  
 साधुसोनु १८७ म।  
 साधुसुविशीलिका १५७ प।  
 सारसंग्रह १४५ म १५० प।  
 साधुवदेवराय १३०, १३२ प १३९ कु १३९, १४०,  
 १४८ प।  
 साधुवमजिरीय या साधुमजिरीय १२८, १३५,  
 १४५, १४५ प।  
 साधुवरा १४५ प।  
 साधुवरोष्ठा १८७ म।  
 सिद्धकीर्ति १२४, १२५, १४४ व १४५ कु १४६ व  
 १४६ कु।  
 सिद्धनन्दी (नमस्कारमन्त्रकल्प के कर्ता) ४५ प।  
 सिद्धनन्दी (भानर्द के शिष्य) ५३ प।  
 सिद्धनन्दी (संगराज के श्यापक) ६५ प।  
 सिद्धनन्दी (जोबलारविभाग के संस्कृत भाषान्तर-  
 कार) ११६ प।  
 सिद्धनन्दी भट्टारक १७५ व १८४, १८५ म १८५,  
 १९०, १९१, १९२ प।  
 सिद्धनाथ ५३ म ५५ प।  
 सिद्धपुर ६३ म ६४ प।  
 सिद्धल १३३, १३४ प।  
 सिद्धवर्मा ११५ म ११६ प।  
 सिद्धसागर ९ म।  
 सिद्धसूरि (जोबलारविभाग के कर्ता) ११२, ११४ म  
 ११६ ११७, ११७ प।  
 सिद्धवरा १२५ प १४६ कु १४६ प।



---

नोट : इस 'अनुक्रमिका' को लिखा करने में श्री पं० तुलारामदास शिर, 'पिलगढ़' से भी  
सहायता मिली है; इसलिये मैं उनका भी धन्यारी हूँ ।

